

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

प्रयागमें मरनेवालोंकी गति और गो-दानका महत्त्व

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव च।
यच्छुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १
आर्तानां हि दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम्।
स्थानमुक्तं प्रयागं तु नाख्येयं तु कदाचन ॥ २
व्याधितो यदि वा दीनो वृद्धो वापि भवेन्नरः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥ ३
दीपकाञ्चनवर्णभैर्विमानैः सूर्यवर्चसैः।
गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे पोदति मानवः।
ईप्सिताँल्लभते कामान् वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥ ४
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः ।
वराङ्गनासमाकीर्णमोदते शुभलक्षणैः ॥ ५
गीतवाद्यविनिर्घोषैः प्रसुमः प्रतिबुध्यते।
यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते ॥ ६
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले।
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति ॥ ७
देशस्थो यदि वारण्ये विदेशस्थोऽथवा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः ॥ ८
सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी।
ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति ॥ ९
स्त्रीसहस्रावृते रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे।
मोदते ऋषिभिः सार्धं सुकृतेनेह कर्मणा ॥ १०
सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः।
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ॥ ११

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागके माहात्म्यका ही वर्णन सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। दुःखियों, दरिद्रों और निश्चित व्यवसाय करनेवालोंके कल्याणके लिये प्रयागक्षेत्र ही प्रशस्त कहा गया है। इसे कभी (कहीं) प्रकट नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ ऋषियोंका कथन है कि जो मनुष्य रोगप्रस्त, दीन अथवा वृद्ध होकर गङ्गा और यमुनाके संगममें प्राणोंका त्याग करता है, वह तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले एवं सूर्यसदृश तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गमें जाकर गन्धर्वों और अप्सराओंके मध्यमें आनन्दका उपभोग करता है और अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। वहाँ वह सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित, अनेकों रंगोंकी ध्वजाओंसे मण्डित, अप्सराओंसे खचाखच भेरे हुए शुभ लक्षणसम्पन्न दिव्य विमानोंमें बैठकर आनन्द मनाता है तथा माङ्गलिक गीतों और बाजोंके शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार जबतक वह अपने जन्मका स्मरण नहीं करता, तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है। इस प्रकार स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ वह जीव सुवर्ण-रत्नसे परिपूर्ण एवं समृद्ध कुलमें जन्म धारण करता है और समयानुसार पुनः उसी तीर्थका स्मरण करता है तथा स्मरण आनेसे पुनः उस प्रयागक्षेत्रकी यात्रा करता है। ऋषिवरोंका कथन है कि मनुष्य चाहे देशमें हो अथवा विदेशमें, घरमें हो अथवा वनमें, यदि वह प्रयागका स्मरण करते हुए प्राणोंका परित्याग करता है तो ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥ १—८ ॥

वह ऐसे लोकमें जाता है, जहाँकी भूमि स्वर्णमयी है, जहाँके वृक्ष इच्छानुसार फल देनेवाले हैं और जहाँ ऋषि, मुनि तथा सिद्धलोग निवास करते हैं। वहाँ वह अपने इस जन्ममें किये हुए पुण्यकर्मोंके प्रभावसे सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त, मङ्गलमय एवं रमणीय मन्दाकिनीके तटपर ऋषियोंके साथ सुख भोगता है। स्वर्गलोकमें देवताओंके साथ सिद्ध, चारण और गन्धर्व उसकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् (पुण्य क्षीण होनेपर) वह स्वर्गसे च्युत होकर



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

ततः शुभानि कर्मणि चिन्तयानः पुनः पुनः।
 गुणवान् वित्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः ॥ १२
 कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठितः।
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां सम्प्रयच्छति।
 स गोरोमसमाब्दानि लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३
 स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्थनेऽपि वा।
 यस्तु गां प्रतिगृह्णाति गङ्गायमुनसंगमे ॥ १४
 सुवर्णमणिमुक्ताश्च यदि वान्यत् परिग्रहम्।
 विफलं तस्य तत्तीर्थं यावत् तद्वन्मश्नुते ॥ १५
 एवं तीर्थे न गृहीयात् पुण्येष्वायतनेषु च।
 निमित्तेषु च सर्वेषु ह्यप्रमत्तो भवेद् द्विजः ॥ १६
 कपिलां पाटलावर्णा यस्तु धेनुं प्रयच्छति।
 स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां पयस्विनीम् ॥ १७
 प्रयागे श्रोत्रियं सन्तं ग्राहयित्वा यथाविधि।
 शुक्लाम्बरधरं शान्तं धर्मज्ञं वेदपारगम् ॥ १८
 सा गौस्तस्मै प्रदातव्या गङ्गायमुनसंगमे।
 वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥ १९
 यावद् रोमाणि तस्या गोः सन्ति गात्रेषु सत्तम्।
 तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २०
 यत्रासौ लभते जन्म सा गौस्तस्याभिजायते।
 न च पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।
 उत्तरान् स कुरुन् प्राप्य मोदते कालमक्षयम् ॥ २१
 गवां शतसहस्रेभ्यो दद्यादेकां पयस्विनीम्।
 पुत्रान् दारांस्तथा भृत्यान् गौरेका प्रति तारयेत् ॥ २२
 तस्मात् सर्वेषु दानेषु गोदानं तु विशिष्यते।
 दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसम्भवे।
 गौरेव कुरुते रक्षां तस्माद् देया द्विजोत्तमे ॥ २३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०५ ॥

भूतलपर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है। इस जन्ममें उसे बारंबार अपने शुभकर्मोंका स्मरण होता है, जिससे वह निस्संदेह गुणवान् और धनसम्पन्न होता है तथा वह मनुष्य मन-वचन-कर्मसे सत्यधर्ममें स्थित रहता है। जो व्यक्ति गङ्गा-यमुनाके संगमपर कार्योंमें अपने मङ्गलके निमित्त या पितरोंके उद्देश्यसे किये जानेवाले अथवा देवपूजन आदि कार्योंमें गोदान करता है, वह उस गौके रोमतुल्य वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि कोई वहाँ गोदान लेता है या स्वर्ण, मणि, मोती अथवा अन्य जो कुछ सामग्री दानरूपमें ग्रहण करता है, तो जबतक वह धन उसके पास रहता है, तबतक उसका वह तीर्थ विफल होता है। इस प्रकार (तीर्थयात्रीको) तीर्थमें, पुण्यमय देव-मन्दिरोंमें तथा सभी निमित्तों (दानपर्वों)-में दान लेना कदापि उचित नहीं है। इसके लिये ब्राह्मणको विशेषरूपसे सावधान रहना चाहिये ॥ ९—१६ ॥

जो मनुष्य प्रयागमें जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए हों, निकटमें काँसेकी दोहनी भी रखी हो, ऐसी लाल रंगकी दुधारू कपिला* गौका दान करना चाहता हो तो उसे वह गौ गङ्गा-यमुनाके संगमपर विधिपूर्वक ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जो श्रोत्रिय, साधुस्वभाव, श्वेत वस्त्र धारण करनेवाला, शान्त, धर्मज्ञ और वेदोंका पारगामी विद्वान् हो। उसके साथ बहुमूल्य वस्त्र और अनेकों प्रकारके रल भी दान करने चाहिये। राजसत्तम! ऐसा करनेसे उस गौके अङ्गोंमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् जहाँ वह जन्म लेता है, वहीं वह गौ भी उसके घर उत्पन्न होती है। उस पुण्यकर्मके प्रभावसे उसे नरकका दर्शन नहीं होता, अपितु वह उत्तरकुरु-प्रदेशको पाकर अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। लाखों गौओंकी अपेक्षा एक ही दुधारू गौका दान प्रशस्त माना गया है; क्योंकि वह एक ही गौ पुत्रों, स्त्रियों और नौकरोंतकका उद्धार कर देती है। यही कारण है कि समस्त दानोंमें गो-दानका विशेष महत्व बतलाया जाता है। दुर्गम स्थानपर, भयंकर विषम परिस्थितिमें और महापातकके घटित हो जानेपर केवल गौ ही रक्षा कर सकती है, अतः मनुष्यको श्रेष्ठ ब्राह्मणको गो-दान देना चाहिये ॥ १७—२३ ॥

* कपिला गौ 'स्वर्णकपिला' आदिके भेदसे दस प्रकारकी होती है। इसका विस्तृत वर्णन महाभारत, आश्मेधिक, वैष्णवधर्म-पर्व, अ० ९५ गीताप्रेसमें दाक्षिण्य प्र० के श्लोकमें तथा वृद्ध गौतमस्मृतिमें अ० ९-१० में देखना चाहिये।

एक सौ छठा अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें वहाँके विविध तीर्थोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

यथा यथा प्रयागस्य माहात्म्यं कथ्यते त्वया ।
तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्न संशयः ॥ १
भगवन् केन विधिना गन्तव्यं धर्मनिश्चयैः ।
प्रयागे यो विधिः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि महामुने ॥ २

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते राजंस्तीर्थयात्राविधिक्रमम् ।
आर्णेण विधिनानेन यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३
प्रयागतीर्थं यात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित् ।
बलीवर्दसमारूढः शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ ४
नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारुणः ।
सलिलं न च गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः ॥ ५
यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा ।
यथात्मना तथा सर्वं दानं विप्रेषु दापयेत् ॥ ६
ऐश्वर्यलोभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः ।
निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत् ॥ ७
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति ।
आर्णेणैव विवाहेन यथाविभवसम्भवम् ॥ ८
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा ।
उत्तरान् स कुरुन् गत्वा मोदते कालमक्षयम् ।
पुत्रान् दारांश्च लभते धार्मिकान् रूपसंयुतान् ॥ ९
तत्र दानं प्रकर्तव्यं यथाविभवसम्भवम् ।
तेन तीर्थफलं चैव वर्धते नात्र संशयः ।
स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १०
वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुच्छति ।
सर्वलोकान्तिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ११

युधिष्ठिरने पूछा— भगवन्! आप ज्यों-ज्यों प्रयागके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं, त्यों-त्यों मैं निःसंदेह समस्त पापोंसे मुक्त होता जा रहा हूँ। महामुने! धर्ममें सुदृढ़ बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंको किस विधिसे प्रयागकी यात्रा करनी चाहिये? इसके लिये शास्त्रोंमें जिस विधिका वर्णन किया गया है, वह मुझे बतलाइये ॥ १-२ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! मैंने ऋषिप्रणीत विधिके अनुसार जैसा देखा एवं जैसा सुना है, उसीके अनुरूप प्रयागतीर्थकी यात्रा-विधिका क्रम बतला रहा हूँ। जो मनुष्य कहींसे भी प्रयागतीर्थकी यात्राके लिये हष्ट-पृष्ठ बैलपर सवार होकर प्रस्थान करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। गो-वंशको कष्ट देनेवाला वह मनुष्य अत्यन्त घोर नरकमें निवास करता है तथा उस प्राणीके पितर उसका दिया हुआ जल नहीं ग्रहण करते; क्योंकि गौओंका क्रोध बड़ा भयानक होता है। जो विधिके अनुसार पुत्रों तथा बालकोंको प्रयागमें स्नान कराता है, गङ्गाजलका पान कराता है तथा अपनी ही तरह ब्राह्मणोंको सारा दान दिलाता है (वह तीर्थ-फलका भागी होता है)। जो मनुष्य ऐश्वर्यके लोभसे अथवा मोहवश सवारीपर बैठकर प्रयागकी यात्रा करता है, उसका वह तीर्थफल नष्ट हो जाता है, इसलिये सवारीका परित्याग कर देना चाहिये। जो गङ्गा-यमुनाके संगमपर ऋषिप्रणीत विवाह-विधिसे अपनी सम्पत्तिके अनुसार कन्या-दान करता है, उसे उस पुण्यकर्मके फलस्वरूप पूर्वोक्त घोर नरकका दर्शन नहीं होता, अपितु वह उत्तरकुरु देशमें जाकर अक्षय-कालतक आनन्दका उपभोग करता है और उसे धर्मात्मा एवं सौन्दर्यशाली स्त्री-पुत्रोंकी भी प्राप्ति होती है। इसलिये राजेन्द्र! अपनी सम्पत्तिके अनुकूल प्रयागमें दान अवश्य करना चाहिये। इससे तीर्थका फल बढ़ जाता है और वह दाता प्रलयपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ३-१० ॥

जो मनुष्य प्रयागस्थित अक्षयवटके नीचे पहुँचकर प्राणोंका त्याग करता है, वह अन्य सभी पुण्यलोकोंका अतिक्रमण कर रुद्रलोकको चला जाता है।

तत्र ते द्वादशादित्यास्तपन्ते रुद्रसंश्रिताः ।
 निर्दहन्ति जगत् सर्वं वटमूलं न दह्यते ॥ १२
 नष्टचन्द्राक्षभुवनं यदा चैकार्णवं जगत् ।
 स्थीयते तत्र वै विष्णुर्यजमानः पुनः पुनः ॥ १३
 देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ।
 सदा सेवन्ति तत् तीर्थं गङ्गायमुनसङ्गमम् ॥ १४
 ततो गच्छेत राजेन्द्रं प्रयागं संस्तुवंश्च यत् ।
 यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ १५
 लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसम्मताः ।
 सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥ १६
 अङ्गिरः प्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयः परे ।
 तथा नागाः सुपर्णाश्च सिद्धाश्च खेचराश्च ये ॥ १७
 सागराः सरितः शैला नागा विद्याधराश्च ये ।
 हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरःसरः ॥ १८
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।
 प्रयागं राजशार्दूलं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
 ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १९
 श्रवणात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि ।
 मृत्तिकालभ्नाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ २०
 तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे शंसितव्रतः ।
 तुल्यं फलमवाजोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ २१
 न वेदवचनात् तात न लोकवचनादपि ।
 मतिरुत्कमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥ २२
 दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः ।
 तेषां सांनिध्यमत्रैव ततस्तु कुरुनन्दन ॥ २३
 या गतिर्योगयुक्तस्य सत्यस्थस्य मनीषिणः ।
 सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ २४
 न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिंस्तत्र तत्र युधिष्ठिर ।
 ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः ॥ २५
 एवं दृष्ट्वा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम् ।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्कं इव राहुणा ॥ २६

प्रलयकालमें जब बारहों सूर्य रुद्रके आश्रयमें स्थित होकर अपने प्रखर तेजसे तपने लगते हैं, उस समय वे सारे जगत्को तो जलाकर भस्म कर देते हैं, परंतु अक्षयवटको वे भी नहीं जला पाते । प्रलयकालमें जब सूर्य, चन्द्रमा और चौदहों भुवन नष्ट हो जाते हैं तथा सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो जाता है, उस समय भी भगवान् विष्णु प्रयागमें यज्ञाराधनमें तत्पर होकर स्थित रहते हैं । देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण आदि गङ्गा-यमुनाके संगमभूत तीर्थका सदा सेवन करते हैं । अतः राजेन्द्र ! जहाँ प्रयागकी स्तुति करते हुए ब्रह्मा आदि देवगण; ऋषि, सिद्ध, चारण, लोकपाल, साध्यगण, लोकसम्मत पितर; सनत्कुमार आदि परमर्षि; अङ्गिरा आदि महर्षि तथा अन्य ब्रह्मर्षि, नाग, एवं गरुड़ आदि पक्षी, सिद्ध, आकाशचारी जीव, सागर, नदियाँ, पर्वत, सर्प, विद्याधर तथा ब्रह्मासहित भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं, उस प्रयागकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये । राजसिंह ! यह गङ्गा-यमुनाके अन्तरालका प्रयाग-क्षेत्र पृथ्वीका जघनस्थल कहा गया है ॥ ११—१८ ॥

भारत ! यह प्रयाग तीनों लोकोंमें विख्यात है । इससे बढ़कर पुण्यप्रद तीर्थ तीनों लोकोंमें दूसरा नहीं है । इस प्रयागतीर्थका नाम सुननेसे, इसके नामोंका संकीर्तन करनेसे अथवा इसकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है । जो व्रतनिष्ठ मनुष्य उस संगममें स्नान करता है, उसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंके समान फलकी प्राप्ति होती है । तात ! इसलिये न तो किसी वेद-वचनसे, न लोगोंके आग्रहपूर्ण कथनसे ही तुम्हें प्रयाग-मरणके प्रति निश्चित की हुई अपनी बुद्धिमें किसी प्रकारका उलट-फेर करना चाहिये । कुरुनन्दन ! इस भूतलपर जो दस हजार बड़े तीर्थ हैं तथा इनके अतिरिक्त जो तीन करोड़ अन्य तीर्थ हैं, उन सबका प्रयागमें ही निवास है । गङ्गा-यमुनाके संगमपर प्राण छोड़नेवालेको वही गति प्राप्त होती है, जो गति योगनिष्ठ एवं सत्यपरायण विद्वान्‌को मिलती है । युधिष्ठिर ! जिन लोगोंने प्रयागकी यात्रा नहीं की, वे तो मानो तीनों लोकोंमें ठग लिये गये और उनका जीवन इस लोकमें नहींके समान है । इस प्रकार परमपदस्वरूप इस प्रयागतीर्थका दर्शन करके मनुष्य उसी प्रकार समस्त पापोंसे छूट जाता है, जैसे (ग्रहणकालके बाद) राहुग्रस्त चन्द्रमा ॥ १९—२६ ॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुना दक्षिणे तटे ।
 तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७
 तत्र गत्वा च संस्थानं महादेवस्य विश्रुतम् ।
 नरस्तारयते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान् ॥ २८
 कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।
 स्वर्गलोकमवाज्ञोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ २९
 पूर्वपाश्चेत् तु गङ्गायास्त्रिषु लोकेषु भारत ।
 कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं च विश्रुतम् ॥ ३०
 ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति ।
 सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३१
 उत्तरेण प्रतिष्ठानाद् भागीरथ्यास्तु पूर्वतः ।
 हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ३२
 अश्वमेधफलं तस्मिन् स्नानमात्रेण भारत ।
 यावच्चन्दश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते ॥ ३३
 उर्वशीरमणे पुण्ये विपुले हंसपाण्डुरे ।
 परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ ३४
 षष्ठिवर्षसहस्राणि षष्ठिवर्षशतानि च ।
 सेव्यते पितृभिः सार्धं स्वर्गलोके नराधिप ॥ ३५
 उर्वशीं तु सदा पश्येत् स्वर्गलोके नरोत्तम ।
 पूज्यते सततं पुत्रं ऋषिगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ३६
 ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः ।
 उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम् ॥ ३७
 मध्ये नारीसहस्राणां बहूनां च पतिर्भवेत् ।
 दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिपः ॥ ३८
 काञ्छीनपूरशब्देन सुसोऽसौ प्रतिबुध्यते ।
 भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः ॥ ३९
 शुक्लाम्बरधरो नित्यं नियतः संयतेन्द्रियः ।
 एककालं तु भुज्ञानो मासं भूमिपतिर्भवेत् ॥ ४०

कम्बल और अश्वतर नामवाले दोनों नाग यमुनाके दक्षिण तटपर निवास करते हैं, अतः वहाँ स्नान और जलपान कर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है। प्रयागक्षेत्रमें स्थित महादेवजीके सुप्रसिद्ध स्थानकी यात्रा करके मनुष्य अपनी दस आगेकी और दस पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है और वह प्रलयपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है। भारत! गङ्गाके पूर्वी तटपर तीनों लोकोंमें विख्यात समुद्रकूप और प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) है। वहाँ यदि मनुष्य तीन राततक क्रोधको वशमें कर ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करता है तो उसका आत्मा समस्त पापोंसे मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है और उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। भारत! भागीरथीके पूर्वतटपर प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)-से उत्तर दिशामें 'हंसप्रपतन' नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ स्नानमात्र कर लेनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा वह यात्री सूर्य एवं चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य पुण्यप्रद उर्वशीरमण तथा विशाल हंसपाण्डुर नामक तीर्थोंमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो! नरेश्वर! वह स्वर्गलोकमें छाछठ हजार वर्षोंतक पितरोंके साथ सेवित होता है और नरोत्तम! स्वर्गलोकमें वह सदा उर्वशीको देखता रहता है। पुत्र! साथ ही युधिष्ठिर ऋषि, गन्धर्व और किन्नर निरन्तर उसकी पूजा करते हैं। तदनन्तर पुण्य क्षीण हो जानेपर जब वह स्वर्गसे च्युत होता है, तब दस हजार गाँवोंका उपभोग करनेवाला भूपाल होता है। वह अनेकों सहस्र नारियोंके बीच रहता हुआ उनका पति होता है। उससे उर्वशी-सरीखी सौन्दर्यशालिनी सौ कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। वह करधनी और नूपुरके झँकार-शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है ॥२७—३९॥

जो मनुष्य प्रयागतीर्थमें एक मासतक श्वेत वस्त्र धारण करके जितेन्द्रिय होकर नित्य नियमपूर्वक रहते हुए एक ही समय भोजन करता है, वह (जन्मान्तरमें) राजा होता है,

सुवर्णालङ्कृतानां तु नारीणां लभते शतम्।
 पृथिव्यामासमुद्रायां महाभूमिपतिर्भवेत्॥ ४१
 धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति नित्यशः।
 भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥ ४२
 अथ संध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
 उपवासी शुचिः संध्यां ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ ४३
 कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
 कोटिवर्षसहस्राणां स्वर्गलोके महीयते॥ ४४
 ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
 सुवर्णमणिमुक्ताद्यकुले जायेत रूपवान्॥ ४५
 ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु।
 दशाश्वमेधकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत्॥ ४६
 कृताभिषेकस्तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
 धनाद्यो रूपवान् दक्षो दाता भवति धार्मिकः॥ ४७
 चतुर्वेदेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं सत्यवादिषु।
 अहिंसायां तु यो धर्मो गमनादेव तत् फलम्॥ ४८
 कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र यत्रावगाह्यते।
 कुरुक्षेत्राद् दशगुणा यत्र विन्ध्येन संगता॥ ४९
 यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्था तपोधना।
 सिद्धक्षेत्रं हि तज्जेयं नात्र कार्या विचारणा॥ ५०
 क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यथः।
 दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता॥ ५१
 यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति हि शरीरिणः।
 तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ५२
 ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
 तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनां तु महानदी।
 मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥ ५३

तथा समुद्रपर्यन्तं पृथ्वीका चक्रवर्तीं समाद् हो जाता है। उसे सुवर्णालिंकारोंसे विभूषित सैकड़ों स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। वह धन-धान्यसे सम्पन्न होकर नित्य दान देता रहता है। इस प्रकार प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। तदनन्तर रमणीय संध्यावटकी छायामें जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक जितेन्द्रिय एवं निराहार रहकर पवित्रभावसे संध्योपासन करता है वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य कोटितीर्थमें जाकर प्राणोंका परित्याग करता है वह हजारों करोड़ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर जब स्वर्गलोकसे नीचे गिरता है, तब सुन्दर रूप धारण कर सुवर्ण, मणि और मोतीसे भरे-पूरे कुलमें जन्म लेता है। इसके बाद वासुकिहृदकी उत्तर दिशामें स्थित भोगवती नामक तीर्थमें जानेपर वहाँ दशाश्वमेध नामवाला दूसरा तीर्थ मिलता है। वहाँ जो मनुष्य स्नान करता है उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वह सम्पत्तिशाली, सौन्दर्य-सम्पन्न, चतुर, दानी और धर्मात्मा होता है। चारों वेदोंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, सत्यभाषणसे जो पुण्य कहा गया है तथा अहिंसा-व्रतका पालन करनेसे जो धर्म बतलाया गया है, वह सारा फल प्रयागतीर्थकी यात्रासे ही प्राप्त हो जाता है। गङ्गामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रके समान फलदायिका मानी गयी हैं, परंतु जहाँ वह विन्ध्यपर्वतसे संयुक्त हुई हैं, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रसे दसगुना अधिक फलदायिनी हो जाती हैं॥ ४०—४९॥

जहाँ बहुत-से तीर्थोंसे युक्त, महाभाग्यशालिनी एवं तपस्विनी गङ्गा बहती हैं, उस स्थानको सिद्धक्षेत्र मानना चाहिये, इसमें अन्यथा विचार करना अनुचित है। गङ्गा भूतलपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको तथा स्वर्गलोकमें देवताओंको तारती हैं, इसी कारण उन्हें 'त्रिपथगा'* कहा जाता है। मृत प्राणीकी हड्डियाँ जितने समयतक गङ्गामें वर्तमान रहती हैं, उतने वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका स्वामी होता है। गङ्गा सभी तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, नदियोंमें महानदी और महान्-से-महान् पाप करनेवाले सभी प्राणियोंके लिये मोक्षदायिनी हैं।

* तुलनीय वाल्मी० १। ४३—त्रीन् पथो भावयन्त्येष तस्मात् त्रिपथगा स्मृता।

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।
 गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ।
 तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥ ५४
 सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम् ।
 गतिमन्विष्यमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ॥ ५५
 पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
 महेश्वरशिरोभृष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥ ५६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०६ ॥

गङ्गा सर्वत्र तो सुलभ हैं, परंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-संगममें दुर्लभ मानी गयी हैं। इन स्थानोंपर स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको चले जाते हैं और जो यहाँ शरीर-त्याग करते हैं, उनका तो पुनर्जन्म होता ही नहीं, अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। जिनका चित्त पापसे आच्छादित है, अतः उद्धार पानेके लिये गङ्गाके समान दूसरी गति नहीं है। महेश्वरके जटाजूटसे च्युत हुई मङ्गलमयी गङ्गा समस्त पापोंका हरण करनेवाली है। ये पवित्रोंमें परम पवित्र और मङ्गलोंमें मङ्गल-स्वरूपा हैं ॥ ५०—५६ ॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

प्रयाग-स्थित विविध तीर्थोंका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु ।
 यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १
 मानसं नाम तीर्थं तु गङ्गाया उत्तरे तटे ।
 त्रिरात्रोपोषितो स्नात्वा सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २
 गोभूहिरण्यदानेन यत् फलं प्राप्नुयान्नरः ।
 स तत्फलमवाप्नुति तत् तीर्थं स्मरते पुनः ॥ ३
 अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते ।
 मृतस्तु लभते स्वर्गं नरकं च न पश्यति ॥ ४
 अप्सरोगणसंगीतैः सुसोऽसौ प्रतिबुद्ध्यते ।
 हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।
 बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गं राजेन्द्र भुञ्जते ॥ ५
 ततः स्वर्गात् परिभृष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः ।
 सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये जायते विपुले कुले ॥ ६
 षष्ठितीर्थसहस्राणि षष्ठितीर्थशतानि च ।
 माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसंगमम् ॥ ७

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागका ही माहात्म्य श्रवण करो, जिसे सुनकर मनुष्य निस्संदेह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गाके उत्तरी तटपर मानस नामक तीर्थ है, जहाँ तीन राततक निराहार रहकर निवास करनेसे मनुष्य अपनी सारी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। गौ, पृथ्वी और सुवर्ण दान करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल उसे मानस-तीर्थके स्मरणसे प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य निष्कामभावसे अथवा किसी कामनाको लेकर गङ्गाकी धारामें डूबकर मर जाता है, वह स्वर्गमें चला जाता है। उसे नरकका दर्शन नहीं करना पड़ता; वह हंस और सारससे युक्त विमानपर चढ़कर देवलोकको जाता है। वहाँ वह अप्सरासमूहके सुमधुर गान-शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। राजेन्द्र! इस प्रकार वह अनेकों हजार वर्षोंतक स्वर्ग-सुखका उपभोग करता है। पुनः पुण्य-कर्मके क्षीण हो जानेपर जब उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है, तब वह सुवर्ण, मणि और मोतियोंसे सम्पन्न विशाल कुलमें जन्म लेता है। माघमासमें गङ्गा-यमुनाके संगमपर छाछ छाप छाप हजार तीर्थ एकत्र होते हैं।

गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम्।
 प्रयागे माघमासे तु त्र्यःस्नानात् तत् फलम्॥ ८
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये कर्षाग्निं यस्तु साधयेत्।
 अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः॥ ९
 यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु देहिनः।
 तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ १०
 ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
 स भुक्त्वा विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं स्मरते पुनः॥ ११
 जलप्रवेशं यः कुर्यात् सङ्गमे लोकविश्रुते।
 राहुग्रस्ते तथा सोमे विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः॥ १२
 सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते।
 षष्ठिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ १३
 स्वर्गे च शक्तलोकेऽस्मिन्नृषिगन्धर्वसेविते।
 परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले॥ १४
 अथःशिरास्तु यो ज्वालामूर्धवपादः पिबेन्नरः।
 शतवर्षं सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ १५
 परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र सोऽग्निहोत्री भवेन्नरः।
 भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ १६
 यः स्वदेहं तु कर्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति।
 विहगौरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत् फलम्॥ १७
 शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते।
 तस्मादपि परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः॥ १८
 गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वांश्च प्रियवाचकः।
 भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ १९
 यामुने चोत्तरे कूले प्रयागस्य तु दक्षिणे।
 ऋणप्रमोचनं नाम तत् तीर्थं परमं स्मृतम्॥ २०
 एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैः सर्वैः प्रमुच्यते।
 स्वर्गलोकमवाप्नोति ह्यनृनश्च सदा भवेत्॥ २१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥ १०७॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०७॥

इसलिये विधिपूर्वक एक लाख गौओंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल माघमासमें प्रयाग-तीर्थमें तीन दिनतक स्नान करनेसे मिलता है। जो मनुष्य गङ्गा-यमुनाके संगमपर कर्षाग्नि (कंडा जलाकर पञ्चाग्नि)-की साधना करता है, वह सभी अङ्गोंसे सम्पन्न, नीरोग और पाँचों कर्मेन्द्रियोंसे स्वस्थ हो जाता है। उस प्राणीके अङ्गोंमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुण्य क्षीण हो जानेपर वह स्वर्गसे च्युत होकर भूतलपर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है और यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग करके पुनः प्रयागतीर्थका स्मरण करता तथा वहाँ पहुँचता है॥ १—११॥

राहुद्वारा चन्द्रमाको ग्रस्त कर लिये जानेपर अर्थात् चन्द्रग्रहणके अवसरपर जो मनुष्य इस लोकप्रसिद्ध संगमके जलमें प्रवेश करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सोमलोकको प्राप्त होता है और वहाँ चन्द्रमाके साथ आनन्द मनाता है। पुनः साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गलोक तथा ऋषियों एवं गन्धर्वोंद्वारा सेवित इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र ! स्वर्गसे च्युत होनेपर वह समृद्ध कुलमें जन्म धारण करता है। राजेन्द्र ! जो मनुष्य प्रयागमें पैरोंको ऊपर और सिरको नीचे कर अग्निकी ज्वालाका पान करता है, वह एक लाख वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा स्वर्गसे च्युत होनेपर भूतलपर अग्निहोत्री होता है। यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। जो मनुष्य प्रयागतीर्थमें अपने शरीरके मांसको काटकर पक्षियोंको खानेके लिये दे देता है, पक्षियोंद्वारा खाये गये शरीरवाले उस प्राणीको जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। वह एक लाख वर्षोंतक सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह इस लोकमें धर्मात्मा, गुणसम्पन्न, सौन्दर्यशाली, विद्वान् और प्रियभाषी राजा होता है तथा यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। प्रयागके दक्षिण और यमुनाके उत्तर तटपर ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो परम श्रेष्ठ कहा जाता है। वहाँ एक रात निवास कर स्नान करनेसे मनुष्य सभी ऋणोंसे मुक्त हो जाता है और सदाके लिये ऋणरहित होकर स्वर्गलोकमें चला जाता है॥ १२—२१॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

प्रयागमें अनशन-व्रत तथा एक मासतकके निवास (कल्पवास)-का महत्त्व

युधिष्ठिर उवाच

एतच्छुत्वा प्रयागस्य यत् त्वया परिकीर्तिम्।
विशुद्धं मेऽद्य हृदयं प्रयागस्य तु कीर्तनात्॥ १

अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीर्त्तशम्।

यं च लोकमवाजोति विशुद्धः सर्वकिल्बिषैः॥ २

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागे तु अनाशकफलं विभो।

प्राज्ञोति पुरुषो श्रीमान् श्रद्धानो जितेन्द्रियः॥ ३

अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः।

अश्वमेधफलं तस्य गच्छतस्तु पदे पदे॥ ४

कुलानि तारयेद् राजन् दश पूर्वान् दशापरान्।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेत् तु परमं पदम्॥ ५

युधिष्ठिर उवाच

महाभाग्यं हि धर्मस्य यत् त्वं वदसि मे प्रभो।

अल्पेनैव प्रयत्नेन बहून् धर्मनिवाज्युते॥ ६

अश्वमेधैस्तु बहुभिः प्राप्यते सुव्रतैरिह।

इमं मे संशयं छिन्थि परं कौतूहलं हि मे॥ ७

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महावीर यदुक्तं पद्मयोनिना।

ऋषीणां संनिधौ पूर्वं कथ्यमानं मया श्रुतम्॥ ८

पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्।

प्रविष्टमात्रे तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे॥ ९

व्यतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश।

नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ १०

एवं ज्ञात्वा तु राजेन्द्र सदा श्रद्धापरो भवेत्।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने जो प्रयागके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे सुनकर प्रयागका कीर्तन करनेसे अब मेरा हृदय विशुद्ध हो गया है। अब मुझे यह बतलाइये कि प्रयागमें अनशन (उपवास) करनेसे कैसा फल प्राप्त होता है और उसके प्रभावसे समस्त पापोंसे मुक्त होकर मनुष्य किस लोकमें जाता है?॥ १-२॥

मार्कण्डेयजीने कहा—ऐश्वर्यशाली राजन्! प्रयागतीर्थमें जो श्रद्धालु विद्वान् इन्द्रियोंको वशमें करके अनशन-व्रतका पालन करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। राजेन्द्र! वह सर्वाङ्गसे सम्पन्न, नीरोग और पाँचों कर्मेन्द्रियोंसे स्वस्थ रहता है। चलते समय उसे पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वह अपने पहलेके दस और पीछे होनेवाले दस कुलोंका उद्धार कर देता है तथा सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है॥ ३-५॥

युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो! आप मुझे जो धर्मका माहात्म्य बतला रहे हैं, उसके अनुसार एक ओर तो थोड़े ही प्रयत्नसे महान् धर्मकी प्राप्ति होती है और दूसरी ओर वह धर्म अश्वमेध-सदृश अनेकों उत्तम व्रतोंके अनुष्ठानसे मिलता है। (इस विषमताको लेकर मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, अतः) मेरे इस संदेहका निवारण कीजिये; क्योंकि मेरे मनमें महान् आश्वर्य हो रहा है॥ ६-७॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें पदमयोनि ब्रह्माने ऋषियोंके निकट जिसका वर्णन किया था, उसे कहते समय मैंने भी सुना था। (वही इस समय बतला रहा हूँ।) प्रयागका मण्डल पाँच योजन विस्तारवाला है। उसकी भूमिमें प्रवेश करते ही पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य प्रयागमण्डलमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह बीती हुई सात पीढ़ियोंका तथा आनेवाली चौदह पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। ऐसा जानकर मनुष्यको सदा प्रयागके सेवनमें तत्पर होना चाहिये।

अश्रद्धानाः पुरुषाः पापोपहतचेतसः ।
प्राप्नुवन्ति न तत्स्थानं प्रयागं देवरक्षितम् ॥ ११

युधिष्ठिर उवाच

स्नेहाद् वा द्रव्यलोभाद् वा ये तु कामवशं गताः ।
कथं तीर्थफलं तेषां कथं पुण्यफलं भवेत् ॥ १२
विक्रयी सर्वभाण्डानां कार्यकार्यमजानतः ।
प्रयागे का गतिस्तस्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १३

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
मासमेकं तु यः स्नायात् प्रयागे नियतेन्द्रियः ॥ १४
शुचिस्तु प्रयतो भूत्वाहिंसकः श्रद्धयान्वितः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स गच्छेत् परमं पदम् ॥ १५
विश्रम्भधातकानां तु प्रयागे शृणु यत् फलम् ।
त्रिकालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्यमाचरेत् ।
त्रिभिर्मासैः स मुच्येत् प्रयागे नात्र संशयः ॥ १६
अज्ञानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत् ।
सर्वकामसमृद्धस्तु स्वर्गलोके महीयते ।
स्थानं च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम् ॥ १७
एवं ज्ञानेन सम्पूर्णः सदा भवति भोगवान् ।
तारिताः पितरस्तेन नरकात् सपितामहाः ॥ १८

धर्मानुसारि तत्त्वज्ञ पृच्छतस्ते पुनः पुनः ।
त्वत्प्रियार्थं समाख्यातं गुह्यमेतत् सनातनम् ॥ १९

युधिष्ठिर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम् ।
प्रीतोऽस्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनादेव ते मुने ॥ २०
त्वदर्शनात् तु धर्मात्मन् मुक्तोऽहं चाद्य किल्बिषात् ।
इदानीं वेद्विद्वां चात्मानं भगवन् गतकल्पषम् ॥ २१

राजेन्द्र ! जिनमें श्रद्धा नहीं है तथा जिनका चित्त पापोंसे आच्छादित हो गया है, ऐसे पुरुष देवताओंद्वारा सुरक्षित उस प्रयागतीर्थमें नहीं पहुँच पाते ॥ ८—११ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! प्रयागमें जाकर जो लोग स्नेहसे अथवा धनके लोभसे कामनाके वशीभूत हो जाते हैं, उन्हें कैसे तीर्थ-फलकी प्राप्ति होती है तथा किस प्रकारका पुण्यफल मिलता है ? जो कर्तव्य और अर्कतर्व्यके ज्ञानसे विहीन पुरुष वहाँ सभी प्रकारके पात्रोंका व्यापार करता है, उसकी क्या गति होती है ? यह सब मुझे बतलाइये ॥ १२—१३ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! यह प्रसङ्ग तो परम गोपनीय एवं समस्त पापोंका विनाशक है, इसे बतला रहा हूँ, सुनो, जो मनुष्य जितेन्द्रिय, श्रद्धायुक्त और अहिंसाव्रती होकर पवित्रभावसे नियमपूर्वक एक मासतक प्रयागमें स्नान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और परमपदको प्राप्त कर लेता है। अब विश्वासघात (रूप पाप) करनेवालोंको प्रयागमें आनेपर जो फल मिलता है, उसे सुनो, वह यदि प्रयागमें तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) वेलामें स्नान करे और भिक्षा माँगकर भोजन करे तो निस्संदेह तीन महीनेमें उस पापसे मुक्त हो सकता है। जो मनुष्य अनजानमें ही प्रयागकी यात्रा आदि कार्य कर बैठता है, वह भी सम्पूर्ण कामनाओंसे परिपूर्ण होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा धनधान्यसे परिपूर्ण अविनाशी पदको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो जान-बूझकर नियमानुसार प्रयागकी यात्रा करता है, वह भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है तथा अपने प्रपितामह आदि पितरोंका नरकसे उद्धार कर देता है। तत्त्वज्ञ ! तुम्हारे बारंबार पूछनेके कारण मैंने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये इस धर्मानुकूल परम गोपनीय एवं सनातन (अविनाशी) विषयका वर्णन किया है ॥ १४—१९ ॥

युधिष्ठिर बोले—मुने ! आपके दर्शनसे आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज मैंने अपने कुलका उद्धार कर दिया। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है तथा मैं अनुगृहीत हो गया हूँ। धर्मात्मन् ! आपके दर्शनसे आज पापसे मुक्त हो गया हूँ। भगवन् ! अब मैं अपनेको पापरहित अनुभव कर रहा हूँ ॥ २०—२१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

दिष्ट्या ते सफलं जन्म दिष्ट्या ते तारितं कुलम्।
कीर्तनाद् वर्धते पुण्यं श्रुतात् पापप्रणाशनम्॥ २२

युधिष्ठिर उवाच

यमुनायां तु किं पुण्यं किं फलं तु महामुने।
एतम्ये सर्वमाख्याहि यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥ २३

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समाख्याता महाभागा यमुना तत्र निप्नगा॥ २४
येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुनाऽप्नगता।
योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी॥ २५
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर।
कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति॥ २६
अवगाह्याथ पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्॥ २७
अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं सृतम्॥ २८
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणे तटे॥ २९
उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः।
तीर्थं नीरुजकं* नाम यत्र देवा सवासवाः॥ ३०
उपासते सदा संध्यां त्रिकालं हि युधिष्ठिर।
देवाः सेवन्ति तत् तीर्थं ये चान्ये विदुषो जनाः॥ ३१
श्रद्धानपरो भूत्वा कुरु तीर्थाभिषेचनम्।
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः सृताः।
तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ३२

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! तुम्हारे सौभाग्यसे तुम्हारा जन्म सफल हुआ है और सौभाग्यसे ही तुम्हारे कुलका उद्धार हुआ है। प्रयागतीर्थका नाम लेनेसे पुण्यकी वृद्धि होती है और त्रवण करनेसे पापका नाश होता है॥ २२॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! यमुनामें स्नान करनेपर कैसा पुण्य होता है और कैसा फल प्राप्त होता है, इस विषयमें आपने जैसा देखा एवं सुना हो, वह सब मुझे बतलाइये॥ २३॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! महाभागा यमुनादेवी सूर्यकी कन्या हैं। ये तीनों लोकोंमें विष्ण्यात हैं। प्रयागमें (संगम-स्थलपर) ये नदीरूपसे विशेष ख्याति प्राप्त कर रही हैं। जहाँसे गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है, वहाँसे यमुना भी उद्भूत हुई हैं। ये हजार योजन (चार हजार मील) दूरसे भी नाम लेनेसे पापोंका नाश करनेवाली हैं। युधिष्ठिर! यमुनामें स्नान, जलपान और यमुनाका नाम-कीर्तन करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा दर्शन करनेसे मनुष्यको अपने जीवनमें कल्याणकारी अवसर देखनेको मिलते हैं। यमुनामें स्नान और जलपान करके मनुष्य अपने सात कुलोंको पावन बना देता है, परंतु जो यमुना-तटपर अपने प्राणोंका त्याग करता है, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है। यमुनाके दक्षिण तटपर सुप्रसिद्ध अग्नितीर्थ है और उसमें पश्चिम दिशामें धर्मराजका तीर्थ है, जो नरक नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको चले जाते हैं तथा जो लोग वहाँ प्राण-त्याग करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार यमुनाके दक्षिण तटपर हजारों तीर्थ हैं। युधिष्ठिर! अब मैं यमुनाके उत्तर तटपर महात्मा सूर्यके नीरुजक (निरंजन) नामक तीर्थका वर्णन कर रहा हूँ, जहाँ इन्द्रसहित सभी देवता त्रिकाल संध्योपासन करते हैं। देवता तथा अन्यान्य विद्वज्ञन सदा उस तीर्थका सेवन करते हैं। इसी प्रकार और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जो समस्त पापोंके विनाशक बतलाये जाते हैं। इसलिये तुम भी श्रद्धापरायण होकर उन तीर्थोंमें स्नान करो; क्योंकि उन तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें चले जाते हैं और जो वहाँ मरते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

* इसका—'विरुजकम्' तथा 'निरञ्जनम्' नाम पाठान्तर भी मिलता है।

गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते ।
 केवलं ज्येष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते ॥ ३३
 एवं कुरुष्व कौन्तेय सर्वतीर्थाभिषेचनम् ।
 यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ३४
 यस्त्विमं कल्य उत्थाय पठते च शृणोति च ।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ३५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०८ ॥

गङ्गा और यमुना—ये दोनों समान फल देनेवाली बतलायी जाती हैं । केवल ज्येष्ठ होनेके कारण गङ्गाकी सर्वत्र पूजा होती है । कुन्तीनन्दन ! इस प्रकार तुम सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करो; क्योंकि ऐसा करनेसे जीवनपर्यन्त किया हुआ सारा पाप तत्काल ही नष्ट हो जाता है । जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रसङ्गका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है ॥ २४—३५ ॥

एक सौ नवाँ अध्याय

अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा प्रयागकी महत्त्वाका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणे ब्रह्मसम्भवे ।
 तीर्थानां तु सहस्राणि शतानि नियुतानि च ।
 सर्वे पुण्याः पवित्राश्च गतिश्च परमा स्मृता ॥ १

सोमतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम् ।
 स्नानमात्रेण राजेन्द्रं पुरुषांस्तारयेच्छतम् ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ २

युधिष्ठिर उवाच

पृथिव्यां नैमित्यं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम् ।
 त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ॥ ३
 सर्वाणि तानि संत्यज्य कथमेकं प्रशंससि ।
 अप्रमाणं तु तत्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम् ॥ ४
 गतिं च परमां दिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान् ।
 किमर्थमल्पयोगेन बहु धर्मं प्रशंससि ।
 एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि यद् भवेत् ।
 नरस्याश्रद्धानस्य पापोपहतचेतसः ॥ ६

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र ! मैंने ब्रह्माके मुखसे प्रादुर्भूत हुए पुराणोंमें ब्रह्माद्वारा कहे जाते हुए सुना है कि तीर्थोंकी संख्या कहीं सौ, कहीं हजार और कहीं लाखोंतक बतलायी गयी है । ये सभी पुण्यप्रद एवं परम पवित्र हैं । (इनमें स्नान करनेसे) परम गतिकी प्राप्ति बतलायी गयी है । इन्हीं तीर्थोंमें सोमतीर्थ महान् पुण्यप्रद एवं महापातकोंका विनाशक है । वहाँ केवल स्नान करनेसे वह स्नानकर्ताके सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है, अतः सभी उपायोंद्वारा वहाँ स्नान अवश्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने ! भूतलपर नैमित्यरण्य और अन्तरिक्षमें पुष्कर पुण्यप्रद माने गये हैं तथा तीनों लोकोंमें कुरुक्षेत्रकी विशेषता बतलायी जाती है, परंतु आप इन सबको छोड़कर एक प्रयागकी ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? साथ ही वहाँ जानेसे परम दिव्य गति और अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति भी बतला रहे हैं, आपका यह कथन मुझे प्रमाणरहित, अश्रद्धेय और अनुचित प्रतीत हो रहा है । आप थोड़े-से परिश्रमसे बहुत बड़े धर्मकी प्राप्तिकी प्रशंसा किसलिये कर रहे हैं ? अतः इस विषयमें आपने जैसा देखा अथवा सुना हो, उसके अनुसार कहकर मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ ३-५ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! जो श्रद्धाहीन है तथा जिसके चित्तपर पापने अपना स्वत्व जमा लिया है, ऐसे मनुष्यकी आँखोंके सामने जो बात घटित हो रही

अश्रद्धानो ह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः ।
एते पातकिनः सर्वे तेनेदं भाषितं त्वया ॥ ७
शृणु प्रयागमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च यथान्यस्तं भविष्यति ॥ ८
शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा च युज्यते योगमात्मनः ।
क्लिश्यते चापरस्तत्र नैव योगमवाप्नुयात् ॥ ९
जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत वा न वा ।
तथा युगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः ॥ १०
यस्तु सर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।
तेन दानेन दत्तेन योगं नाभ्येति मानवः ॥ ११
प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा ।
प्रधानहेतुं वक्ष्यामि श्रद्धत्स्व च भारत ॥ १२
यथा सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र दृश्यते ।
ब्राह्मणे चास्ति यत्किञ्चित्तद् ब्राह्ममिति चोच्यते ॥ १३
एवं सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र पूज्यते ।
तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पूजयेद् बुधः ॥ १४
पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधिष्ठिर ।
ब्रह्मापि स्मरते नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम् ॥ १५
तीर्थराजमनुप्राप्य न चान्यत् किञ्चिदर्दहति ।
को हि देवत्वमासाद्य मनुष्यत्वं चिकीर्षति ॥ १६
अनेनैवोपमानेन त्वं ज्ञास्यसि युधिष्ठिर ।
यथा पुण्यतमं चास्ति तथैव कथितं मया ॥ १७

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं चेदं त्वया प्रोक्तं विस्मितोऽहं पुनः पुनः ।
कथं योगेन तत्प्राप्तिः स्वर्गवासस्तु कर्मणा ॥ १८

है, उसे 'अश्रद्धेय' तो नहीं कहना चाहिये। अश्रद्धालु, अपवित्र, दुर्बुद्धि और माङ्गलिक कार्योंसे विमुख—ये सभी पापी कहलाते हैं। (ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तुम्हारे सिरपर भी कोई पाप सवार है) जिसके कारण तुमने ऐसी बात कही है। अब प्रयागका माहात्म्य जैसा मैंने देखा अथवा सुना है, उसे बतला रहा हूँ, सुनो। जगत्‌में जो बात प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें देखी अथवा सुनी गयी हो, उसे शास्त्रोंद्वारा प्रमाणित कर अपने कल्याण-कार्यमें लगाना चाहिये। जो ऐसा नहीं करता, वह कष्टभागी होता है और उसे योगकी प्राप्ति नहीं होती। यह योग हजारों युगों या जन्मोंमें किन्हीं मनुष्योंको सुलभ होता या नहीं भी होता है। जो मनुष्य सभी प्रकारके रत्न ब्राह्मणोंको दान करता है, परंतु उस दानके प्रभावसे भी उसे उस योगकी प्राप्ति नहीं होती। किंतु प्रयागमें मरनेवालेको वह सब कुछ सुलभ हो जाता है, उसमें कुछ भी विपरीतता नहीं होती। भारत! मैं इसका प्रधान कारण बतला रहा हूँ, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो ॥६—१२॥

जैसे ब्रह्म सभी प्राणियोंमें सर्वत्र विद्यमान रहता है, और ब्राह्मणमें उसका कुछ विशेष अंश रहता है, जिसके कारण वह सब ब्राह्म कहे जाते हैं। जिस प्रकार सभी प्राणियोंमें सर्वत्र ब्रह्मकी सत्ता मानकर उनकी पूजा होती है (परंतु ब्राह्मण विशेषरूपसे पूजित होता है), उसी प्रकार विद्वान् लोग सभी तीर्थोंमें प्रयागको विशेष मान्यता देते हैं। युधिष्ठिर! सचमुच तीर्थराज पूजनीय है। ब्रह्मा भी इस उत्तम प्रयागतीर्थका नित्य स्मरण करते हैं। ऐसे तीर्थराजको पाकर मनुष्यको किसी अन्य वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं रह जाती। भला कौन ऐसा मनुष्य होगा जो देवत्वको पाकर मनुष्य बननेकी इच्छा करेगा। युधिष्ठिर! इसी उपमानसे तुम समझ जाओगे (कि प्रयागका इतना महत्व क्यों है)। जिस प्रकार प्रयाग सभी तीर्थोंमें विशेष पुण्यप्रद है, वैसा मैंने तुम्हें बतला दिया ॥१३—१७॥

युधिष्ठिरने पूछा—महर्षे! मैंने आपके द्वारा कहा गया प्रयाग-माहात्म्य तो सुना, किंतु इस योगरूप कर्मसे वैसे महान् फलकी प्राप्ति कैसे होती है तथा स्वर्गमें निवास कैसे मिलता है, इस विषयको सोचकर मैं बांबार

दाता वै लभते भोगान् गां च यत्कर्मणः फलम् ।
तानि कर्माणि पृच्छामि पुनस्तैः प्राप्यते मही ॥ १९

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो यथोक्तकरणं महीम् ।
गामग्निं ब्राह्मणं शास्त्रं काञ्चनं सलिलं स्त्रियः ॥ २०
मातरं पितरं चैव ये निन्दन्ति नराधमाः ।
न तेषामूर्ध्वं गमनमिदमाह प्रजापतिः ॥ २१
एवं योगस्य सम्प्राप्तिस्थानं परमदुर्लभम् ।
गच्छन्ति नरकं घोरं ये नराः पापकर्मिणः ॥ २२
हस्त्यश्वं गामनद्वाहं मणिमुक्तादिकाञ्चनम् ।
परोक्षं हरते यस्तु पश्चाद् दानं प्रयच्छति ॥ २३
न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः ।
अनेककर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरके पुनः ॥ २४
एवं योगं च धर्मं च दातारं च युधिष्ठिर ।
यथा सत्यमसत्यं वा अस्ति नास्तीति यत्कलम् ।
निरुक्तं तु प्रवक्ष्यामि यथाह स्वयमंशुमान् ॥ २५

इति श्रीमात्त्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०९ ॥

एक सौ दसवाँ अध्याय

जगत्के समस्त पवित्र तीर्थोंका प्रयागमें निवास

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु ।
नैमिषं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम् ॥ १
गया च धेनुकं चैव गङ्गासागरमेव च ।
एते चान्ये च बहवो ये च पुण्याः शिलोच्च्याः ॥ २
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः ।
प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः ॥ ३
त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये तु जाह्नवी ।
प्रयागादभिनिष्क्रान्ता सर्वतीर्थनमस्कृता ॥ ४

विस्मयविमुग्ध हो रहा हूँ; अतः जिन कर्मोंके फलस्वरूप दाताको ऐहलौकिक भोग और पृथ्वीकी प्राप्ति होती है तथा जन्मान्तरमें जिन कर्मोंके प्रभावसे पुनः पृथ्वीपर अधिकार प्राप्त होता है, उन्हीं कर्मोंको मैं जानना चाहता हूँ, अतः उन्हें बतलानेकी कृपा करें ॥ १८-१९ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—महाबाहु राजन्! मैंने जैसा करनेके लिये कहा है, उस विषयमें पुनः सुनो। जो नीच मनुष्य पृथ्वी, गौ, अग्नि, ब्राह्मण, शास्त्र, काञ्चन, जल, स्त्री, माता और पिताकी निन्दा करते हैं, उनकी ऊर्ध्वांगति नहीं होती—ऐसा प्रजापति ब्रह्माने कहा है। अतः इस प्रकारके कर्मोंद्वारा योगकी प्राप्तिस्थान परम दुर्लभ है; क्योंकि जो मनुष्य पापकर्ममें निरत रहते हैं, वे घोर नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य परोक्षमें दूसरेकी हाथी, घोड़ा, गौ, बैल, मणि, मुक्ता और सुवर्ण आदि वस्तुओंको चुरा लेता है और पीछे उसे दान कर देता है, ऐसे लोग उस स्वर्गलोकमें नहीं जाते, जहाँ (अपनी वस्तु दान करनेवाले) दाता सुख भोगते हैं, अपितु वे अनेकों पापकर्मोंसे युक्त होकर पुनः नरकमें कष्ट भोगते हैं। युधिष्ठिर! इस प्रकार योग, धर्म, दाता, सत्य, असत्य, अस्ति, नास्तिका जो फल कहा गया है तथा स्वयं सूर्यने जैसा बतलाया है, वही मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ ॥ २०—२५ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागका ही माहात्म्य सुनो। विद्वानोंका ऐसा कथन है कि नैमिषारण्य, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धुसागर, गयातीर्थ, धेनुक (गयाके पासका एक तीर्थ) और गङ्गासागर—ये तथा इनके अतिरिक्त तीन करोड़ दस हजार जो अन्य तीर्थ हैं, वे सभी एवं पुण्यप्रद पर्वत प्रयागमें नित्य निवास करते हैं। यहाँ तीन अग्निकुण्ड भी हैं, जिनके बीचसे सम्पूर्ण तीर्थोंद्वारा नमस्कृत गङ्गा प्रवाहित होती हुई प्रयागसे आगे निकलती हैं।

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
यमुना गङ्गया सार्थं संगता लोकभाविनी ॥ ५
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।
प्रयागं राजशार्दूल कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६
तिस्त्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुब्रवीत् ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत् सर्वं तव जाह्नवि ॥ ७
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ ।
भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः ॥ ८
तत्र वेदाश्व यज्ञाश्व मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर ।
प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ९
यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः ।
ततः पुण्यतमो नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १०
प्रयागः सर्वतीर्थेभ्यः प्रभवत्यधिकं विभो ।
यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत्पोधनम् ॥ ११
सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमन्वितम् ।
इदं सत्यं विजानीयात् साधूनामात्मनश्च वै ॥ १२
सुहृदश्च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च ।
इदं धन्यमिदं स्वर्गर्यमिदं सत्यमिदं सुखम् ॥ १३
इदं पुण्यमिदं धर्मं पावनं धर्ममुत्तमम् ।
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १४
अधीत्य च द्विजोऽप्येतन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।
य इदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः ॥ १५
जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते ।
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः ॥ १६
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्भव ।
त्वया च सम्यक् पृष्ठेन कथितं वै मया विभो ॥ १७
पितरस्तारिताः सर्वे तथैव च पितामहाः ।
प्रयागस्य तु सर्वे ते कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १८
एवं ज्ञानं च योगश्च तीर्थं चैव युधिष्ठिर ।

उसी प्रकार तीनों लोकोंमें विख्यात लोकभाविनी सूर्य-पुत्री यमुनादेवी यहीं गङ्गाके साथ सम्मिलित हुई हैं । गङ्गा और यमुनाका यह मध्यभाग पृथ्वीका जघनस्थल कहा जाता है । राजसिंह ! भूतल, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक—सभी जगहमें कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, परंतु वे सभी प्रयागस्थित गङ्गाकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते—ऐसा वायुने कहा है । अतः गङ्गाकी ही प्रधानता मानी गयी है । प्रयागमें झूँसी है । यहाँ कम्बल और अश्वतर नामक दोनों नागोंका निवासस्थान है । यहाँ जो भोगवती तीर्थ है, वह प्रजापति ब्रह्माकी वेदी है । युधिष्ठिर ! वहाँ शरीरधारी वेद एवं यज्ञ तथा तपोधन महर्षिगण ब्रह्माकी उपासना करते हैं । भारत ! वहाँ देवगण तथा चक्रवर्ती सम्प्राद् यज्ञोद्घारा यजन करते रहते हैं ॥ १—१० ॥

विभो ! तीनों लोकोंमें प्रयागसे बढ़कर अन्य कोई तीर्थ नहीं है, सबसे अधिक प्रभावशालिनी महाभागा गङ्गा जहाँ वर्तमान हैं, वह देश तपोमय (श्रेष्ठ सत्त्वसे युक्त) है । इस गङ्गाके तटवर्ती क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र जानना चाहिये । इस माहात्म्यको सत्य मानना चाहिये और साधुओं तथा अपने मित्रों एवं आज्ञाकारी शिष्योंके कानमें ही इसे बतलाना उचित है । यह प्रयाग—माहात्म्य धन्य, स्वर्गप्रद, सत्य, सुखदायक, पुण्यप्रद, धर्मसम्पन्न, परम पावन, श्रेष्ठ धर्मस्वरूप और समस्त पापोंका विनाशक है । यह महर्षियोंके लिये भी अत्यन्त गोपनीय है । इसका पाठकर द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) पापरहित हो स्वर्गको प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस अविनाशी एवं पुण्यप्रद तीर्थमाहात्म्यको सदा सुनता है, उसे जातिस्मरत्व (जन्मान्तर-स्मरण)-की प्राप्ति हो जाती है और वह स्वर्गलोकमें आनन्दका उपभोग करता है । कौरवकुलश्रेष्ठ युधिष्ठिर ! शिष्ट पुरुषोंका अनुकरण करनेवाले सत्पुरुष ही इन तीर्थोंमें पहुँच पाते हैं, अतः तुम इन तीर्थोंमें स्नान करो, अश्रद्धा मत करो । सामर्थ्यशाली राजन् ! तुम्हारे पूछनेपर ही मैंने सम्यकरूपसे इसका वर्णन किया है । ऐसा प्रश्न कर तुमने अपने पितामह आदि सभी पितरोंका उद्घार कर दिया । (अन्य जितने तीर्थ हैं) वे सभी प्रयागकी सोलहवीं कलाकी बगबरी नहीं कर सकते । युधिष्ठिर ! इस प्रकारके ज्ञान, योग और तीर्थकी प्राप्तिका

बहुक्लेशेन युज्यन्ते तेन यान्ति परां गतिम्।

त्रिकालं जायते ज्ञानं स्वर्गलोकं गमिष्यति॥ १९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके निवासका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

कथं सर्वमिदं प्रोक्तं प्रयागस्य महामुने।
एतत्रः सर्वमाख्याहि यथा हि मम तारयेत्॥ १
मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागे तु प्रोक्तं सर्वमिदं जगत्।
ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानो देवताः प्रभुरव्ययः॥ २
ब्रह्मा सृजति भूतानि स्थावरं जड़मं च यत्।
तान्येतानि परं लोके विष्णुः संवर्धते प्रजाः॥ ३
कल्पान्ते तत् समग्रं हि रुद्रः संहरते जगत्।
तदा प्रयागतीर्थं च न कदाचिद् विनश्यति॥ ४
ईश्वरं सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति।
यत्नेनानेन तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५

युधिष्ठिर उवाच

आख्याहि मे यथातथ्यं यथैषा तिष्ठति श्रुतिः।
केन वा कारणेनैव तिष्ठन्ते लोकसत्तमाः॥ ६
मार्कण्डेय उवाच

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
कारणं तत् प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर॥ ७
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्।
तिष्ठन्ति रक्षणायात्र पापकर्मनिवारणात्॥ ८
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्मा तिष्ठति।
वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥ ९

संयोग बड़े कष्टसे मिलता है; क्योंकि उसके संयोगसे मनुष्यको परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है, उसके हृदयमें तीनों कालोंका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह स्वर्गलोकको चला जाता है॥ ११—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११०॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! आपने तो यह सारा महत्त्व प्रयागका ही बतलाया है, इसका क्या कारण है? यह सब मुझे बतलाइये, जिससे मेरा तथा मेरे कुटुम्बका उद्धार हो जाय॥ १॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! इसका कारण सुनो। प्रयागमें इस सारे जगत्का निवास बतलाया जाता है। यहाँ अविनाशी एवं सामर्थ्यशाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सम्पूर्ण देवता वास करते हैं, ब्रह्मा जिन स्थावर-जड़मरूप प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं, उन सभी प्रजाओंका इस लोकमें भगवान् विष्णु पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्र इस सारे जगत्का संहार कर देते हैं, किंतु इस प्रयागतीर्थका कभी विनाश नहीं होता। सम्पूर्ण प्राणियोंका जो ईश्वर है, उसे जो देखता है, वही सचमुच देखनेवाला है। इस प्रयत्नसे जो लोग प्रयागमें निवास करते हैं, वे परमगतिको प्राप्त होते हैं॥ २—५॥

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! ये लोकश्रेष्ठ देवगण किस कारणवश प्रयागमें निवास करते हैं, इस विषयमें जैसा श्रुति-वचन हो, उसके अनुसार मुझे यथार्थरूपसे बतलाइये॥ ६॥

मार्कण्डेयजीने कहा—युधिष्ठिर! ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिस प्रयोजनसे प्रयागमें निवास करते हैं, वह कारण बतला रहा हूँ; उसके तत्त्वको श्रवण करो। प्रयागका मण्डल पाँच योजनमें फैला हुआ है। यहाँ पापकर्मका निवारण तथा प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिये उपर्युक्त देवगण निवास करते हैं। प्रतिष्ठानपुरसे उत्तरकी ओर गुप्तरूपसे ब्रह्माजी निवास करते हैं। भगवान् विष्णु प्रयागमें वेणीमाधवरूपसे विद्यमान हैं।

महेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।
 ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्रुं परमर्षयः।
 रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥ १०
 यस्मिञ्जुह्न् स्वकं पापं नरकं च न पश्यति।
 एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रयागे समहेश्वरः॥ ११
 सप्तद्वीपाः समुद्राश्रुं पर्वताश्रुं महीतले।
 रक्षमाणाश्रुं तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्लवम्॥ १२
 ये चान्ये ब्रह्मवः सर्वे तिष्ठन्ति च युधिष्ठिर।
 पृथिवीं तत्समाश्रित्य निर्मिता दैवतस्त्रिभिः॥ १३
 प्रजापतेरिदं क्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम्।
 एतत् पुण्यं पवित्रं वै प्रयागं च युधिष्ठिर।
 स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितोऽनघ॥ १४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १११ ॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

भगवान् वासुदेवद्वारा प्रयागके माहात्म्यका वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातृभिः सहितः सर्वेऽप्नेया सह भार्यया।
 ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य गुरुन् देवान्तर्पयत्॥ १
 वासुदेवोऽपि तत्रैव क्षणेनाभ्यागतस्तदा।
 पाण्डवैः सहितैः सर्वैः पूज्यमानस्तु माधवः॥ २
 कृष्णोन सहितैः सर्वैः पुनरेव महात्मभिः।
 अभिषिक्तः स्वराज्ये च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ३
 एतस्मिन्नन्तरे चैव मार्कण्डेयो महामुनिः।
 ततः स्वस्तीति चोक्त्वा तु क्षणादाश्रममागमत्॥ ४
 युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितोऽवसत्।
 महादानं ततो दत्त्वा धर्मपुत्रो महामनाः॥ ५
 यस्त्वदं कल्य उत्थाय माहात्म्यं पठते नरः।
 प्रयागं स्मरते नित्यं स याति परमं पदम्।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति॥ ६

तथा परमेश्वर शिव अक्षयवटके रूपमें स्थित हैं। इनके अतिरिक्त गन्धर्वोंसहित देवगण, सिद्धसमूह तथा यूथ-के-यूथ परमर्षि पाप-कर्मसे निवारण करनेके निर्मित नित्य प्रयागमण्डलकी रक्षा करते हैं, जिस मण्डलमें अपने पापोंका हवन करके प्राणी नरकका दर्शन नहीं करता, इस प्रकार प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सातों द्वीप, सातों समुद्र और भूतलपर स्थित सभी पर्वत उसकी रक्षा करते हुए प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। युधिष्ठिर! इनके अतिरिक्त अन्य जो बहुत-से देवता पृथिवीका आश्रय लेकर निवास करते हैं, उनके निवासस्थानका निर्माण इन्हीं तीनों देवताओंद्वारा हुआ है। यह प्रयाग प्रजापति ब्रह्माका क्षेत्र है—ऐसी प्रसिद्धि है। युधिष्ठिर! यह प्रयाग पुण्यप्रद एवं परम पवित्र है। निष्पाप राजेन्द्र! तुम अपने भाइयोंके साथ अपना राज्य-कार्य संभालो॥ ७—१४॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सभी भाइयों तथा पत्नी द्रौपदीके साथ ब्राह्मणोंको नमस्कार कर देवताओं एवं अपने गुरुजनोंको तर्पणद्वारा तृप्त किया। भगवान् वासुदेव भी अकस्मात् उसी क्षण वहीं आ पहुँचे। तब सभी पाण्डवोंने मिलकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की। तत्पश्चात् सभी महात्माओंके साथ-साथ भगवान् श्रीकृष्णने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पुनः उनके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। इसी बीच महामुनि मार्कण्डेय ‘स्वस्ति—तुम्हारा कल्याण हो’—यों कहकर क्षणमात्रमें अपने आश्रमको लौट गये। तदनन्तर महामना एवं धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिर भी बड़ा-बड़ा दान देकर भाइयोंके साथ वहाँ निवास करने लगे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस माहात्म्यका पाठ करता है तथा नित्य प्रयागका स्मरण करता है, वह परमपदको प्राप्त कर लेता है तथा समस्त पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकको चला जाता है॥ १—६॥

वासुदेव उवाच

मम वाक्यं च कर्तव्यं महाराज ब्रवीम्यहम्।
 नित्यं जपस्व जुह्वस्व प्रयागे विगतज्वरः ॥ ७
 प्रयागं स्मर वै नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर।
 स्वयं प्राप्स्यति राजेन्द्र स्वर्गलोकं न संशयः ॥ ८
 प्रयागमनुगच्छेद् वा वसते वापि यो नरः।
 सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ९
 प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः।
 अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १०
 अकोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढब्रतः।
 आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ ११
 ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम्।
 न हि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ॥ १२
 बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः।
 प्राप्यन्ते पार्थिवैरैतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् ॥ १३
 यो दरिद्रैपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर।
 तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १४
 ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम।
 तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते ॥ १५
 दश तीर्थसहस्राणि तिस्त्रः कोट्यस्तथाऽपगाः।
 माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायां भरतर्षभ ॥ १६
 स्वस्थो भव महाराज भुद्धक्ष्व राज्यमकण्टकम्।
 पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र यजमानो विशेषतः ॥ १७

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स महाभागो वासुदेवो महातपाः।
 युधिष्ठिरस्य नृपतेस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १८
 ततस्तत्र समाप्लाव्य गात्राणि सगणो नृपः।
 यथोक्तेनाथ विधिना परां निर्वृतिमागमत् ॥ १९
 तथा त्वमपि देवर्णे प्रयागाभिमुखो भव।
 अभिषेकं तु कृत्वाद्य कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ २०

सूत उवाच

एवमुक्त्वाथ नन्दीशस्तत्रैवान्तरधीयत।
 नारदोऽपि जगामाशु प्रयागाभिमुखस्तथा ॥ २१

भगवान् वासुदेवने कहा—महाराज युधिष्ठिर! मैं जैसा कह रहा हूँ मेरे उस वचनका पालन कीजिये। आप प्रयागमें जाकर संतापरहित हो नित्य भगवन्नामका जप और हवन कीजिये तथा हमलोगोंके साथ नित्य प्रयागका स्मरण कीजिये। राजेन्द्र! ऐसा करनेसे आप स्वयं स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो मनुष्य प्रयागकी यात्रा करता है अथवा वहाँ निवास करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और वह रुद्रलोकको चला जाता है। जो प्रतिग्रह (दान लेने)-से विमुख, संतुष्ट, जितेन्द्रिय, पवित्र और अहंकारसे दूर रहता है, उसे तीर्थफलकी प्राप्ति होती है। जो क्रोधरहित, ईमानदार, सत्यवादी, दृढब्रत और समस्त प्राणियोंके प्रति अपने समान ही व्यवहार करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। महीपते! ऋषियों तथा देवताओंने क्रमशः जिन यज्ञोंका विधान बतलाया है, उन यज्ञोंका अनुष्ठान निर्धन मनुष्य नहीं कर सकता; क्योंकि उन यज्ञोंमें बहुत-से उपकरणों तथा नाना प्रकारकी सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है। इनका अनुष्ठान तो राजा अथवा कहीं-कहीं कुछ समृद्धिशाली मनुष्य ही कर सकते हैं। नरेश्वर युधिष्ठिर! निर्धन मनुष्योंद्वारा भी जिस विधिका पालन किया जा सकता है और जो पुण्यमें यज्ञफलके समान है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनो! भरतसत्तम! यह पुण्यमयी तीर्थयात्रा ऋषियोंके लिये भी परम गोपनीय है तथा यज्ञोंसे भी बढ़कर फलदायक है। भरतर्षभ! दस हजार तीर्थ तथा तीन करोड़ नदियाँ माघमासमें गङ्गामें आकर निवास करती हैं। महाराज! आप स्वस्थ हो जायें और निष्कण्टक राज्यका उपभोग करें। राजेन्द्र! पुनः कभी विशेषरूपसे यज्ञ करते समय आप मुझे देख सकेंगे ॥ ७—१७ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! महान् भाग्यशाली एवं महान् तपस्वी वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरने सकुटुम्ब प्रयागमें जाकर यथोक्त विधिके अनुसार स्नान किया, जिससे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई। देवर्ण! इसलिये आप भी प्रयागकी ओर पथारिये और वहाँ स्नान कर आज ही कृतकृत्य हो जाइये ॥ १८—२० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर नन्दिकेश्वर ऐसा कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये तथा नारदजी भी शीघ्र ही प्रयागकी ओर चल दिये।

तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च विधिदृष्टेन कर्मणा ।

दानं दत्त्वा द्विजाग्रथेभ्यो गतः स्वभवनं तदा ॥ २२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्यं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रयागमाहात्म्य नामक एक सौ वारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११२ ॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार स्नान एवं जप आदि कार्य सम्पन्न किया । तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान देकर वे अपने आश्रमकी ओर चले गये ॥ २१-२२ ॥

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

भूगोलका विस्तृत वर्णन

ऋषय ऊचुः

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति प्रभो ।
कियन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ॥ १ ॥
महाभूमिप्रमाणं च लोकालोकस्तथैव च ।
पर्यासिः परिमाणं च गतिश्वन्द्राकर्योस्तथा ॥ २ ॥
एतद् ब्रवीहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थवित् ।
त्वदुक्तमेतत् सकलं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ३ ॥

सूत उवाच

द्वीपभेदसहस्राणि सप्त चान्तर्गतानि च ।
न शक्यन्ते क्रमेणोह वक्तुं वै सकलं जगत् ॥ ४ ॥
समैव तु प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह ।
तेषां मनुष्यास्तकेण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ५ ॥
अचिन्त्याः खलु ये भावास्तांस्तु तकेण साधयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥
सप्त वर्षाणि वक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथाविधम् ।
विस्तरं मण्डलं यच्च योजनैस्तन्निबोधत ॥ ७ ॥
योजनानां सहस्राणि शतं द्वीपस्य विस्तरः ।
नानाजनपदाकीर्णं पूरैश्च विविधैः शुभैः ॥ ८ ॥
सिद्धचारणसंकीर्णं पर्वतैरुपशोभितम् ।
सर्वधातुपिनद्वैस्तैः शिलाजालसमुद्रतैः ॥ ९ ॥

ऋषियोंने पूछा—प्रभो ! इस भूतलपर कितने द्वीप हैं ? कितने समुद्र और पर्वत हैं ? कितने वर्ष (पृथ्वीके खण्ड) हैं ? उनमें कौन-कौन-सी नदियाँ बतलायी जाती हैं ? इस विस्तृत भूमिका प्रमाण कितना है ? लोकालोक पर्वत कैसा है ? तथा चन्द्रमा और सूर्यकी गति, अवस्थिति और परिमाण कितना है ? यह सब हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये, क्योंकि आप यथार्थवेत्ता हैं । हमलोग यह सारा विषय आपके मुखसे सुनना चाहते हैं ॥ १-३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! द्वीपोंके तो हजारों भेद हैं, परंतु वे सभी इन्हीं सात प्रधान द्वीपोंके अन्तर्गत हैं । इस सम्पूर्ण जगत्का क्रमशः वर्णन करना सम्भव नहीं है, अतः चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रहोंके साथ उन सात द्वीपोंका ही वर्णन कर रहा हूँ । साथ ही मनुष्यके अनुमानानुसार उनका प्रमाण भी बतला रहा हूँ; क्योंकि जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हें बुद्धि, ज्ञान एवं अनुमानद्वारा ही सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये* । जो प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यका लक्षण है । अब मैं सातों वर्षोंका वर्णन प्रारम्भ कर रहा हूँ । इनमें सर्वप्रथम योजनके परिमाणसे जम्बूद्वीपका जितना बड़ा विस्तृत मण्डल है, उसे बतला रहा हूँ, सुनिये । जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है । यह अनेकों प्रकारके सुन्दर देशों एवं नगरोंसे परिपूर्ण है । इसमें सिद्ध और चारण निवास करते हैं । यह सभी प्रकारकी धातुओंसे संयुक्त एवं शिलासमूहोंसे समन्वित पर्वतोंद्वारा सुशोभित

* महाभारत ६ । ६ । १२ आदिका पाठ-अर्थ कुछ भिन्न होनेपर भी यहाँ यही पाठ एवं अर्थ युक्तियुक्त है ।

पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिस्तु समंततः ।
 प्रागायता महापाश्चाः षडिमे वर्षपर्वताः ॥ १०
 अवगाह्य हृभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।
 हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ॥ ११
 सर्वतः सुमुखश्चापि निषधः पर्वतो महान् ।
 चातुर्क्षण्यस्तु सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयः स्मृतः ।
 चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्ण च चतुर्दिशम् ॥ १२
 वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्तः समाहितः ।
 नानावर्णैः समः पाश्चैः प्रजापतिगुणान्वितः ॥ १३
 नाभीबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मणं तस्य तेन वै ॥ १४
 पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते ।
 भृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः ।
 तेनास्य शूद्रता सिद्धा मेरोनामार्थकर्मतः ॥ १५
 पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः ।
 तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ १६
 नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः पीतो हिरण्मयः ।
 मयूरबर्हवर्णश्च शातकौम्भः स शृङ्गवान् ॥ १७
 एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः ।
 तेषामन्तरविष्काम्भो नवसाहस्रमुच्यते ॥ १८
 मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समंततः ।
 चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः ॥ १९
 मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः ।
 वेद्यर्थं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्थं तथोत्तरम् ॥ २०
 वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वै वर्षपर्वताः ।
 द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनैर्दक्षिणोत्तरम् ॥ २१
 जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते ।
 नीलश्च निषधश्चैव तेषां हीनाश्च ये परे ॥ २२

है; उन पर्वतोंसे निकलनेवाली नदियोंसे यह चारों ओरसे व्यास है। इसमें पूर्वसे पश्चिमतक फैला हुए अत्यन्त विस्तृत छः वर्षपर्वत हैं। इसमें पूर्व और पश्चिम—दोनों ओरके समुद्रोंतक फैला हुआ हिमवान् नामक पर्वत है, जो सदा बर्फसे ढका रहता है। इसके बाद सुवर्णसे व्यास हेमकूट नामक पर्वत है। तत्पश्चात् जो चारों ओरसे देखनेमें अत्यन्त सुन्दर है, वह निषध नामक महान् पर्वत है ॥ ४—११३ ॥

इसके एक ओर सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जिसके चारों पार्श्वभाग चार रंगोंके हैं और जो उल्लमय (गर्भाशयके समान) कहा जाता है। यह चारों दिशाओंमें चौबीस हजार योजनोंतक फैला हुआ है। इसका ऊपरी भाग वृत्तकी आकृतिका अर्थात् गोलाकार है तथा निचला भाग चौकोर है। इसके पार्श्वभाग नाना प्रकारकी रंग-बिरंगी समतल भूमियोंसे युक्त हैं, जिससे प्रजापतिके गुणोंसे युक्त-सा दीखता है। यह अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके नाभि-बन्धनसे उद्भूत हुआ है। इसका पूर्वी भाग श्वेत रंगका है, इसीसे इसकी ब्राह्मणता झलकती है। इसका दक्षिणी भाग पीले रंगका है, इसीसे इसमें वैश्यत्वकी प्रतीति होती है। इसका पश्चिमी भाग भँवरेके पंख-सरीखा काला है, इसीसे इसकी शूद्रता तथा अर्थ और काम—दोनों दृष्टियोंसे मेरुके नामकी सार्थकता सिद्ध होती है। इसका उत्तरी भाग स्वभावसे ही लाल रंगका है, इसीसे इसका क्षत्रियत्व सूचित होता है। इस प्रकार मेरुके चारों रंगोंका विवरण बतलाया गया है। तदनन्तर नील पर्वत है, जो वैदूर्यमणिसे व्यास है। पुनः श्वेत पर्वत है, जो सुवर्णमय होनेके कारण पीले रंगका है तथा सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित शृङ्गवान् पर्वत है, जो मयूर-पिच्छ-सरीखे चित्र-विचित्र रंगोंवाला है। ये सभी पर्वतराज सदा सिद्धों एवं चारणोंसे सेवित होते रहते हैं। उनका भीतरी व्यास नौ हजार योजन बतलाया जाता है ॥ १२—१८ ॥

पृथ्वीके मध्य भागमें इलावृत नामक वर्ष है, जो महामेरु पर्वतके चारों ओर फैला हुआ है। यह चौबीस हजार योजनकी समतल भूमियों विस्तृत है। इसके मध्य भागमें महामेरु नामक पर्वत है, जो धूमरहित अग्निके समान चमकता रहता है। मेरु पर्वतका आधा दक्षिणी भाग दक्षिण मेरु और आधा उत्तर मेरुके नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार जो सात वर्ष बतलाये गये हैं, उनमें पृथक-पृथक् सात वर्षपर्वत हैं, जो दक्षिणसे उत्तरतक दो-दो हजार योजनके परिमाणमें फैले हुए हैं। जम्बूद्वीपका विस्तार इन्हीं वर्षों तथा पर्वतोंके विस्तारके बराबर कहा जाता है। इनमें नील और निषध—ये दोनों विशाल पर्वत हैं

श्रेतश्च हेमकूटश्च हिमवाऽङ्गवांश्च यः।
जम्बूद्वीपप्रमाणेन ऋषभः परिकीर्त्यते॥ २३
तस्माद् द्वादशभागेन हेमकूटोऽपि हीयते।
हिमवान् विंशभागेन तस्मादेव प्रहीयते।
अष्टाशीतिसहस्राणि हेमकूटो महागिरिः॥ २४
अशीतिर्हिमवाऽङ्गैल आयतः पूर्वपश्चिमे।
द्वीपस्य मण्डलीभावाद् ह्वासवृद्धी प्रकीर्तिते॥ २५
वर्षाणां पर्वतानां च यथाभेदं तथोत्तरम्।
तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै॥ २६
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु।
सप्त तानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम्॥ २७
वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः।
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्॥ २८
हेमकूटं परं तस्मान्नामा किम्पुरुषं स्मृतम्।
हेमकूटाच्च निषधं हरिवर्षं तदुच्यते॥ २९
हरिवर्षात् परं चापि मेरोस्तु तदिलावृतम्।
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्॥ ३०
रम्यकादपरं श्रेतं विश्रुतं तद्विरण्यकम्।
हिरण्यकात् परं चैव शृङ्गशाकं कुरुं स्मृतम्॥ ३१
धनुःसंस्थे तु विज्ञेये देवर्षे दक्षिणोत्तरे।
दीर्घाणि तस्य चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम्॥ ३२
पूर्वतो निषधस्येदं वेद्यर्थं दक्षिणं स्मृतम्।
परं त्विलावृतं पश्चाद् वेद्यर्थं तु तदुत्तरम्॥ ३३
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्यत्र त्विलावृतम्।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥ ३४
उदगायतो महाशैलो माल्यवान् नाम पर्वतः।
द्वात्रिंशता सहस्रेण प्रतीच्यां सागरानुगः॥ ३५
माल्यवान् वै सहस्रैक आनीलनिषधायतः।
द्वात्रिंशत् त्वेवमप्युक्तः पर्वतो गन्धमादनः॥ ३६

तथा श्रेत, हेमकूट, हिमवान् और शृङ्गवान्—ये अपेक्षाकृत उनसे छोटे हैं। ऋषभ पर्वत जम्बूद्वीपके समान ही विस्तारवाला बतलाया जाता है। हेमकूट पर्वत ऋषभ पर्वतके बारहवें भागसे न्यून है और हिमवान् उसके बीसवें अंशसे कम है। हेमकूट नामक महान् पर्वत अठासी हजार योजनके परिमाणवाला कहा जाता है तथा हिमवान् पर्वत पूर्वसे पश्चिमतक अस्सी हजार योजनमें फैला हुआ है। जम्बूद्वीपके मण्डलाकारमें स्थित होनेके कारण इन पर्वतोंका न्यूनाधिक्य बतलाया गया है। पर्वतोंकी ही भाँति वर्षोंमें भी भिन्नता है। वे सभी एक-दूसरेसे उत्तर दिशाकी ओर फैले हुए हैं। इनके बीचमें देश बसे हुए हैं, जो सात वर्षोंमें विभक्त हैं। ये सभी वर्ष ऐसे पर्वतोंसे घिरे हुए हैं, जो झरनोंके कारण अगम्य हैं। इसी प्रकार सात नदियोंके विभाजनसे ये परस्पर गमनागमनरहित हैं। इन वर्षोंमें सब ओर अनेकों जातियोंके प्राणी निवास करते हैं। यह हिमवान् पर्वतसे सम्बन्धित वर्ष भारतवर्षके नामसे विख्यात है॥ १९—२८॥

हिमवान्के बाद हेमकूटतकका प्रदेश किम्पुरुष नामसे कहा जाता है तथा हेमकूटसे आगे निषध पर्वततक हरिवर्ष कहलाता है। हरिवर्षके बाद मेरुपर्वततकका प्रदेश इलावृतवर्षके नामसे तथा इलावृतके बाद नीलपर्वततकका प्रदेश रम्यकवर्षके नामसे विख्यात है। रम्यकवर्षके बाद श्रेतपर्वततकका जो प्रदेश है, वह हिरण्यकवर्षके नामसे प्रसिद्ध है। हिरण्यकवर्षके बाद शृङ्गशाक नामक वर्ष है, जिसे कुरुवर्ष भी कहते हैं। मेरुपर्वतके दक्षिण और उत्तर दिशामें धनुषके आकारमें दो वर्ष स्थित हैं। उन्हींके मध्यमें इलावृतवर्ष है। निषध पर्वतके पूर्व दिशामें मेरुकी वेदीका अर्धभाग दक्षिणवेदी और इलावृतसे पश्चिमकी ओर वेदीका आधा भाग उत्तरवेदीके नामसे विख्यात है। इन्हीं दोनोंके बीचमें मेरुकी स्थिति समझनी चाहिये, जहाँ इलावृतवर्ष अवस्थित है। नील पर्वतके दक्षिण और निषध पर्वतके उत्तर माल्यवान् नामक पर्वत है, जिसकी गणना विशाल पर्वतोंमें है। यह उत्तरसे दक्षिणकी ओर लम्बा है। यह पश्चिम दिशामें सागरपर्यन्त बत्तीस हजार योजनमें फैला हुआ है। इस प्रकार माल्यवान् पर्वत नील और निषध पर्वतोंके बीचमें एक हजार योजनके विस्तारमें स्थित है। इसी तरह गन्धमादन पर्वत भी बत्तीस हजार

परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।
 चातुर्वर्णसमो वर्णेश्वतुरस्त्रः समुच्छ्रितः ॥ ३७
 नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते ।
 पीतं तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभं परम् ।
 उत्तरं तस्य रक्तं वै इति वर्णसमन्वितः ॥ ३८
 मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः ।
 आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥ ३९
 योजनानां सहस्राणि चतुराशीति सूच्छ्रितः ।
 प्रविष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः ॥ ४०
 विस्तराद् द्विगुणश्चास्य परीणाहः समंततः ।
 स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः ॥ ४१
 भुवनैरावृतः सर्वैर्जातरूपपरिष्कृतैः ।
 तत्र देवगणाश्चैव गन्धर्वासुराक्षसाः ।
 शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसां गणैः ॥ ४२
 स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः ।
 यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः ॥ ४३
 भद्राश्चं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे ।
 उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ ४४
 विष्कम्भपर्वतास्तद्वन्मन्दरो गन्धमादनः ।
 विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषिताः ॥ ४५
 अरुणोदं मानसं च सितोदं भद्रसंज्ञितम् ।
 तेषामुपरि चत्वारि सरांसि च वनानि च ॥ ४६
 तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्धमादने ।
 जम्बूवृक्षस्तथाश्वस्थो विपुलेऽथ वटः परम् ॥ ४७
 गन्धमादनपार्श्वे तु पश्चिमेऽपरगणिडकः ।
 द्वात्रिंशतिसहस्राणि योजनैः सर्वतः समः ॥ ४८
 तत्र ते शुभकर्मणः केतुमालाः परिश्रुताः ।
 तत्र कालानलाः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः ॥ ४९
 स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ।
 तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः पत्रभासुरः ॥ ५०

योजन विस्तृत बतलाया गया है। इन दोनोंके मण्डलके मध्यमें मेरु नामक स्वर्णमय पर्वत है। यह चार प्रकारके रंगोंसे युक्त, चौकोर और अत्यन्त ऊँचा है ॥२९—३७॥

उसके पार्श्वभाग अनेक प्रकारके रंगोंसे विभूषित हैं। इसका पूर्वीय भाग श्वेत, दक्षिणी भाग पीला, पश्चिमका भाग भ्रमरके पंखके समान काला और उत्तरी हिस्सा लाल है। इस प्रकार यह चार रंगोंसे युक्त कहा जाता है। इस तरह चारों ओरसे पर्वतोंसे घिरा हुआ दिव्य पर्वत मेरु राजाकी भाँति सुशोभित होता है। इसकी कान्ति तरुण सूर्य अर्थात् मध्याह्नकालिक सूर्यकी-सी है। यह धूमरहित अग्निके सदृश चमकता रहता है। पृथ्वीके ऊपर इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजनतक पृथ्वीके नीचे धूंसा हुआ है और अद्वाईस हजार योजनतक फैला हुआ है। चारों ओरसे इसका फैलाव विस्तारसे दुगुना है। यह महान् दिव्य पर्वत मेरु दिव्य ओषधियोंसे परिपूर्ण तथा सभी सुवर्णमय भुवनोंसे घिरा हुआ है। इस पर्वतराजपर देवगण, गन्धर्व, असुर और राक्षस सर्वत्र अप्सराओंके साथ रहकर आनन्दका अनुभव करते हैं। यह मेरु प्राणियोंके निमित्त-कारणभूत भुवनोंसे घिरा हुआ है। इसके विभिन्न पार्श्वभागोंमें चार देश अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—(पूर्वमें) भद्राश्च, (दक्षिणमें) भारत, (पश्चिममें) केतुमाल और (उत्तरमें) किये हुए पुण्योंके आश्रयस्थानरूप उत्तरकुरु। इसी प्रकार उसके चारों दिशाओंमें सभी प्रकारके रत्नोंसे विभूषित मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक विष्कम्भ पर्वत भी विद्यमान हैं। उनके ऊपर अरुणोद, मानस, सितोद और भद्र नामक सरोवर और अनेकों वन हैं तथा मन्दर पर्वतपर भद्रकदम्ब, गन्धमादनपर जामुन, विपुलपर पीपल और सुपार्श्वपर बरगदका वृक्ष है ॥३८—४७॥

गन्धमादनके पश्चिम भागमें अमरगणिडक नामक पर्वत है, जो सब ओरसे बत्तीस हजार योजनकी समतल भूमिसे सम्पन्न है। वहाँके शुभ कर्म करनेवाले निवासी केतुमाल नामसे विख्यात हैं। वे सभी कालाग्निके समान भयानक, महान् सत्त्वसम्पन्न एवं महाबली होते हैं। वहाँकी स्त्रियोंके शरीरका रंग लाल कमलके समान होता है। वे परम सुन्दरी एवं देखनेमें आह्वादकारिणी होती हैं। उसपर कटहलका एक महान् दिव्य वृक्ष है, जिसके पत्ते अत्यन्त चमकीले हैं।

तस्य पीत्वा फलरसं संजीवन्ति समायुतम्।
तस्य माल्यवतः पाश्चे पूर्वे पूर्वा तु गणिडका।
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि तत्रापि शतमुच्चते ॥ ५१

भद्राश्वस्तत्र विज्ञेयो नित्यं मुदितमानसः।
भद्रमालवनं तत्र कालाप्रश्च महाद्रुमः ॥ ५२

तत्र ते पुरुषाः श्रेता महासत्त्वा महाबलाः।
स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ ५३

चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः।
चन्द्रशीतलगात्राश्च स्त्रियो हृत्पत्लगन्धिकाः ॥ ५४

दशवर्षसहस्राणि आयुस्तेषामनामयम्।
कालाप्रस्य रसं पीत्वा ते सर्वे स्थिरयौवनाः ॥ ५५

सूत उवाच

इत्युक्तवानृषीन् ब्रह्मा वर्षाणि च निसर्गतः।
पूर्वं ममानुग्रहकृद् भूयः किं वर्णयामि वः ॥ ५६
एतच्छ्रुत्वा वचस्ते तु ऋषयः संशितव्रताः।
जातकौतूहलाः सर्वे प्रत्यूचुस्ते मुदान्विताः ॥ ५७

ऋष्य ऊचुः

पूर्वापरौ समाख्यातौ यौ देशौ तौ त्वया मुने।
उत्तराणां च वर्षाणां पर्वतानां च सर्वशः ॥ ५८
आख्याहि नो यथातथ्यं ये च पर्वतवासिनः।
एवमुक्तस्तु ऋषिभिस्तेभ्यस्त्वाख्यातवान् पुनः ॥ ५९

सूत उवाच

शृणुध्वं यानि वर्षाणि पूर्वोक्तानि च वै मया।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ ६०
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते यत्र वै प्रजाः।

उसके फलोंका रस पीकर वहाँके निवासी दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। माल्यवान् के पूर्वी भागमें पूर्वगणिडका नामक पर्वत है, जो बत्तीस हजार योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा कहा जाता है। उसकी तलहटीमें भद्राश्व नामक देश है, जहाँके निवासी सदा प्रसन्न-मन रहते हैं। वहाँ भद्रमाल नामक वन है, जिसमें कालाप्र नामक एक महान् वृक्ष है। वहाँके निवासी पुरुष गोरे, महान् सत्त्वसम्पन्न एवं महाबली होते हैं तथा कुछ स्त्रियाँ कुमुदिनीकी-सी कान्तिवाली, परम सुन्दरी एवं देखनेमें प्रिय लगनेवाली होती हैं। इसी प्रकार कुछ स्त्रियाँ गौर वर्णवाली होती हैं, उनकी कान्ति चन्द्रमा-सरीखी उज्ज्वल होती है और उनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान चमकदार होता है। उनका शरीर भी चन्द्रमाके समान शीतल होता है और उससे कमलकी-सी गन्ध निकलती है। कालाप्र वृक्षोंके फलोंका रस पान कर वहाँके सभी निवासियोंकी युवावस्था स्थिर बनी रहती है और वे नीरोग रहकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं ॥ ४८—५५ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें ब्रह्माने स्वभावतः मुझपर कृपा कर जिन वर्षोंका वर्णन किया था, उनका विवरण मैं आपलोगोंको बतला चुका। अब पुनः आपलोगोंसे किसका वर्णन करूँ? सूतजीकी यह बात सुनकर वे सभी व्रतनिष्ठ ऋषि विस्मयविमुग्ध हो गये। तत्पश्चात् वे प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ ५६-५७ ॥

ऋषियोंने पूछा—मुने! पूर्व और पश्चिम दिशामें स्थित जो देश हैं; उनके विषयमें तो आप हमलोगोंको बतला चुके। अब उत्तर दिशामें स्थित वर्षों और पर्वतोंका वर्णन कीजिये। साथ ही उन पर्वतोंपर निवास करनेवाले लोगोंका चरित्र भी यथार्थरूपसे बतलाइये। ऋषियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सूतजीने पुनः उनसे वर्णन करना आरम्भ किया ॥ ५८-५९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पहले मैं आपलोगोंसे जिन वर्षोंके विषयमें वर्णन कर चुका हूँ (उनके अतिरिक्त अन्य वर्षोंका वर्णन) सुनिये। नीलपर्वतसे दक्षिण और निषध पर्वतसे उत्तर दिशामें रमणक नामक वर्ष है, जहाँकी

रतिप्रधाना विमला जायन्ते यत्र मानवाः ।
 शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः ॥ ६१
 तत्रापि च महावृक्षो न्यग्रोधो रोहिणो महान् ।
 तस्यापि ते फलरसं पिबन्ते वर्तयन्ति हि ॥ ६२
 दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
 जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः ॥ ६३
 उत्तरेण तु श्वेतस्य पार्श्वे शृङ्गस्य दक्षिणे ।
 वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥ ६४
 महाबला महासत्त्वा नित्यं मुदितमानसाः ।
 शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः ॥ ६५
 एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः ।
 आयुष्माणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च ॥ ६६
 तस्मिन् वर्षे महावृक्षो लकुचः पत्रसंश्रयः ।
 तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः ॥ ६७
 शृङ्गासाहस्र्य शृङ्गाणि त्रीणि तानि महान्ति वै ।
 एकं मणियुतं तत्र एकं तु कनकान्वितम् ।
 सर्वरत्नमयं चैकं भुवनैरुपशोभितम् ॥ ६८
 उत्तरे चास्य शृङ्गस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे ।
 कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ॥ ६९
 तत्र वृक्षा मधुफला दिव्यामृतमयाऽप्यगाः ।
 वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलैश्चाभरणानि च ॥ ७०
 सर्वकामप्रदातारः केचिद् वृक्षा मनोरमाः ।
 अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षासतत्र मनोरमाः ।
 ये रक्षन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम् ॥ ७१
 सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मा काञ्छनवालुका ।
 सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निःशब्दाः पवनाः शुभाः ॥ ७२
 देवलोकच्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः ।
 शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते स्थिरयौवनाः ॥ ७३
 मिथुनानि प्रजायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ।
 तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्ति ह्यमृतोपमम् ॥ ७४
 एकाहाज्ञायते युग्मं समं चैव विवर्धते ।
 समं रूपं च शीलं च समं चैव मियन्ति वै ॥ ७५

प्रजाएँ विशेष विलासिनी एवं स्वच्छ गौरवर्णवाली होती हैं । वहाँ उत्पन्न हुए सारे मानव गौरवर्ण, कुलीन और देखनेमें प्रिय लगनेवाले होते हैं । वहाँ भी रोहिण नामक एक महान् बरगदका वृक्ष है, उसीके फलोंका रस पान करके वहाँके निवासी जीवन-निर्वाह करते हैं । वे सभी महान् भाग्यशाली श्रेष्ठ पुरुष सदा प्रसन्न रहते हुए ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं । श्वेत पर्वतके उत्तर और शृङ्गवान् पर्वतके दक्षिण पार्श्वमें हिरण्वत नामक वर्ष है, जहाँ हैरण्वती नामकी नदी प्रवाहित होती है । वहाँके निवासी श्रेष्ठ मानव, महाबली, महापराक्रमी, नित्य प्रसन्नचित्त, गौरवर्ण, कुलीन और देखनेमें मनोरम होते हैं । वे बारह हजार पाँच सौ वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं । उस वर्षमें पत्तोंसे आच्छादित लकुच (बड़हर)- का एक महान् वृक्ष है, उसके फलोंका रस पीकर वहाँके मानव जीवनयापन करते हैं । शृङ्गवान् पर्वतके तीन शिखर हैं, जो बड़े ऊँचे-ऊँचे हैं । उनमेंसे एक मणिसे परिपूर्ण, एक सुवर्णसे सम्पन्न और एक सर्वरत्नमय एवं भुवनोंसे सुशोभित है ॥ ६०—६८ ॥

इस शृङ्गवान् पर्वतके उत्तर और दक्षिण समुद्र-तटतक उत्तरकुरु नामक वर्ष है जो परम पुण्यप्रद एवं सिद्धेंद्रिया सुसेवित है । वहाँ नदियोंमें दिव्य अमृततुल्य जल प्रवाहित होता है । वृक्ष मधुसदृश मीठे फलवाले होते हैं और उन्होंसे वस्त्र, फल और आभूषणोंकी उत्पत्ति होती है । उनमेंसे कुछ वृक्ष तो अत्यन्त सुन्दर और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं तथा दूसरे कुछ ऐसे मनोहर वृक्ष हैं, जिनसे दूध निकलता है । वे सदा दूध और अमृततुल्य सुस्वादु छहों रसोंकी रक्षा करते हैं । वहाँकी सारी भूमि मणिमयी है जिसपर सुवर्णकी महीन बालुका बिखरी रहती है । चारों ओर सुख-स्पर्शवाली शब्दरहित शीतल-मंद-सुगन्ध वायु बहती रहती है । वहाँ देवलोकसे च्युत हुए धर्मात्मा मानव ही जन्म धारण करते हैं । वे सभी गौरवर्ण, कुलीन और स्थिर जवानीसे युक्त होते हैं । वे जोड़ेके रूपमें उत्पन्न होते हैं, उनमें स्त्रियाँ अप्सराओंकी भाँति सुन्दरी होती हैं । वे उन दूधसे भरे हुए वृक्षोंके अमृततुल्य दूधका पान करते हैं । वे प्राणी एक ही दिन जोड़ेके रूपमें उत्पन्न होते हैं, साथ-ही-साथ बढ़ते हैं, उनका रूप तथा शील-स्वभाव एक-

एकैकमनुरक्ताश्च चक्रवाकमिव ध्रुवम्।
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः ॥ ७६
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
जीवन्ति च महासत्त्वा न चान्या स्त्री प्रवर्तते ॥ ७७

सूत उवाच

एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते युगे।
दृष्टः परमधर्मज्ञाः किं भूयः कथयामि वः ॥ ७८
आख्यातास्त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता।
उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुः सूतनन्दनम् ॥ ७९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे द्वीपादिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें द्वीपादिवर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११३ ॥

सा होता है और वे एक साथ ही प्राण-त्याग भी करते हैं। वे चक्रवाककी तरह निश्चितरूपसे परस्पर अनुरक्त, नीरोग, शोकरहित और सदा प्रसन्नचित रहते हैं। वे महापराक्रमी मानव ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वहाँ कोई पुरुष दूसरा विवाह नहीं करता ॥ ६९—७७ ॥

सूतजी कहते हैं—परम धर्मज्ञ ऋषियो! इस प्रकार मैंने भारतीय युगमें वर्षोंकी सृष्टि देखी है (जिसका वर्णन कर दिया), अब पुनः आपलोगोंको क्या बतलाऊँ। बुद्धिमान् सूतपुत्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ऋषियोंने पुनः उत्तरवर्ती वर्षोंके विषयमें सुननेके लिये सूतनन्दनसे जिज्ञासा प्रकट की ॥ ७८-७९ ॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षका वर्णन

ऋष्य ऊचुः

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः।
चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्ग ससर्जिरे ॥ १
एतद् वेदितुमिच्छामः सकाशात् तव सुव्रत।
उत्तरश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदतांवर ॥ २
एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लौमहर्षणिः।
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ३
बुद्ध्या विचार्य बहुधा विमृश्य च पुनः पुनः।
तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा ॥ ४

सूत उवाच

अथाह वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ॥ ५
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम्।
यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ॥ ६

ऋषियोंने पूछा—सुव्रत! जो यह भारतवर्ष है, जिसमें स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं, जिन्होंने प्रजाओंकी सृष्टि की है, उनके विषयमें हमलोग आपके मुखसे सुनना चाहते हैं। साथ ही वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! पुनः इसके बाद भारत आदि अन्य वर्षोंके विषयमें भी कुछ बतलाइये ॥ १-२ ॥

प्रसिद्ध पौराणिक लोमहर्षणके पुत्र सूतजीने उन पवित्रात्मा ऋषियोंका प्रश्न सुनकर अपनी बुद्धिसे बारम्बार बहुधा विचार-विमर्श करके उन ऋषियोंसे 'उत्तरश्रवण' (उत्तरवर्ती वर्षों)-के विषयमें कहना आरम्भ किया ॥ ३-४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं इस भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाली प्रजाओंका वर्णन कर रहा हूँ। इन प्रजाओंकी सृष्टि करने तथा इनका भरण-पोषण करनेके कारण मनुको भरत कहा जाता है। निरुक्त-वचनोंके आधारपर यह वर्ष (उन्हींके नामपर) भारतवर्षके* नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ स्वर्ग, मोक्ष तथा इन दोनोंके अन्तर्वर्ती (भोग) पदकी प्राप्ति होती है।

* सभी पुराणोंमें प्रायः सर्वत्र ऋषभ-पुत्र भरतके नामपर ही देशका नाम भारत कहा गया है। नाभिसे अजनाभ तथा उनके पोते भरतसे देशका भारत नाम पड़ा। मनु इनके भी पूर्वज थे, अतः यह कथन भी ठीक है। पर पाश्चात्योंने शकुन्तला-पुत्रके नामपर देशका नाम पड़ना गलत बतलाया है और भ्रमसे आज उसीका प्रचार है (विशेष जानकारीके लिये देखिये कल्याण वर्ष ३० । ८)। यह अध्याय वायुपुराण ४५। ७२-१३७ तथा ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी प्राप्त है।

न खल्वन्यत्र मत्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः ।
 भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत ॥ ७
 इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताप्रपर्णो गभस्तिमान् ।
 नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ८
 अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
 योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ ९
 आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः ।
 तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ॥ १०
 द्वीपो हृपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः ।
 यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ॥ ११
 ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
 इन्द्रायुधवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥ १२
 तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम् ।
 धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥ १३
 सकल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि ।
 इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे ॥ १४
 यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तिः ।
 य एनं जयते कृत्वं स सम्राडिति कीर्तिः ॥ १५
 अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितां स्मृतः ।
 स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात् ॥ १६
 सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुताः कुलपर्वताः ।
 महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ॥ १७
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः ।
 तेषां सहस्रशश्वान्ये पर्वतास्तु समीपतः ॥ १८

इस भूतलपर भारतवर्षके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी प्राणियोंके लिये कर्मका विधान नहीं सुना जाता । इस भारतवर्षके नौ भेद हैं, उनके नाम सुनिये—इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताप्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गन्धर्वद्वीप और वारुणद्वीप—ये आठ तथा उनमें नवाँ यह समुद्रसे घिरा हुआ भारतद्वीप^१ (या खण्ड) है । यह द्वीप दक्षिणसे उत्तरतक एक हजार योजनमें फैला हुआ है । इसका विस्तार गङ्गाके उद्गमस्थानसे लेकर कन्याकुमारी अथवा कुमारी अन्तरीपतक है । यह तिरछेरूपमें ऊपर-ही-ऊपर दस हजार योजन विस्तृत है । इस द्वीपके चारों ओर सीमावर्ती प्रदेशोंमें म्लेच्छ जातियोंकी बस्तियाँ हैं । इसकी पूर्व एवं पश्चिम दिशामें क्रमशः किरात और यवन निवास करते हैं । इसके मध्यभागमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विभागपूर्वक यज्ञ, शस्त्र-ग्रहण और व्यवसाय आदिके द्वारा जीवन-यापन करते हुए निवास करते हैं । उन चारों वर्णोंका पारस्परिक व्यवहार धर्म, अर्थ और कामसे संयुक्त होता है और वे अपने-अपने कर्मोंमें ही लगे रहते हैं । यहाँ कल्पसहित पाँचों वर्णों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, योगी और संन्यासी) तथा आश्रमोंका विधिपूर्वक पालन होता है । इस द्वीपके मनुष्योंकी कर्म-प्रवृत्ति स्वर्ग और मोक्षके लिये होती है ॥ ५—१४ ॥

इस मानव द्वीपको जो त्रिकोणाकार फैला हुआ है, जो सम्पूर्ण रूपमें जीत लेता है वह सम्राट् कहलाता है । अन्तरिक्षपर विजय पानेवालोंके लिये यह लोक सम्राट् कहा गया है और यही लोक स्वराट्के नामसे भी प्रसिद्ध है । अब मैं इसका पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ । इस महान् भारतवर्षमें सात विश्वविख्यात कुलपर्वत हैं । महेन्द्र^२, मलय, सह्य, शुक्तिमान्^३, ऋक्षवान्^४, विन्ध्य और पारियात्र^५—ये कुलपर्वत हैं । इनके समीप अन्य हजारों पर्वत हैं ।

१. इस प्रकार आजका दीखनेवाला सारा भूमण्डल बृहत्तर भारतके ही अन्तर्गत सिद्ध होता है । इसीलिये हेमाद्रि संकल्पमें 'भारतवर्षे भरतखण्डे' पढ़ा जाता है ।

२. उड़ीसाके दक्षिणपूर्वी भागका पर्वत ।

३. यह शक्ति पर्वत है, जो रायगढ़से लेकर मानभूम जिलेकी डालमा पहाड़ीतक फैला है ।

४. यह विन्ध्य-पर्वतमालाका पूर्वी भाग है ।

५. यह विन्ध्यपर्वतमालाका पश्चिमी भाग है ।

अभिज्ञातास्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्रसानवः ।
 अन्ये तेष्यः परिज्ञाता हस्ता हस्तोपजीविनः ॥ १९
 तैर्विमिश्रा जानपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः ।
 पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती * ॥ २०
 शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ।
 इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥ २१
 गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ।
 कौशिकी च तृतीया च निश्चीरा गण्डकी तथा ।
 चक्षुलौहित इत्येता हिमवत्पादनिःसृताः ॥ २२
 वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघी सिन्धुरेव च ।
 पर्णशा चन्दना चैव सदानीरा मही तथा ॥ २३
 पारा चर्मण्वती यूपा विदिशा वेणुमत्यपि ।
 शिप्रा हृवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिताःस्मृताः ॥ २४
 शोणो महानदी चैव नर्मदा सुरसा क्रिया ।
 मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च ।
 तमसा पिप्पली श्येनी करतोया पिशाचिका ॥ २५
 विमला चञ्चला चैव वञ्जुला वालुवाहिनी ।
 शुक्तिमन्ती शुनी लज्जा मुकुटा हृदिकापि च ।
 ऋक्षवन्तप्रसूतास्ता नद्योऽमलजलाः शुभाः ॥ २६
 तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या क्षिप्रा च निषधा नदी ।
 वेणवा वैतरणी चैव विश्वमाला कुमुद्वती ॥ २७
 तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा ।
 विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ २८
 गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी च वञ्जुला ।
 तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापि च ।
 दक्षिणापथनद्यास्ताः सह्यपादाद् विनिःसृताः ॥ २९
 कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा चोत्पलावती ।
 मलयान्त्रिःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥ ३०
 त्रिषामा ऋषिकुल्या च इक्षुला त्रिदिवाचला ।
 लाङ्गूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥ ३१
 ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ।
 कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥ ३२

इनके अतिरिक्त अन्य भी विशाल एवं चित्र-विचित्र शिखरोंवाले पर्वत हैं तथा दूसरे कुछ उनसे भी छोटे हैं जो निम्न (पर्वतीय) जातियोंके आश्रयभूत हैं । इन्हीं पर्वतोंसे संयुक्त जो प्रदेश हैं उनमें चारों ओर आर्य एवं म्लेच्छ जातियाँ निवास करती हैं, जो इन आगे कही जानेवाली नदियोंका जल पान करती हैं । जैसे गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा (चिनाव), यमुना, सरयू, इरावती (रावी), वितस्ता (झेलम), विपाशा (व्यास), देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा (धोपाप), बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी (कोसी), तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, चक्षु, लौहित—ये सभी नदियाँ हिमालयकी उपत्यका (तलहटी)-से निकली हुई हैं । वेदस्मृति, वेत्रवती (बेतवा), वृत्रघी, सिन्धु, पर्णशा, चन्दना, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, यूपा, विदिशा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती तथा कुन्ती—इन नदियोंका उद्गमस्थान पारियात्र पर्वत है ॥ १५—२४ ॥

शोण, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, करतोया, पिशाचिका, विमला, चञ्चला, वञ्जुला, वालुवाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा और हृदिका—ये स्वच्छसलिला कल्याणमयी नदियाँ ऋक्षवन्त (ऋक्षवान्) पर्वतसे उद्भूत हुई हैं । तापी, पयोष्णी (पूर्णानदी या पैनगङ्गा), निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, निषधा, वेण्या, वैतरणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा तथा अन्तःशिला—ये सभी पुण्यतोया मङ्गलमयी नदियाँ विन्ध्याचलकी उपत्यकाओंसे निकली हुई हैं । गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, वञ्जुला (मंजीरा), कर्णाटककी तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या (वर्धनीदी) और कावेरी—ये सभी दक्षिणापथमें प्रवाहित होनेवाली नदियाँ हैं, जो सह्यपर्वतकी शाखाओंसे प्रकट हुई हैं । कृतमाला (वैगईन नदी), ताम्रपर्णी, पुष्पजा (कुसुमाङ्गा, पेम्बे या पेन्नार नदी) और उत्पलावती—ये कल्याणमयी नदियाँ मलयाचलसे निकली हुई हैं । इनका जल बहुत शीतल होता है । त्रिषामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, अचला, लाङ्गूलिनी और वंशधरा—ये सभी नदियाँ महेन्द्रपर्वतसे निकली हुई मानी जाती हैं । ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा और पलाशिनी—इन नदियोंका उद्गम शुक्तिमान् पर्वतसे हुआ है ।

* यह नदी-वर्णन ठीक इसी प्रकार ब्रह्मपुर० १९। १०—२४, ब्रह्माण्ड० १। १६। २४—३१ तथा वायु० ४५। ६३—७८ में भी है ।

सर्वा: पुण्यजला: पुण्या: सर्वाश्चैव समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वा: सर्वपापहरा: शुभा: ॥ ३३

तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्त्वमेकुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥ ३४
शूरसेना भद्रकारा बाह्याः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः किराताः कुन्त्याश्च कुन्तलाः काशिकोसलाः ॥ ३५
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह ।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः ॥ ३६
सहस्रानन्तरे चैते यत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ३७
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः ।
रामप्रियार्थं स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः ॥ ३८
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः ।
ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥ ३९
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
पुरंधाश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः ॥ ४०
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः ।
शका द्रुह्याः पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्तिकाः ॥ ४१
रामठाः कण्टकाराश्च कैकेय्या दशनामकाः ।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च ॥ ४२
काम्बोजा दरदाश्चैव वर्वरा पह्लवा तथा ।
अत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरकाः ॥ ४३
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः ।
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान् निबोधत ॥ ४४
अङ्गा वङ्गा मदुरका अन्तर्गिरिबहिर्गिरी ।
ततः प्लवङ्गमातङ्गा यमका मालवर्णकाः ।
सुह्योत्तराः प्रविजया मार्गवागेयमालवाः ॥ ४५
प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताप्रलिपकाः ।
शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥ ४६

ये सभी पुण्यतोया नदियाँ पुण्यप्रद, सर्वत्र बहनेवाली तथा साक्षात् या परम्परासे समुद्रगामिनी हैं। ये सब-की-सब विश्वके लिये माता-सदृश हैं तथा इन सबको कल्याणकारिणी एवं पापहारिणी माना गया है^१ ॥ २५—३३ ॥

अथवा इनकी सैकड़ों-हजारों छोटी-बड़ी सहायक नदियाँ भी हैं जिनके कछारोंमें कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, सजाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, बाह्य, सहपटच्चर, मत्स्य^२, किरात, कुन्ती, कुन्तल, काशी, कोसल, आवन्त, कलिङ्ग, मूक और अन्धक—ये देश अवस्थित हैं, जो प्रायः मध्यदेशके जनपद कहलाते हैं। ये सहायपर्वतके निकट बसे हुए हैं, यहाँ गोदावरी नदी प्रवाहित होती है। अखिल भूमण्डलमें यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम है। तत्पश्चात् गोवर्धन, मन्दराचल और श्रीरामचन्द्रजीका प्रियकारक गन्धमादन पर्वत है, जिसपर मुनिवर भरद्वाजजीने श्रीरामके मनोरंजनके लिये स्वर्गीय वृक्षों और दिव्य ओषधियोंको अवतरित किया था। उन्होंने मुनिवरके प्रभावसे वह प्रदेश पुष्टोंसे परिपूर्ण होनेके कारण मनोमुग्धकारी हो गया था। बाह्लीक (बलख), वाटधान, आभीर, कालतोयक, पुरञ्च, शूद्र, पल्लव, आत्तखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु (सिंध), सौवीर (सिन्धका उत्तरी भाग), मद्रक (पंजाबका उत्तरी भाग), शक, द्रुह्य (ययाति-पुत्र द्रुह्युका उत्तरी भाग—पश्चिमी पंजाब), पुलिन्द, पारद, आहारमूर्तिक, रामठ, कण्टकार, कैकेय और दशनामक—ये क्षत्रियोंके उपनिवेश हैं तथा इनमें वैश्य और शूद्र-कुलके लोग भी निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त कम्बोज (अफगानिस्तान), दरद, बर्बर, पह्लव (ईरान), अत्रि, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरक, लम्पक, तलगान और जाङ्गलसहित सैनिक प्रदेश—ये सभी उत्तरापथके देश हैं। अब पूर्व दिशाके देशोंको सुनिये। अङ्ग (भागलपुर), वङ्ग (बंगाल), मदगुरुक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवङ्ग, मातङ्ग, यमक, मालवर्णक, सुह्य (उत्तरी असम), प्रविजय, मार्ग, वागेय, मालव, प्राग्ज्योतिष (आसामका पूर्वीभाग), पुण्ड्र (बंगलादेश), विदेह (मिथिला), ताप्रलिपक (उड़ीसाका उत्तरी भाग), शाल्व, मागध और गोनर्द—ये पूर्व दिशाके जनपद हैं ॥ ३४—४६ ॥

१. इन नदियोंका पूरा परिचय कल्याण, वराहपुराणाङ्गमें द्रष्टव्य है।

२. यहाँ पाणिनि अष्टाध्यायीके काशिका (४। १। १६०) कौमुदि (४। १। १७०) सम्प्रदायोंमें दो सूत्रोंका अन्तर होकर प्रतिलिपिकी भूलसे 'सूरमत्स्य' की जगह 'सूरमस' पाठ हो गया है। 'गणरत्नमहोदधि' में वर्द्धमानका पाठ ठीक है।

अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः ।
 पाण्ड्याश्व केरलाश्वैव चोलाः कुल्यास्तथैव च ॥ ४७
 सेतुका मूषिकाश्वैव कुपथा वाजिवासिकाः ।
 महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्वैव सर्वशः ॥ ४८
 आभीराश्व सहैषीका आटव्या: शबरास्तथा ।
 पुलिन्दा विन्ध्यमुलिका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥ ४९
 कुलीयाश्व सिरालाश्व अश्मका भोगवर्धनाः ।
 तथा तैत्तिरिकाश्वैव दक्षिणापथवासिनः ॥ ५०
 नासिक्याश्वैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः ।
 भारुकच्छः समाहेयाः सह सारस्वतैस्तथा ॥ ५१
 काच्छीकाश्वैव सौराष्ट्रा आनर्ता अर्बुदैः सह ।
 इत्येते अपरान्तास्तु शृणु ये विन्ध्यवासिनः ॥ ५२
 मालवाश्व करुषाश्व मेकलाश्वोत्कलैः सह ।
 औण्डा माषा दशार्णाश्व भोजाः किञ्चिन्धकैः सह ॥ ५३
 तोशलाः कोसलाश्वैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ।
 तुमुरास्तुम्बराश्वैव पद्मा नैषधैः सह ॥ ५४
 अरुपाः शौणिडकेराश्व वीतिहोत्रा अवन्त्यः ।
 एते जनपदाः ख्याता विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥ ५५
 अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
 निराहाराः सर्वगाश्व कुपथा अपथास्तथा ॥ ५६
 कुथप्रावरणाश्वैव ऊर्णादिर्वाः समुद्रकाः ।
 त्रिगर्ता मण्डलाश्वैव किराताश्वामरैः सह ॥ ५७
 चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयोऽब्दुवन् ।
 कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्वेति चतुर्युगम् ।
 तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च वृत्त्वशः ॥ ५८

मत्स्य उवाच

एतच्छुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते ।
 शुश्रूषवस्तमूचुस्ते प्रकामं लौमहर्षणिम् ॥ ५९

ऋषय ऊचुः

यच्च किम्पुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च ।
 आचक्षव नो यथातत्त्वं कीर्तिं भारतं त्वया ॥ ६०
 जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषां विदांवर ।
 द्वीपानां वासिनां तेषां वृक्षाणां प्रब्रवीहि नः ॥ ६१

इनके बाद अब दक्षिणापथके देश बतलाये जा रहे हैं । पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, मूषिक, कुपथ, वाजिवासिक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग (उडीसाका दक्षिणी भाग), आभीर, सहैषीक, आटव्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यमुलिक, वैदर्भ (विदर्भ), दण्डक, कुलीय, सिराल, अश्मक (महाराष्ट्रका दक्षिण भाग), भोगवर्धन (उडीसाका दक्षिणभाग), तैत्तिरिक, नासिक्य तथा नर्मदाके अन्तःप्रान्तमें स्थित अन्य प्रदेश—ये दक्षिणापथके अन्तर्गतके देश हैं । भारुकच्छ, माहेय, सारस्वत, काच्छीक, सौराष्ट्र, आनर्त और अर्बुद—ये सभी अपरान्त प्रदेश हैं । अब जो विन्ध्यवासियोंके प्रदेश हैं, उन्हें सुनिये । मालव, करुष, मेकल, उत्कल, औण्ड (उडीसा), माष, दशार्ण, भोज, किञ्चिन्धक, तोशल, कोसल (दक्षिणकोसल), त्रैपुर, वैदिश (भेलसाराज्य), तुमुर, तुम्बर, पद्म, नैषध, अरूप, शौणिडकेर, वीतिहोत्र तथा अवन्ति—ये सभी प्रदेश विन्ध्यपर्वतकी घाटियोंमें स्थित बतलाये जाते हैं । इसके बाद अब मैं उन देशोंका वर्णन कर रहा हूँ जो पर्वतपर स्थित हैं । उनके नाम हैं—निराहार, सर्वग, कुपथ, अपथ, कुथप्रावरण, ऊर्णादिर्व, समुद्रक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात और चामर । मुनियोंका कथन है कि इस भारतवर्षमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंकी व्यवस्था है । अब मैं उनके वृत्तान्तका पूर्णतया वर्णन कर रहा हूँ ॥ ४७—५८ ॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजर्ण ! सूतजीद्वारा कहे हुए इस प्रकरणको सुनकर मुनियोंको और भी आगे सुननेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गयी, तब वे पुनः लोमहर्षण-पुत्र सूतजीसे बोले ॥ ५९ ॥

ऋषियोंने पूछा—वेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी ! आपने भारतवर्षका तो वर्णन कर दिया । अब हमें किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षके विषयमें बतलाइये । साथ ही जम्बूखण्डके विस्तारका तथा अन्य द्वीपोंके निवासियोंका एवं वहाँ उद्गत होनेवाले वृक्षोंका भी वर्णन हमें सुनाइये ।

पृष्ठस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः ।
उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं तथा ॥ ६२
सूत उवाच

शुश्रूषवस्तु यद् विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः ।
जम्बूवर्षः किम्पुरुषः सुमहान् नन्दनोपमः ॥ ६३
दश वर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता ।
जायन्ते मानवास्तत्र निष्टमकनकप्रभाः ॥ ६४
वर्षे किम्पुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः ।
तस्य किम्पुरुषाः सर्वे पिबन्ति रसमुत्तमम् ॥ ६५
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः ।
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसः स्मृताः ॥ ६६
ततः परं किम्पुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते ।
महारजतसंकाशा जायन्ते यत्र मानवाः ॥ ६७
देवलोकच्युताः सर्वे बहुरूपाश्च सर्वशः ।
हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ॥ ६८
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम् ।
एकादश सहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम् ॥ ६९
मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न च जीर्यन्ति मानवाः ॥ ७०
चन्द्रसूर्यो सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ ७१
पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।
जम्बूफलरसाहारा अनिष्टन्दाः सुगन्धिनः ॥ ७२
देवलोकच्युताः सर्वे महारजतवाससः ।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोक्तमाः ॥ ७३
आयुष्माणं जीवन्ति ये तु वर्ष इलावृते ।
मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योन्तरेण वा ॥ ७४

उन ब्रह्मियोंद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सूतजीने उनके प्रश्नके अनुकूल जैसा देखा था तथा जो पुराण-सम्मत था, वैसा उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥ ६०—६२ ॥

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! आपलोग जिस विषयको सुनना चाहते हैं, उसे बतला रहा हूँ, आलस्यरहित होकर श्रवण कीजिये । जम्बूवर्ष और किम्पुरुषवर्ष—ये दोनों अत्यन्त विशाल एवं नन्दन-वनकी भाँति शोभासम्पन्न हैं । इनमें किम्पुरुषवर्षमें मनुष्योंकी आयु दस हजार वर्षकी बतलायी जाती है । वहाँ जन्म लेनेवाले मनुष्य भलीभाँति तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले होते हैं । उस पुण्यमय किम्पुरुषवर्षमें एक पाकड़का वृक्ष बतलाया जाता है जिससे सदा मधु टपकता रहता है । उसके उस उत्तम रसको सभी किम्पुरुषनिवासी पान करते हैं, जिसके कारण वे नीरोग, शोकरहित और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं । वहाँ पुरुषोंके शरीरका रंग सुवर्ण-जैसा होता है और स्त्रियाँ अप्सराओं-जैसी सुन्दरी कही गयी हैं । उस किम्पुरुषवर्षके बाद हरिवर्ष बतलाया जाता है । वहाँ सुवर्णकी-सी कान्तिसे युक्त शरीरवाले मानव उत्पन्न होते हैं । वे सभी देवलोकसे च्युत हुए जीव होते हैं और उनके विभिन्न प्रकारके रूप होते हैं । हरिवर्षमें सभी मनुष्य मङ्गलमय इक्षु-रसका पान करते हैं, जिससे उन्हें वृद्धावस्था बाधा नहीं पहुँचाती और वे चिरकालतक जीवित रहते हैं । उनकी आयुका प्रमाण ग्यारह हजार वर्ष बतलाया जाता है । इनके बीचमें इलावृत नामक वर्ष है, जिसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ । वहाँ सूर्यका ताप नहीं होता । वहाँके मानव भी वृद्ध नहीं होते । इलावृतवर्षमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाश नहीं होता । यहाँ पैदा होनेवाले सभी मानवोंके शरीर कमलके-से कान्तिमान् और उनका रंग कमल-जैसा लाल होता है । उनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल होते हैं और उनके शरीरसे कमलकी-सी गन्ध निकलती है । जामुनके फलका रस उनका आहार है । वे निस्पन्दरहित एवं सुगन्धयुक्त होते हैं । उनके वस्त्र सुवर्णके तारोंसे खचित होते हैं । देवलोकसे च्युत हुए जीव ही यहाँ जन्म धारण करते हैं । जो श्रेष्ठ पुरुष इलावृतवर्षमें पैदा होते हैं वे तेरह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ॥ ६३—७३ ॥

मेरुगिरिके दक्षिण तथा निषधपर्वतके उत्तर भागमें

सुदर्शनो नाम महाजम्बूवृक्षः सनातनः ।
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥ ७५
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पते ।
योजनानां सहस्रं च शतधा च महान् पुनः ॥ ७६
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति ।
तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति ॥ ७७
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः ।
तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते ॥ ७८
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान् ।
न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखं च तथाविधम् ॥ ७९
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भासुरं च यत् ॥ ८०
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः ।
स्कन्नं तु काञ्छनं शुभ्रं जायते देवभूषणम् ॥ ८१
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्षवृष्टासु च सर्वशः ।
ईश्वरानुग्रहाद् भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान् ॥ ८२
रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते ।
हेमकूटे तु विज्ञेया गन्धर्वाः साप्सरोगणाः ॥ ८३
सर्वे नागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः ।
महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः ॥ ८४
नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽवसन् ।
दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वत उच्यते ॥ ८५
शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठः पितृणां प्रतिसंचरः ।
इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते ॥ ८६
भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।
तेषां वृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः ।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया च बुभूषता ॥ ८७

सुदर्शन नामका एक विशाल प्राचीन जामुनका वृक्ष है । वह सदा पुष्प और फलोंसे लदा रहता है । सिद्ध और चारण सदा उसका सेवन करते हैं । उसी वृक्षके नामपर यह द्वीप जम्बूद्वीपके नामसे विख्यात हुआ है । उस वृक्षराजकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है । वह महान् वृक्ष स्वर्गलोकतक व्यास है । उसके फलोंका रस नदीरूपमें प्रवाहित होता है । वह नदी मेरुकी प्रदक्षिणा करके पुनः उसी जम्बूवृक्षके मूलपर पहुँचती है । इलावृतवर्षमें वहाँके निवासी सदा हर्षपूर्वक उस जम्बूरसका पान करते हैं । उस जम्बूवृक्षके फलोंका रस पान करनेके कारण वहाँके निवासियोंको वृद्धावस्था बाधा नहीं पहुँचती । न उन्हें भूख लगती है और न थकावट ही प्रतीत होती है तथा न किसी प्रकारका दुःख ही होता है । वहाँ जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है जो देवताओंके लिये आभूषणके काममें आता है । वह इन्द्रगोप (बीरबहूटी)-के समान लाल और अत्यन्त चमकीला होता है । उस वर्षके सभी वृक्षोंमें इस जामुन-वृक्षके फलोंका रस परम शुभकारक है । वह वृक्षसे टपकनेपर निर्मल सुवर्ण बन जाता है जिससे देवताओंके आभूषण बनते हैं । ईश्वरकी कृपासे वहाँकी भूमि आठों दिशाओंमें सब ओर इलावृत-निवासियोंके मूत्र, विष्टा और मृत शरीरोंको आत्मसात कर लेती है । राक्षस, पिशाच और यक्ष—ये सभी हिमालय पर्वतपर निवास करते हैं । हेमकूट पर्वतपर अप्सराओंसहित गन्धर्वोंका निवास जानना चाहिये तथा शेष, वासुकि और तक्षक आदि सभी प्रधान नाग भी उसपर स्थित रहते हैं । महामेरुपर यज्ञसम्बन्धी मङ्गलमय तैतीस देवता क्रीडा करते रहते हैं । नीलम एवं वैदूर्य मणियोंसे सम्पन्न नीलपर्वतपर सिद्धों और ब्रह्मर्षियोंका निवास है । श्वेतपर्वत दैत्यों और दानवोंका निवासस्थान बतलाया जाता है । पर्वतश्रेष्ठ शृङ्गवान् पितरोंका विहारस्थल है । इस प्रकार मैंने भारतवर्षके अन्तर्गत इन नौ वर्षोंका वर्णन कर दिया । इनमें प्राणी निवास करते हैं । ये परस्पर गतिमान् और स्थिर हैं । देवताओं और मनुष्योंने अनेकों प्रकारसे इनकी वृद्धि देखी है । उनकी गणना करना असम्भव है, अतः मङ्गलार्थी मनुष्यको इनपर श्रद्धा रखनी चाहिये ॥ ७४—८७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनमें एक सौ चौंदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११४ ॥

एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय

राजा पुरुरवाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

मनुरुवाच

चरितं बुधपुत्रस्य जनार्दनं मया श्रुतम्।
श्रुतः श्राद्धविधिः पुण्यः सर्वपापप्रणाशनः॥ १
धेन्वा: प्रसूयमानायाः फलं दानस्य मे श्रुतम्।
कृष्णाजिनप्रदानं च वृषोत्सर्गस्तथैव च॥ २
श्रुत्वा रूपं नरेन्द्रस्य बुधपुत्रस्य केशव।
कौतूहलं समुत्पन्नं तन्ममाचक्षव पृच्छतः॥ ३
केन कर्मविपाकेन स तु राजा पुरुरवाः।
अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम्॥ ४
देवांस्त्रिभुवनश्रेष्ठान् गन्धर्वांश्च मनोरमान्।
उर्वशी संगता त्यक्त्वा सर्वभावेन तं नृपम्॥ ५

मत्स्य उवाच

शृणु कर्मविपाकेन येन राजा पुरुरवाः।
अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम्॥ ६
अतीते जन्मनि पुरा योऽयं राजा पुरुरवाः।
पुरुरवा इति ख्यातो मद्रदेशाधिपो हि सः॥ ७
चाक्षुषस्यान्वये राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
स वै नृपगुणैर्युक्तः केवलं रूपवर्जितः॥ ८

ऋष्य ऊचुः

पुरुरवा मद्रपतिः कर्मणा केन पार्थिवः।
बभूव कर्मणा केन रूपवांश्चैव सूतज॥ ९

सूत उवाच

द्विजग्रामे द्विजश्रेष्ठो नाम्ना चासीत् पुरुरवाः।
नद्याः कूले महाराजः पूर्वजन्मनि पार्थिवः॥ १०

मनुने पूछा—जनार्दन! मैंने आपके मुखसे बुधपुत्र राजा पुरुरवाका जीवन-चरित्र तो सुना और समस्त पापोंका विनाश करनेवाली पुण्यमयी श्राद्धविधिका भी श्रवण किया तथा व्यायी हुई गौके दानका, काले मृगचम्के दानका एवं वृषोत्सर्गका भी फल सुन लिया, परंतु केशव! बुधपुत्र नरेश्वर पुरुरवाके रूपको सुनकर मुझे महान् कौतूहल उत्पन्न हो गया है, इसीलिये पूछ रहा हूँ। अब आप मुझे यह बतलाइये कि किस कर्मके परिणामस्वरूप राजा पुरुरवाको वैसा सुन्दर रूप और उत्तम सौभाग्य प्राप्त हुआ था? (जिसपर मोहित होकर अप्सराओंमें श्रेष्ठ) उर्वशी त्रिलोकीमें श्रेष्ठ देवताओं और सौन्दर्यशाली गन्धर्वोंका त्याग करके सब प्रकारसे राजा पुरुरवाकी सङ्ग्रन्हिती बनी थी॥ १—५॥

मत्स्यभगवान् ने कहा—राजन्! राजा पुरुरवाको जिस कर्मके फलस्वरूप वैसे सुन्दर रूप और उत्तम सौभाग्यकी प्राप्ति हुई थी, वह बतला रहा हूँ, सुनो। यह राजा पुरुरवा पूर्वजन्ममें भी पुरुरवा नामसे ही विष्ण्यात था। यह चाक्षुष मन्वन्तरमें चाक्षुष मनुके वंशमें उत्पन्न होकर मद्र देश (पंजाबका पश्चिमोत्तर भाग)-का अधिपति था (जहाँका राजा शल्य तथा पाण्डुपत्री माद्री थी)। उस समय इसमें राजाओंके सभी गुण तो विद्यमान थे, पर वह केवल रूपरहित अर्थात् कुरूप था। (मत्स्यभगवानद्वारा आगे कहे जानेवाले प्रसङ्गको ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने वर्णन किया है, अतः इसके आगे पुनः वही प्रसङ्ग चलाया गया है)॥ ६—८॥

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! राजा पुरुरवा किस कर्मके फलस्वरूप मद्र देशका स्वामी हुआ तथा किस कर्मके परिणामस्वरूप परम सौन्दर्यशाली हुआ? यह बतलाइये॥ ९॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वजन्ममें यह राजा पुरुरवा किसी नदीके तटवर्ती ब्राह्मणोंके एक गाँवमें श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उस समय भी इसका नाम पुरुरवा ही था।

स तु मद्रपती राजा यस्तु नाम्ना पुरुरवाः ।
तस्मिञ्चन्मन्यसौ विप्रो द्वादशयां तु सदानघ ॥ १
उपोष्य पूजयामास राज्यकामो जनार्दनम् ।
चकार सोपवासश्च स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥ २
उपवासफलात् प्राप्तं राज्यं मद्रेष्वकण्टकम् ।
उपोषितस्तथाभ्यङ्गाद् रूपहीनो व्यजायत ॥ ३
उपोषितैर्स्तस्मात् स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघं तत्परं नृप ॥ ४
एतद् वः कथितं सर्वं यद् वृत्तं पूर्वजन्मनि ।
मद्रेश्वरानुचरितं शृणु तस्य महीपतेः ॥ ५
तस्य राजगुणैः सर्वैः समुपेतस्य भूपतेः ।
जनानुरागो नैवासीद् रूपहीनस्य तस्य वै ॥ ६
रूपकामः स मद्रेशस्तपसे कृतनिश्चयः ।
राज्यं मन्त्रिगतं कृत्वा जगाम हिमपर्वतम् ॥ ७
व्यवसायद्वितीयस्तु पद्मयामेव महायशाः ।
ब्रह्मं स तीर्थसदनं विषयान्ते स्वके नदीम् ।
ऐरावतीति विख्यातां ददर्शातिमनोरमाम् ॥ ८
तुहिनगिरिभवां महौघवेगां

तुहिनगभस्तिसमानशीतलोदाम् ।

तुहिनसदृशैमवर्णपुञ्जां

तुहिनयशाः सरितं ददर्श राजा ॥ ९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मद्रेश्वरस्य तपोवनागमनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमात्स्यमहापुराणमें तपोवनागमन नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

अनघ ! वह मद्र देशका स्वामी जो राजा पुरुरवाके नामसे विख्यात था, उस जन्ममें ब्राह्मणरूपसे राज्यप्राप्तिकी कामनासे युक्त होकर सदा द्वादशी तिथिको उपवास कर भगवान् विष्णुका पूजन किया करता था । एक बार उसने ब्रतोपवास करके शरीरमें तेल लगाकर स्नान कर लिया—जिस कारण उसे उपवासके फलस्वरूप मद्र देशका निष्कण्टक राज्य तो प्राप्त हुआ, परंतु उपवासी होकर शरीरमें तेल लगानेके कारण वह कुरुरूप होकर पैदा हुआ । इसलिये ब्रतोपवासी मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक शरीरमें तेल लगाकर स्नान करना छोड़ देना चाहिये; क्योंकि यह सुन्दरताका विनाशक है । इस प्रकार उसके पूर्वजन्मका जो वृत्तान्त था, वह सब मैंने आप लोगोंको बतला दिया । अब उस भूपालके मद्रेश्वर हो जानेके बादका चरित्र सुनिये । यद्यपि राजा पुरुरवा सभी राज्यगुणोंसे सम्पन्न था, किंतु रूपहीन होनेके कारण उसके प्रति प्रजाओंका अनुराग नहीं ही था । अतः मद्र-नरेशने रूपप्राप्तिकी कामनासे तपस्याका निश्चय करके राज्य-भार मन्त्रीको सौंपकर हिमालय पर्वतकी ओर प्रस्थान किया । उस समय तपरूप व्यवसाय ही उसका सहायक था । वह महायशस्वी नरेश तीर्थस्थानोंका दर्शन करनेकी लालसासे पैदल ही चल रहा था । आगे बढ़नेपर उसने अपने देशकी सीमापर ऐरावती (रावी) नामसे विख्यात अत्यन्त मनोहारिणी नदीको देखा । वह नदी हिमालय पर्वतसे निकली हुई थी, अथाह जलके कारण गम्भीर वेगसे प्रवाहित हो रही थी, उसका जल चन्द्रमाके समान शीतल था और वह बर्फकी राशि-सरीखी उज्ज्वल प्रतीत हो रही थी । बर्फसदृश निर्मल यशवाले राजा पुरुरवाने उस नदीको देखा ॥ १०—११ ॥

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

ऐरावती नदीका वर्णन

सूत उवाच

स ददर्श नदीं पुण्यां दिव्यां हैमवर्तीं शुभाम् ।
गन्धवैश्च समाकीर्णा नित्यं शक्रेण सेविताम् ॥ १
सुरेभ्यमदसंसिक्तां समंतात् तु विराजिताम् ।
मध्येन शक्रचापाभां तस्मिन्नहनि सर्वदा ॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! वह मञ्जलकारिणी एवं पुण्यमयी दिव्य नदी ऐरावती हिमालयपर्वतसे निकली हुई थी । वह (जलक्रीडार्थ आये हुए) गन्धवौंसे भरी हुई, इन्द्रद्वारा सदा सेवित, चारों ओरसे ऐरावतके मद-जलसे अभिषिक्त होनेके कारण सुशोभित और मध्यमें

तपस्विशरणोपेतां महाब्राह्मणसेविताम्।
 ददर्श तपनीयाभां महाराजः पुरुरवाः ॥ ३
 सितहंसावलिच्छन्नां काशचामरराजिताम्।
 साधिष्ठिक्तामिव सतां पश्यन् प्रीतिं परां ययौ॥ ४
 पुण्यां सुशीतलां हृद्यां मनसः प्रीतिवर्धिनीम्।
 क्षयवृद्धियुतां रम्यां सोममूर्तिमिवापराम्॥ ५
 सुशीतशीघ्रपानीयां द्विजसंघनिषेविताम्।
 सुतां हिमवतः श्रेष्ठां चञ्चल्लिचिविराजिताम्॥ ६
 अमृतस्वादुसलिलां तापसैरुपशोभिताम्।
 स्वर्गरोहणनिःश्रेणीं सर्वकल्पषनाशिनीम्॥ ७
 अद्यां समुद्रमहिषीं महर्षिगणसेविताम्।
 सर्वलोकस्य चौत्सुक्यकारिणीं सुप्नोहराम्॥ ८
 हितां सर्वस्य लोकस्य नाकमार्गप्रदायिकाम्।
 गोकुलाकुलतीरान्तां रम्यां शैवालवर्जिताम्॥ ९
 हंससारससंघुष्टां जलजैरुपशोभिताम्।
 आवर्तनाभिगम्भीरां द्वीपोरुजघनस्थलीम्॥ १०
 नीलनीरजनेत्राभामुत्फुल्लकमलाननाम् ।
 हिमाभफेनवसनां चक्रवाकाधरां शुभाम्।
 बलाकापद्मितदशनां चलन्मत्स्यावलिभूवम्॥ ११
 स्वजलोद्भूतमातङ्गरम्यकुम्भपयोधराम् ।
 हंसनूपुरसंघुष्टां मृणालवलयावलीम्॥ १२
 तस्यां रूपमदोन्मत्ता गन्धर्वानुगताः सदा।
 मध्याह्नसमये राजन् क्रीडन्त्यप्सरसां गणाः॥ १३
 तामप्सरोविनिर्मुक्तं वहन्तीं कुङ्कुमं शुभम्।
 स्वतीरद्गुमसम्भूतनानावर्णसुगन्धिनीम्॥ १४
 तरङ्गब्रातसंक्रान्तसूर्यमण्डलदुर्दशम् ।
 सुरेभजनिताधातविकूलद्वयभूषिताम्॥ १५
 शक्रेभगण्डसलिलैर्देवस्त्रीकुचचन्दनैः ।
 संयुक्तं सलिलं तस्याः षट्पदैरुपसेव्यते॥ १६

इन्द्र-धनुषके समान चमक रही थी। उसके तटपर तपस्वियोंके आश्रम बने हुए थे। वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सुसेवित तथा तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रही थी। ऐसी नदीको उस दिन महाराज पुरुरवाने देखा। वह श्वेत वर्णवाले हंसोंकी पद्मित्योंसे आच्छन्न, काश-पुष्परूपी चँवरसे सुशोभित और सत्पुरुषोंद्वारा नहलायी गयी-सी दीख रही थी। उसे देखकर राजाको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। वह पुण्यमयी नदी शीतल जलसे परिपूर्ण, मनोहारिणी, मनकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली, हास और वृद्धिसे संयुक्त, रमणीय, दूसरी चन्द्र-मूर्ति के समान उज्ज्वल, अत्यन्त शीतल और वेगसे बहनेवाले जलसे संयुक्त, ब्राह्मणों तथा पक्षिसमूहोंद्वारा सुसेवित, हिमालयकी श्रेष्ठ पुत्रीभूत, लोल लहरोंसे सुशोभित, अमृतके समान सुस्वादु जलसे परिपूर्ण, तपस्वियोंद्वारा सुशोभित, स्वर्गपर चढ़नेके लिये सोपान-सदृश, समस्त पापोंकी विनाशिनी, सर्वश्रेष्ठ, समुद्रकी पटरानी, महर्षिगणोंद्वारा सेवित, सभी लोगोंके मनमें उत्सुकता प्रकट करनेवाली, परम मनोहर, सभी लोगोंकी हितकारिणी, स्वर्गका मार्ग प्रदान करनेवाली, गोसमूहोंसे व्याप्त तट-प्रान्तवाली, परम सुन्दर, सेवारहित, हंस तथा सारस पक्षियोंके शब्दसे गूँजित, कमलोंसे सुशोभित, भँवररूपी गहरी नाभिसे युक्त, द्वीपरूपी ऊरु एवं जघन-भागवाली, नीले कमलरूपी नेत्रकी शोभासे युक्त, खिले हुए कमल-पुष्परूपी मुखवाली, हिम (बर्फ)-तुल्य उज्ज्वल फेनरूपी वस्त्रसे युक्त, चक्रवाकरूपी होंठोंवाली, कल्याणमयी, बगुलोंकी पद्मितरूपी दाँतोंसे युक्त, चञ्चल मछलियोंकी कतारकी-सी भौंहोंवाली, अपने जलके घुमावसे बने हुए हाथीके रमणीय गण्डस्थलरूपी स्तनोंसे युक्त, हंसरूपी नूपुरके झंकारसे संयुक्त तथा कमलनालरूपी कंकणोंसे सुशोभित थी॥ १—१२॥

राजन्! उस नदीमें दोपहरके समय अपनी सुन्दरताके मदसे उन्मत्त हुई यूथ-की-यूथ अप्सराएँ गन्धर्वोंके साथ सदा क्रीडा करती थीं। उन अप्सराओंके शरीरसे गिरे हुए सुन्दर कुङ्कुमको बहानेवाली वह नदी अपने तटपर उगे हुए वृक्षोंसे गिरे हुए पुष्पोंके कारण रंग-बिरंगवाली तथा सुगन्धसे व्याप्त थी, उसके तरंगसमूहसे आच्छादित होनेके कारण सूर्यमण्डलका दीखना कठिन हो गया था। वह ऐरावतद्वारा किये गये आघातसे चिह्नित तटोंसे विभूषित थी। उसका जल ऐरावतके गण्डस्थलसे बहते हुए मद-जल तथा देवाङ्गनाओंके स्तनोंपर लगे हुए

तस्यास्तीरभवा वृक्षाः सुगन्धकुसुमाचिताः ।
तथापकृष्टसम्भ्रान्तभ्रमरस्तनिताकुलाः ॥ १७
यस्यास्तीरे रतिं यान्ति सदा कामवशा मृगाः ।
तपोवनाश्च ऋषयस्तथा देवाः सहाप्सराः ॥ १८
लभन्ते यत्र पूताङ्गा देवेभ्यः प्रतिमानिताः ।
स्त्रियश्च नाकबहुलाः पद्मेन्दुप्रतिमाननाः ॥ १९
या बिभर्ति सदा तोयं देवसङ्घैरपीडितम् ।
पुलिन्दैर्नृपसङ्घैश्च व्याघ्रवृन्दैरपीडितम् ॥ २०
सतामरसपानीयां सतारगगनामलाम् ।
स तां पश्यन् ययौ राजा सतामीप्सितकामदाम् ॥ २१
यस्यास्तीररुहैः काशैः पूर्णैश्चन्द्रांशुसंनिभैः ।
राजते विविधाकारै रम्यं तीरं महाद्रुमैः ।
या सदा विविधैर्विप्रैर्देवैश्चापि निषेव्यते ॥ २२
या च सदा सकलौघविनाशं
भक्तजनस्य करोत्यचिरेण ।
यानुगता सरितां हि कदम्बै-
र्यानुगता सततं हि मुनीन्द्रैः ॥ २३
या हि सुतानिव पाति मनुष्यान्
या च युता सततं हिमसङ्घैः ।
या च युता सततं सुरवृन्दै-
र्या च जनैः स्वहिताय श्रिता वै ॥ २४
युक्ता च केसरिगणैः करिवृन्दजुष्टा
संतानयुक्तसलिलापि सुवर्णयुक्ता ।
सूर्यांशुतापरिवृद्धकदम्बवृक्षा
शीतांशुतुल्ययशसा ददृशे नृपेण ॥ २५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोषे सुरनदीवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनप्रसंगमें सुरनदी-वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११६ ॥

चन्दनोंसे युक्त था, जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे। उसके तटपर उगे हुए वृक्ष सुगन्धित पुष्पोंसे लदे हुए तथा सुगन्धके लोभसे आकृष्ट हुए चञ्चल भौंरोंकी गुंजारसे व्याप्त थे। जिसके तटपर कामके वशीभूत हुए मृग हिरनियोंके साथ विहार करते थे तथा वहाँ तपोवन, ऋषिगण, अप्सराओंसमेत देवगण, देवताओंके समान सुन्दर एवं पवित्र अङ्गोंवाले अन्य पुरुष एवं कमल और चन्द्रमाकी-सी मुखवाली स्वर्गवासिनी स्त्रियाँ भी पायी जाती थीं, जो देवगणों, पुलिन्दों (जंगली जातियों), नृपसमूहों और व्याघ्रदलोंसे अपीडित अर्थात् परम पवित्र जल धारण करती थी, जो कमलयुक्त जल धारण करनेके कारण तारिकाओंसहित निर्मल आकाशके समान सुशोभित तथा सत्पुरुषोंकी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी, उसे देखते हुए राजा पुरुरवा आगे बढ़े। जिस नदीके रमणीय तट तीरभूमिमें उगे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल काश-पुष्पों तथा अनेकों प्रकारके विशाल वृक्षोंसे सुशोभित थे, जो सदा विविध मतावलम्बी ब्राह्मणों और देवताओंसे सुसेवित थी, जो सदा भक्तजनोंके सम्पूर्ण पापोंका शीघ्र ही विनाश कर देती थी, जिसमें बहुत-सी छोटी-छोटी नदियाँ आकर मिली थीं, जो निरन्तर मुनीश्वरोंद्वारा सेवित थी, जो पुत्रकी तरह मनुष्योंका पालन करती थी, जो सदा हिम (बर्फ) राशिसे आच्छादित रहती थी, जो निरन्तर देवगणोंसे संयुक्त रहती थी, अपना कल्याण करनेके लिये मनुष्य जिसका आश्रय लेते थे, जिसके किनारे झुंड-के-झुंड सिंह धूमते रहते थे, जो हाथी-समूहोंसे सेवित थी, जिसका जल कल्पवृक्षके पुष्पोंसे युक्त और सुवर्णके समान चमकीला था तथा जिसके तटवर्ती कदम्ब-वृक्ष सूर्यकी किरणोंके तापसे बढ़े हुए थे—ऐसी ऐरावती नदीको चन्द्रमा-सरीखे निर्मल यशवाले राजा पुरुरवाने देखा ॥ १३—२५ ॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

हिमालयकी अद्भुत छटाका वर्णन

सूत उवाच

आलोकयन् नदीं पुण्यां तत्समीरहृतश्रमः ।
 स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ॥ १
 खमुल्लिखद्धिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गस्तु पाण्डुरैः ।
 पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभाम् ॥ २
 नदीप्रवाहसञ्चातमहाशब्दैः समन्ततः ।
 असंश्रुतान्यशब्दं तं शीततोयं मनोरमम् ॥ ३
 देवदारुवने नीलैः कृताधोवसनं शुभम् ।
 मेघोत्तरीयकं शैलं ददृशे स नराधिपः ॥ ४
 श्वेतमेघकृतोष्णीषं चन्द्राकंमुकुटं क्वचित् ।
 हिमानुलिससर्वाङ्गं क्वचिद् धातुविमिश्रितम् ॥ ५
 चन्दनेनानुलिसाङ्गं दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा ।
 शीतप्रदं निदाधेऽपि शिलाविकटसङ्कटम् ।
 सालक्तकैरप्सरसां मुद्रितं चरणैः क्वचित् ॥ ६
 क्वचित् संस्पृष्टसूर्याशुं क्वचिच्च तमसावृतम् ।
 दरीमुखैः क्वचिद् भीमैः पिबन्तं सलिलं महत् ॥ ७
 क्वचिद् विद्याधरगणैः क्रीडद्धिरुपशोभितम् ।
 उपगीतं तथा मुख्यैः किञ्चराणां गणैः क्वचित् ॥ ८
 आपानभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित् ।
 पुष्टैः संतानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम् ॥ ९
 सुसेत्थिताभिः शश्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित् ।
 मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम् ॥ १०
 निरुद्धपवनैर्देशैर्नीलशाद्वलमण्डतैः ।
 क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम् ॥ ११

सूतजी कहते हैं — ऋषियो ! ऐरावती नदीके जलका स्पर्श करके बहती हुई वायुके स्पर्शसे राजा पुरुरवाकी थकावट दूर हो गयी थी । वे उस पुण्यमयी नदीको देखते हुए आगे बढ़ रहे थे । इतनेमें उन्हें महान् पर्वत हिमवान् दृष्टिगोचर हुआ । वह बहुत-से पीलापन लिये हुए उज्ज्वल वर्णवाले गगनचुम्बी शिखरोंसे युक्त था । वहाँ मङ्गलमयी सिद्ध-गतिके बिना पक्षियोंका भी संचार कठिन था अर्थात् वहाँ केवल सिद्धलोग ही जा सकते थे । वहाँ नदियोंके प्रवाहसे उत्पन्न हुआ महान् घर्षण शब्द चारों ओर गूँज रहा था, जिसके कारण दूसरा कोई शब्द सुनायी ही नहीं पड़ता था । वह शीतल जलसे परिपूर्ण एवं अत्यन्त मनोरम था । उसने देवदारुके नीले बनोंको अधोवस्त्रके स्थानपर और मेघोंको उत्तरीय वस्त्रके रूपमें धारण कर रखा था । ऐसा हिमालय पर्वतको राजा पुरुरवाने देखा । उसने कहीं तो श्वेत बादलोंकी पगड़ी बाँध रखी थी और कहीं सूर्य एवं चन्द्रमा उसके मुकुट-सरीखे दीख रहे थे । उसका सारा अङ्ग तो बर्फसे आच्छादित था, किंतु उसमें कहीं-कहीं गेरू आदि धातुएँ भी मिली हुई थीं, जिससे वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो श्वेत चन्दनसे लिपटे हुए शरीरपर पाँचों अङ्गुलियोंकी छाप लगा दी गयी हो । वह ग्रीष्म-ऋतुमें भी शीतलता प्रदान कर रहा था तथा बड़ी-बड़ी शिलाओंसे युक्त होनेके कारण अगम्य था । कहीं-कहीं अप्सराओंके महावरयुक्त चरणोंसे चिह्नित था, कहीं तो सूर्यकी किरणोंका स्पर्श हो रहा था, किंतु कहीं घोर अन्धकारसे आच्छादित था, कहीं भयानक गुफाओंके मुखोंमें जल गिर रहा था, जो ऐसा लगता था मानो वह अधिक-से-अधिक जल पी रहा हो । कहीं क्रीडा करते हुए यूथ-के-यूथ विद्याधरोंसे सुशोभित था, कहीं किंनरोंके प्रधान गणोंद्वारा गान हो रहा था, कहीं गन्धर्वों एवं अप्सराओंकी आपानभूमि (मधुशाला)-में गिरे हुए कल्पवृक्ष आदि वृक्षोंके दिव्य पुष्टोंसे सुशोभित था और कहीं गन्धर्वोंकी शयन करके उठ जानेके पश्चात् मर्दित हुई शश्याओंके बिखरे हुए पुष्टोंसे आच्छादित होनेके कारण अत्यन्त मनोरम लग रहा था । कहीं ऐसे प्रदेश थे, जहाँ वायुकी पहुँच नहीं थी, किंतु वे हरी घासोंसे सुशोभित थे तथा उनपर फूल बिखरे हुए थे, जिससे वह अत्यन्त रुचिर एवं सुन्दर लग रहा था ॥ १—११ ॥

तपस्विशरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम्।
मृगैर्यथानुचरितं दन्तिभिन्नमहाद्रुमम्॥ १२
यत्र सिंहनिनादेन त्रस्तानं भैरवं रवम्।
दृश्यते न च संश्रान्तं गजानामाकुलं कुलम्॥ १३
तटाश्च तापसैर्यत्र कुञ्जदेशैरलङ्घताः।
रत्नैर्यस्य समुत्पन्नैस्त्रैलोक्यं समलङ्घतम्॥ १४
अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम्।
अहीनः पश्यति गिरिमहीनं रत्नसम्पदा॥ १५
अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्पषनाशनम्॥ १६
महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभिः ।
वायुनीतैः सदा तृमिकृतदेशं क्वचित् क्वचित्॥ १७
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रौतैः।
नित्यार्कतापविषमैरगम्यैर्मनसा युतम्॥ १८
देवदारुमहावृक्षव्रजशाखानिरन्तरैः ।
वंशस्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरुपशोभितम्॥ १९
हिमच्छत्रमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्झरम्।
शब्दलभ्याम्बुविषमं हिमसंरुद्धकन्दरम्॥ २०
दृष्टैव तं चारुनितम्बभूमिं
महानुभावः स तु मद्रनाथः।
बभ्राम तत्रैव मुदा समेतः
स्थानं तदा किंचिदथाससाद॥ २१

वह पर्वत तपस्वियोंका आश्रयस्थान तथा कामीजनोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ था, उसपर मृग आदि वन्य पशु स्वच्छन्द विचरण करते थे, उसके विशाल वृक्षोंको हाथियोंने भिन्न-भिन्न कर दिया था, जहाँ सिंहकी गर्जनासे भयभीत हुए हाथियोंके दल व्याकुल होकर भयंकर चिंगाड़ कर रहे थे, जिससे उनमें शान्ति नहीं दीख रही थी, जिसके तटवर्ती प्रदेश निकुञ्जों और तपस्वियोंसे अलंकृत थे, जिससे उत्पन्न हुए रत्नोंसे त्रिलोकी अलंकृत होती है, वासुकि आदि बड़े-बड़े नागोंके आश्रयस्थान, सत्पुरुषोंद्वारा सेवित तथा रत्नसम्पत्तियोंसे परिपूर्ण उस पर्वतको कोई सत्पुरुष ही देख सकता है। जहाँ तपस्वीलोग थोड़े ही तपसे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, जिसके दर्शनमात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है, जिसके किन्हीं-किन्हीं स्थलोंपर वायुद्वारा लाये गये बड़े-बड़े झरनोंके गिरनेसे उत्पन्न हुए छोटे-छोटे झरनोंके जलसे पर्वतीय प्रदेश तृप्त होते हैं। कहीं उसके ऊँचे-ऊँचे शिखर जलसे आप्लावित थे तथा कहीं सूर्यके तापसे संतप्त होनेके कारण अगम्य थे। वहाँ केवल मनसे ही जाया जा सकता था; जो कहीं-कहीं देवदारुके विशाल वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखाओंसे घनीभूत हुए तथा कहीं बाँसोंकी झुरमुटरूपी वनोंके आकारसे युक्त प्रदेशोंसे सुशोभित था। कहीं छत्तेके समान बड़े-बड़े शिखर बर्फसे आच्छादित थे, कहीं सैकड़ों झरने झर रहे थे, कहीं जलके गिरनेसे उत्पन्न हुए शब्दोंसे ही जलकी प्रतीति होती थी, कहीं गुफाएँ बर्फसे ढकी हुई थीं। इस प्रकार सुन्दर नितम्बरूपी भूमिसे युक्त उस हिमालय पर्वतको देखकर महानुभाव मद्रेश्वर पुरुरवा हर्षपूर्वक वहीं (अपने मनोऽनुकूल स्थानकी खोज करते हुए) घूमने लगे। तब उन्हें एक स्थान प्राप्त हुआ॥ १२—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोषे हिमवद्वर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनमें हिमवद् वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११७॥

एक सौ अठारहवाँ अध्याय

हिमालयकी अनोखी शोभा तथा अत्रि-आश्रमका वर्णन

सूत उवाच

तस्यैव पर्वतेन्द्रस्य प्रदेशं सुमनोरमम्।
अगम्यं मानुषैरन्यैर्देवयोगादुपागतः ॥ १
ऐरावती सरिच्छेष्टा यस्माद् देशाद् विनिर्गता ।
मेघश्यामं च तं देशं द्रुमषण्डैरनेकशः ॥ २
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैः सशामलैः ।
न्यग्रोधैश्च तथा श्रव्यैः शिरीषैः शिंशपाद्मैः ॥ ३
श्लेष्मातकैरामलकैर्हरीतकविभीतकैः ।
भूर्जैः समुञ्जकैर्बाणैर्वृक्षैः समच्छदद्मैः ॥ ४
महानिम्बैस्तथा निम्बैर्निर्गुण्डीभिर्हिन्द्रुमैः ।
देवदारुमहावृक्षैस्तथा कालेयकद्मैः ॥ ५
पद्मकैश्चन्द्रनैर्बिल्वैः कपितथै रक्तचन्दनैः ।
आग्रातारिष्टकाक्षोटैरब्दकैश्च तथार्जुनैः ॥ ६
हस्तिकर्णैः सुमनसैः कोविदारैः सुपुष्पितैः ।
प्राचीनामलकैश्चापि धनकैः समराटकैः ॥ ७
खजूरैर्नारिकेलैश्च प्रियालाप्रातकेङ्गुदैः ।
तन्तुमालैर्धवैर्भव्यैः काश्मीरीपर्णिभिस्तथा ॥ ८
जातीफलैः पूगफलैः कटुफलैर्लाविलीफलैः ।
मन्दारैः कोविदारैश्च किंशुकैः कुसुमांशुकैः ॥ ९
यवासैः शमिपणसिर्वेतसैरम्बुवेतसैः ।
रक्तातिरङ्गनारङ्गैर्हिङ्गुभिः सप्रियङ्गुभिः ॥ १०
रक्ताशोकैस्तथाशोकैराकल्लैरविचारकैः ।
मुचुकुन्दैस्तथा कुन्दराटस्त्रवपरूषकैः ॥ ११
किरातैः किंकिरातैश्च केतकैः श्वेतकेतकैः ।
शौभाङ्गनैरञ्जनैश्च सुकलिङ्गनिकोटकैः ॥ १२
सुवर्णचारुवसनैर्द्रुमश्रेष्ठैस्तथासनैः ।
मन्मथस्य शराकारैः सहकारैर्मनोरमैः ॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! दैवयोगसे महाराज पुरुरवा उसी पर्वतराजके परम सुरम्य प्रदेशमें पहुँच गये, जो अन्य मनुष्योंके लिये अगम्य था। जहाँसे नदियोंमें श्रेष्ठ ऐरावती निकली हुई थी, वह देश मेघके समान श्यामल था तथा अनेकों प्रकारके वृक्षसमूहोंसे घिरा हुआ था। वहाँ शाल (साखू), ताल (ताड़), तमाल, कर्णिकार (कनेर), शामल (सेमल), न्यग्रोध (बरगद), अश्वत्थ (पीपल), शिरीष (सिरसा), शिंशपा (सीसम), श्लेष्मातक (लहसोदा), आमलक (आमला), हरीतक (हर्वे), बिभीतक (बहेड़ा), भूर्ज (भोजपत्र), मुञ्जक (मूँज), बाणवृक्ष (साखूका एक भेद), सप्तच्छद (छितवन), महानिम्ब (बकाइन), नीम, निर्गुण्डी (सिंदुवार या शेफाली), हरिद्रुम (दारु हल्दी), विशाल वृक्ष देवदारु, कालेयक (अगर), पद्मक (पद्माख), चन्दन, बेल, कैथ, लाल चन्दन, आग्रात (एकलता), अरिष्टक (रीठा), अक्षोट (पीलू या अखरोट), अब्दक (नागरमोथा), अर्जुन, सुन्दर पुष्पोंवाले हस्तिकर्ण (पलाश), खिले हुए फूलोंसे युक्त कोविदार (कचनार), प्राचीनामलक (पुराने आमलकके वृक्ष) धनक (धनेश), मराटक (बाजरा), खजूर, नारियल, प्रियाल (पियार, इसके फलोंकी गिरी चिराँजी होती है), आग्रातक (आमड़ा), इङ्गुद (हिंगोट), तन्तुमाल (पटुआ), सुन्दर धवके वृक्ष, काश्मीरी, शालपर्णी, जातीफल (जायफल), पूगफल (सुपारी), कटुफल (कायफर), इलायचीकी लताओंके फल, मन्दार, कोविदार (कचनार), किंशुक (पलाश), कुसुमांशुक (एक प्रकारका अशोक), यवास (जवासा), शमी, तुलसी, बेंत, जलमें उगनेवाले बेंत, हलके तथा गाढ़े लाल रंगवाले नारंगीके वृक्ष, हिंगु और प्रियङ्गु (बड़ी पीपर)-के वृक्ष भरे पड़े थे ॥ १—१० ॥

साथ ही लाल अशोक, अशोक, आकल्ल (अकरकरा), अविचारक, मुचुकुन्द, कुन्द, आटरूष (अडूसा), परूषक (फालसा), किरात (चिरायता), किंकिरात (बबूल), केतकी, सफेद केतकी, शौभाङ्गन (सहिजन), अञ्जन, कलिंग (सिरसा), निकोटक (अंकोल), सुवर्णके-से चमकीले सुन्दर वल्कलसे युक्त विजयसालके वृक्ष, असना, कामदेवके बाणोंके-से आकारवाले सुन्दर आमके वृक्ष,

पीतयूथिकया चैव श्वेतयूथिकया तथा ।
जात्या चम्पकजात्या च तुम्बरैश्वाष्टुम्बरैः ॥ १४
मोचैर्लौचैस्तु लकुचैस्तिलपुष्पकुशेशयैः ।
तथा सुपुष्पावरणैश्व्यकैः कामिवल्लभैः ॥ १५
पुष्पाङ्गुरैश्व बकुलैः पारिभद्रहरिद्रकैः ।
धाराकदम्बैः कुटजैः कदम्बैर्गिरिकूटजैः ॥ १६
आदित्यमुस्तकैः कुम्भैः कुङ्गमैः कामवल्लभैः ।
कटुफलैर्बदैर्नीपैदीपैरिव महोज्ज्वलैः ॥ १७
रक्तैः पालीवनैः श्वेतैर्दाढिमैश्वम्पकद्वुमैः ।
बन्धूकैश्व सुबन्धूकैः कुञ्जकानां तु जातिभिः ॥ १८
कुसुमैः पाटलाभिश्व मल्लिकाकरवीरकैः ।
कुरबकैर्हिमवरैर्जम्बूभिर्नृपजम्बुभिः ॥ १९
बीजपूरैः सकपूरैर्गुरुभिश्वागुरुद्वुमैः ।
बिम्बैश्व प्रतिबिम्बैश्व संतानकवितानकैः ॥ २०
तथा गुगुलवृक्षैश्व हिन्तालधवलेक्षुभिः ।
तृणशून्यैः करवीररशोकैश्वक्रमदनैः ॥ २१
पीलुभिर्धातकीभिश्व चिरिविल्वैः समाकुलैः ।
तिन्तिडीकैस्तथा लोधैर्विडङ्गैः क्षीरिकाद्वुमैः ॥ २२
अश्मन्तकैस्तथा कालैर्जम्बीरैः श्वेतकद्वुमैः ।
भल्लातकैरिन्द्रयवैर्वल्लुजैः सिन्दुवारकैः ॥ २३
करमदैः कासमदैरविष्टकवरिष्टकैः ।
रुद्राक्षेद्राक्षसम्भूतैः सप्ताहैः पुत्रजीवकैः ॥ २४
कङ्गोलकैर्लवङ्गैश्व त्वग्द्वुमैः पारिजातकैः ।
प्रतानैः पिप्पलीनां च नागवल्ल्यश्व भागशः ॥ २५
मरीचस्य तथा गुल्मैर्नवमल्लिकया तथा ।
मृद्धीकामण्डपैर्मुख्यैरतिमुक्तकमण्डपैः ॥ २६
त्रपुष्णर्निर्तिकानां च प्रतानैः सफलैः शुभैः ।
कूष्माण्डानां प्रतापैश्व अलाबूनां तथा क्वचित् ॥ २७
चिर्भिटस्य प्रतानैश्व पटोलीकारवेल्लकैः ।
कक्षीटकीवितानैश्व वर्तकैर्बृहतीफलैः ॥ २८

पीली जूही, सफेद जूही, मालती, चम्पाके समूह, तुम्बर (एक प्रकारकी धनिया), अतुम्बर, मोच (केला या सेमल), लोच (गोरखमुण्डी), लकुच (बड़हर), तिल तथा कमलके फूल, कामियोंको प्रिय लगनेवाले पुष्पाङ्गुरों (कुङ्गमलों) तथा प्रफुल्ल पुष्पोंसे युक्त चव्य (चाब नामक वृक्ष), बकुल (मौलसिरी), पारिभद्र (फरहद), हरिद्रक, धाराकदम्ब (कदम्बका एक भेद), कुटज (कुरैया), पर्वतशिखरोंपर उगनेवाले कदम्ब, आदित्यमुस्तक (मदार), कुम्भ (गुगुलका वृक्ष), कामदेवका प्रिय कुङ्गम (केसर), कटुफल (कायफर), बेर, दीपककी भाँति अत्यन्त चमकीले कदम्ब, लाल रंगके पाली (पालीवत)-के बन, श्वेत अनार, चम्पाके वृक्ष, बन्धूक (दुपहरिया), सबन्धूक (तिलका पौधा), कुञ्जोंके समूह, लाल गुलाबके कुसुम, मल्लिका, करवीरक (कनेर), कुरबक (लाल कटसरैया), हिमवर, जम्बू (छोटी जामुन या कठजामुन), नृपजम्बू (बड़ी जामुन), बिजौरा, कपूर, गुरु, अगुरु, बिम्ब (एक फल), प्रतिबिम्ब और संतानक वृक्ष (कल्पवृक्ष) वितानकी तरह फैले हुए थे ॥ ११—२० ॥

गुगुलवृक्ष, हिंताल, श्वेत इंख, केतकी, कनेर, अशोक, चक्रमर्दन (चकवड़), पीलु, धातकी (धव), घने चिलबिल, तिन्तिडीक (इमली), लोध, विडंग, क्षीरिकाद्वुम (खिरनी), अश्मन्तक (लहसोडा), काल (रक्तचित्र नामका एक वृक्ष), जम्बीर, श्वेतक (वरुण या वरना नामक एक वृक्षविशेष), भल्लातक (भिलावा), इन्द्रयव, वल्लुज (सोमराजी नामसे प्रसिद्ध), सिन्दुवार, करमर्द (करौंदा), कासमर्द (कसौंदी), अविष्टक (मिर्च), वरिष्टक (हुरहुर), रुद्राक्षके वृक्ष, अंगूरकी लता, सप्तपर्ण, पुत्रजीवक (पतजुग), कंकोलक (शीतलचीनी), लौंग, त्वग्द्वुम (दालचीनी) और पारिजातके वृक्ष लहलहा रहे थे। कहीं पिप्पली (पीपर) तथा कहीं नागवल्लीकी लताएँ फैली हुई थीं। कहीं काली मिर्च और नवमल्लिकाकी लताओंके कुञ्ज बने हुए थे। कहीं अंगूर और माधवीकी लताओंके मण्डप शोभा पा रहे थे। कहीं फलोंसे लदी हुई नीले रंगके फूलोंवाली लताएँ, कहीं कुम्हड़े तथा कहूकी लताएँ और कहीं धुँधुची, परवल, करैला एवं कक्षीटकी (पीतघोषा)-की लताएँ शोभा दे रही थीं। कहीं बैगन और भटकटैयाके

कण्टकैर्मूलकैर्मूलशाकैस्तु विविधैस्तथा ।
 कहौरैश्च विदार्या च रुस्टैः स्वादुकण्टकैः ॥ २९
 सभाण्डीरविदूसारराजजम्बूकवालुकैः ।
 सुवर्चलाभिः सर्वाभिः सर्वपाभिस्तथैव च ॥ ३०
 काकोलीक्षीरकाकोली छत्रया चातिच्छत्रया ।
 कासमर्दीसहासद्धिः सकन्दलसकाण्डकैः ॥ ३१
 तथा क्षीरकशाकेन कालशाकेन चाप्यथ ।
 शिम्बीधान्यैस्तथा धान्यैः सर्वैर्निरवशेषतः ॥ ३२
 औषधीभिर्विचित्राभिर्दीप्यमानाभिरेव च ।
 आयुष्याभिर्यशस्याभिर्बल्याभिश्च नराधिप ॥ ३३
 जरामृत्युभयद्धीभिः क्षुद्रद्यग्नीभिरेव च ।
 सौभाग्यजननीभिश्च कृत्स्नाभिश्चाप्यनेकशः ॥ ३४
 तत्र वेणुलताभिश्च तथा कीचकवेणुभिः ।
 काशैः शशाङ्ककाशैश्च शरगुल्मैस्तथैव च ॥ ३५
 कुशगुल्मैस्तथा रम्यर्गुल्मैश्चेक्षोर्मनोरमैः ।
 कार्पासजातिवर्गेण दुर्लभेन शुभेन च ॥ ३६
 तथा च कदलीखण्डर्मनोहारिभिरुत्तमैः ।
 तथा मरकतप्रछयैः प्रदेशैः शाद्वलान्वितैः ॥ ३७
 इरापुष्पसमायुक्तैः कुङ्कुमस्य च भागशः ।
 तगरातिविषामांसीग्रन्थिकैस्तु सुरागदैः ॥ ३८
 सुवर्णपुष्पैश्च तथा भूमिपुष्पैस्तथापरैः ।
 जम्बोरकैर्भूस्तृणकैः सरसैः सशुकैस्तथा ॥ ३९
 शृङ्गवेराजमोदाभिः कुबेरकप्रियालकैः ।
 जलजैश्च तथावर्णनानावर्णैः सुगन्थिभिः ॥ ४०
 उदयादित्यसङ्काशैः सूर्यचन्द्रनिभैस्तथा ।
 तपनीयसवर्णैश्च अतसीपुष्पसन्निभैः ॥ ४१
 शुकपत्रनिभैश्चान्यैः स्थलपत्रैश्च भागशः ।
 पञ्चवर्णैः समाकीर्णर्बहुवर्णैस्तथैव च ॥ ४२

फल, मूली, जड़वाले शाक तथा अनेकों प्रकारके कौटिदार वृक्ष शोभा पा रहे थे। कहीं श्वेत कमल, कंदविदारी, रुस्ट (एक फलदार वृक्ष), स्वादुकण्टक, (सफेद पिडालू), भाण्डीर (एक प्रकारका वट), बिदूसार (बिदारकन्द), राजजम्बूक (बड़ी जामुन), वालुक (एक प्रकारका आँवला), सुवर्चला (सूर्यमुखी) तथा सभी प्रकारके सरसोंके पौधे भी विद्यमान थे। काकोली (कंकोल), क्षीरकाकोली (कंकोलका एक भेद), छत्रा (छत्ता), अतिच्छत्रा (तालमखाना), कासमर्दी (अद्वासा), कन्दल (केलेका एक भेद), काण्डक (करैला), क्षीरशाक (दूधी), कालशाक (करेमू) नामक शाकों, सेमकी लताओं तथा सभी प्रकारके अन्नोंके पौधोंसे वह सारा प्रदेश सुशोभित हो रहा था ॥ २९—३२ ॥

नरेश्वर! वहाँ आयु, यश और बल प्रदान करनेवाली, वृद्धावस्था और मृत्युके भयको दूर करनेवाली, भूख-प्यासके कष्टकी विनाशिका एवं सौभाग्यप्रदायिनी सारी ओषधियाँ चित्र-विचित्ररूपमें देदीप्यमान हो रही थीं। वहाँ बाँसकी लताएँ फैली थीं तथा पोले बाँस हवाके संघर्षसे शब्द कर रहे थे। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कास-पुष्णों, सरपत, कुश और ईखके परम मनोहर रमणीय झाड़ियों तथा मनोरम एवं दुर्लभ कपास और मालतीके वृक्षों अथवा लताओंसे वह वन्य प्रदेश सुशोभित हो रहा था। वहाँ मनको चुरा लेनेवाले उत्तम जातिके केलेके वृक्ष भी लहलहा रहे थे। कोई-कोई प्रदेश मरकतमणिके तुल्य हरी-हरी घासोंसे हरे-भरे थे। कहीं कुङ्कुम और इरा (एक प्रकारकी नशीली मीठी लता)-के पुष्प बिखरे हुए थे। कहीं तगर, अतिविषा (अतीस नामकी जहरीली ओषधि), जटामासी और गुगुलकी भीनी सुगन्ध पैल रही थी। कहीं कनेरके पुष्णों, भूमिपर फैली हुई लताओंके फूलों, जम्बीर-वृक्षों और घासोंसे भूमि सुहावनी लग रही थी, जिसपर तोते विचर रहे थे। कहीं शृङ्गवेर (अदरख), अजमोदा, कुबेरक (तुनि) और प्रियालक (छोटी पियार)-के वृक्ष शोभा पा रहे थे तो कहीं अनेकों रंगोंके सुगन्थित कमलोंके पुष्प खिले हुए थे। उनमें कुछ पुष्प उगते हुए सूर्यके समान लाल, कुछ सूर्य-सरीखे चमकीले एवं चन्द्रमाके-से उज्ज्वल थे, कुछ सुवर्ण-सदृश पीतोज्ज्वल, कुछ अलसीके पुष्पके समान नीले तथा कुछ तोतेके पंखके सदृश हरे थे। इस प्रकार वहाँकी भूमि इन पाँचों रंगोंवाले तथा अन्यान्य रंग-बिरंगे स्थलपुष्णोंसे आच्छादित थी।

द्रष्टुर्दृष्ट्या हितमुदैः कुमुदैश्चन्द्रसन्निभैः।
तथा वह्निशिखाकारैर्गजवक्त्रोत्पलैः शुभैः॥ ४३

नीलोत्पलैः सकहौर्गुञ्जातककसेरूकैः।
शृङ्गाटकमृणालैश्च करटै राजतोत्पलैः॥ ४४

जलजैः स्थलजैर्मूलैः फलैः पुष्पैर्विशेषतः।
विविधैश्चैव नीवारैर्मुनिभोज्यैर्नराधिप ॥ ४५

न तद्वान्यं न तत्स्यं न तच्छाकं न तत् फलम्।
न तन्मूलं न तत् कन्दं न तत् पुष्पं नराधिप ॥ ४६

नागलोकोद्भवं दिव्यं नरलोकभवं च यत्।
अनूपोत्थं वनोत्थं च तत्र यन्नास्ति पार्थिवः॥ ४७

सदा पुष्पफलं सर्वमर्जयमृतयोगतः।
मद्रेश्वरः स ददूशे तपसा ह्यतियोगतः॥ ४८

ददूशे च तथा तत्र नानारूपान् पतत्रिणः।
मधूरान् शतपत्रांश्च कलविङ्कांश्च कोकिलान्॥ ४९

तदा कादम्बकान् हंसान् कोयष्टीन् खञ्जरीटकान्।
कुररान् कालकूटांश्च खट्वाङ्गांलुब्धकांस्तथा ॥ ५०

गोक्ष्वेडकांस्तथा कुम्भान् धार्तराष्ट्रञ्जुकान् बकान्।
घातुकांश्चक्रवाकांश्च कटाकूण्ठिटृभान् भटान्॥ ५१

पुत्रप्रियाँल्लोहपृष्ठान् गोचर्मगिरिवर्तकान्।
पारावतांश्च कमलान् सारिकाङ्गीवजी वकान्॥ ५२

लाववर्तकवार्ताकान् रक्तवर्त्मप्रभद्रकान्।
ताप्रचूडान् स्वर्णचूडाङ्कुटान् काष्ठकुञ्जटान्॥ ५३

कपिञ्जलान् कलविङ्कांस्तथा कुञ्जमचूडकान्।
भृङ्गराजान् सीरपादान् भूलिङ्गपिण्डमान् नवान्॥ ५४

मञ्जुलीतकदात्यूहान् भारद्वाजांस्तथा चषान्।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् पक्षिसञ्ज्ञान् मनोहरान्॥ ५५

वह वनस्थली देखनेवालेकी दृष्टिको आनन्ददायक एवं चन्द्रमा-सरीखे उज्ज्वल कुमुद-पुष्पों तथा अग्निकी शिखाके सदृश एवं हाथीके मुखमें संलग्न उज्ज्वल उत्पल, नीले उत्पल, कहार, गुंजातक (घुँघुची), कसेरुक (कसेरा), शृङ्गटक (सिंधाड़), कमलनाल, करट (कुसुम्ब) तथा चाँदीके समान उज्ज्वल उत्पलोंसे सुशोभित थी। इस प्रकार वह प्रदेश जल-कमल एवं स्थलकमल तथा मूल, फल और पुष्पोंसे विशेष शोभायमान था। नरेश्वर! वहाँ मुनियोंके खानेयोग्य अनेकों प्रकारके नीवार (तिनी) भी उगे हुए थे॥ ३३—४५॥

नरेन्द्र! (यहाँतक कि) नागलोक, स्वर्गलोक, मृत्युलोक, जलप्रा स्थान तथा वनमें उत्पन्न होनेवाला ऐसा कोई भी अनाज, धान्य, शाक, फल, मूल, कन्द और फूल नहीं था, जो वहाँ विद्यमान न हो अर्थात् सभी प्राप्य थे। वहाँके वृक्ष ऋतुओंके अनुकूल सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। मद्रेश्वर पुरुरवाने अपनी तपस्याके प्रभावसे उस वनप्रान्तको देखा। राजाको वहाँ अनेकों प्रकारके रूप-रंगवाले पक्षी भी दीख पड़े। जैसे मोर, शतपत्र (कठफोरवा), कलविंक (गौरेया), कोयल, कादम्बक (कलहंस), हंस, कोयष्टि (जलकुञ्जट), खंजरीट (खिङ्गरिच), कुरर (कराँकुल), कालकूट (जलकौआ), लोभी खट्वाङ्ग (पक्षिविशेष), गोक्ष्वेडक (हारिल), कुम्भ (डोम कौआ), धार्तराष्ट्र (काली चोंच और काले पैरोंवाले हंस), तोते, बगुले, निष्ठुर चक्रवाक, कटाकू (कर्कश ध्वनि करनेवाले विशेष पक्षी), टिटिहिरी, भट (तीतर), पुत्रप्रिय (शरभ), लोहपृष्ठ (श्वेत चील्ह), गोचर्म (चरसा), गिरिवर्तक (बतख), कबूतर, कमल (सारस), मैना, जीवजीवक (चकोर), लवा, वर्तक (बटेर), वार्ताक (बटेरोंकी एक जाति), रक्तवर्त्म (मुर्गा), प्रभद्रक (हंसका एक भेद), ताप्रचूड (लाल शिखावाले मुर्गे), स्वर्णचूड (स्वर्ण-सदृश शिखावाले मुर्गे), सामान्य मुर्गे, काष्ठकुञ्जट (मुर्गेंका एक भेद), कपिञ्जल (पपीहा), कलविंक (गौरेया), कुञ्जमचूड (केसर-सरीखी शिखावाले पक्षी), भृङ्गराज (पक्षिविशेष), सीरपाद (बड़ा सारस), भूलिंग (भूमिमें रहनेवाले पक्षी), डिण्डम (हारिल पक्षीकी एक जाति), नव (काक), मञ्जुलीतक (चील्हकी जातिविशेष), दात्यूह (जलकाक), भारद्वाज (भरदूल) तथा चाष (नीलकण्ठ)—इन्हें तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुत-से मनोहर पक्षिसमूहोंको राजाने देखा॥ ४६—५५॥

श्वापदान् विविधाकारान् मृगांश्चैव महामृगान्।
 व्याघ्रान् केसरिणः सिंहान् द्वीपिनः शरभान् वृक्तान्॥ ५६
 ऋक्षांस्तरक्षुंश्च बहून् गोलाङ्गुलान् सवानरान्।
 शशलोमान् सकादम्बान् मार्जारान् वायुवेगिनः॥ ५७
 तथा मत्तांश्च मातङ्गान् महिषान् गवयान् वृषान्।
 चमरान् सृमरांश्चैव तथा गौरखरानपि॥ ५८
 उरध्रांश्च तथा मेषान् सारङ्गानथं कूकुरान्।
 नीलांश्चैव महानीलान् करालान् मृगमातृकान्॥ ५९
 सदंष्ट्रालोमशरभान् क्रौञ्चाकारकशम्बरान्।
 करालान् कृतमालांश्च कालपुच्छांश्च तोरणान्॥ ६०
 उष्णान् खङ्गान् वराहांश्च तुरङ्गान् खरगर्दभान्।
 एतान्द्विष्टान् मद्रेशो विरुद्धांश्च परस्परम्॥ ६१
 अविरुद्धान् वने दृष्ट्वा विस्मयं परमं यथौ।
 तच्चाश्रमपदं पुण्यं बभूवात्रेः पुरा नृप॥ ६२
 तत्प्रसादात् प्रभायुक्तं स्थावरैर्जङ्गमैस्तथा।
 हिंसन्ति हि न चान्योन्यं हिंसकास्तु परस्परम्॥ ६३
 क्रव्यादाः प्राणिनस्तत्र सर्वे क्षीरफलाशनाः।
 निर्मितास्तत्र चात्यर्थमत्रिणा सुमहात्मना॥ ६४
 शैलानितम्बदेशेषु न्यवसच्च स्वयं नृपः।
 पयः क्षरन्ति ते दिव्यममृतस्वादुकण्टकम्॥ ६५
 कवचिद् राजन् महिष्यश्च कवचिदाजाश्च सर्वशः।
 शिलाः क्षीरेण सम्पूर्णा दध्ना चान्यत्र वा बहिः॥ ६६
 सम्पश्यन् परमां प्रीतिमवाप वसुधाधिष्यः।
 सरांसि तत्र दिव्यानि नद्यश्च विमलोदकाः॥ ६७
 प्रणालिकानि चोष्णानि शीतलानि च भागशः।
 कन्दराणि च शैलस्य सुसेव्यानि पदे पदे॥ ६८
 हिमपातो न तत्रास्ति समन्तात् पञ्चयोजनम्।
 उपत्यका सुशैलस्य शिखरस्य न विद्यते॥ ६९
 तत्रास्ति राजञ्जिखरं पर्वतेन्द्रस्य पाण्डुरम्।
 हिमपातं घना यत्र कुर्वन्ति सहिताः सदा॥ ७०

इसी प्रकार राजाको वहाँ विभिन्न रूप-रंगवाले जंगली जीव भी देखनेको मिले। जैसे—हिरन, बारहसिंघे, बाघ, सिंह, शेर, चीता, शरभ (अष्टपदी), भेड़िया, रीछ, तरक्षु (लकड़ा), बहुत-से लाङ्गूली वानर, सामान्य वानर, वायु-सरीखे वेगशाली खरगोश, लोमड़ी, वनबिलाव, बिलाव, मतवाले हाथी, भेंसे, नीलगाय, बैल, चमर (सुरा गाय), सृमर (बालमृग), श्वेत रंगके गधे, भेंड, मेढ़, मृग, कुत्ते, नीले एवं गाढ़े नीले रंगवाले भयानक मृगमातृक (कस्तूरी मृग), बड़ी-बड़ी दाढ़ों एवं रोमोंसे युक्त शरभ (अष्टपदी), क्रौंच पक्षीके आकारवाले शम्बर (साबर मृग), भयानक कृतमाल (एक प्रकारका हिरन), काली पूँछोंवाले तोरण (सियार), ऊँट, गैँड़े, सूअर, घोड़े, खच्चर, गधे* आदि जीवोंको उस वनमें परस्पर विरुद्धस्वभाववाले होनेपर भी द्वेषरहित होकर निवास करते देखकर मद्रेश्वर पुरुखवा विस्मयविमुग्ध हो गये। राजन्! पूर्वकालमें उसी स्थानपर महर्षि अत्रिका पुण्यमय आश्रम था। उन ऋषिकी कृपासे वह प्रदेश स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसे भरा हुआ अत्यन्त सुहावना था और वहाँ हिंसक जीव भी परस्पर एक-दूसरेकी हिंसा नहीं करते थे॥ ५६—६३॥

महर्षि अत्रिने उस आश्रममें ऐसा उत्तम वातावरण बना दिया था कि वहाँके सभी मांसभोजी जीव दूध और फलका ही आहार करते थे। राजन्! मद्रेश्वरने पर्वतके उसी नितम्बप्रदेश (निचले भाग)-में अपना निवास-स्थान बनाया। वहाँ सब ओर कहीं भैंसों तो कहीं बकरियोंके स्तनोंसे अमृतके समान स्वादिष्ट दिव्य दूध झारता रहता था, जिससे वहाँकी शिलाएँ भीतर-बाहर—सब ओर दूध एवं दहीसे सराबोर रहती थीं। यह देखकर भूपाल पुरुखवाको परम हर्ष प्राप्त हुआ। वहाँ दिव्य सरोवर थे तथा निर्मल जलसे भरी हुई नदियाँ बह रही थीं। नालियोंमें कहीं गरम तो कहीं शीतल जल बह रहा था। उस पर्वतकी कन्दराएँ पग-पगपर सेवन करने योग्य थीं। उस आश्रमके चारों ओर पाँच योजनके घेरेमें हिम-पात नहीं होता था। उस सुन्दर पर्वतके शिखरके नीचे उपत्यका (मैदानी भूमि) नहीं थी (जिसके कारण वह प्रदेश जनशून्य था)। राजन्! वहाँ उस पर्वतराजका एक पीले रंगका शिखर है, जिसपर बादल संगठित होकर सदा हिमकी वर्षा किया

* नामावलिमें एक ही नाम कई बार आये हैं, अतः उनसे उस जातिके विभिन्न भेदोंको समझना चाहिये।

तत्रास्ति चापरं शृङ्गं यत्र तोयघना घनाः।
नित्यमेवाभिवर्षन्ति शिलाभिः शिखरं वरम्॥ ७१
तदाश्रमं मनोहारि यत्र कामधरा धरा।
सुरमुख्योपयोगित्वाच्छाखिनां सफलाः फलाः॥ ७२
सदोपगीतभ्रमरसुरस्त्रीसेवितं परम्।
सर्वपापक्षयकरं शैलस्येव प्रहारकम्॥ ७३
वानरैः क्रीडमानैश्च देशाद् देशान् नराधिप।
हिमपुञ्जाः कृतास्तत्र चन्द्रबिम्बसमप्रभाः॥ ७४
तदाश्रमं समंताच्च हिमसंरुद्धकन्दरैः।
शैलवाटैः परिवृतमगम्यं मनुजैः सदा॥ ७५
पूर्वाराधितभावोऽसौ महाराजः पुरुरवाः।
तदाश्रमपदं प्राप्तो देवदेवप्रसादतः॥ ७६
तदाश्रमं श्रमशमनं मनोहरं
मनोहरैः कुसुमशतैरलङ्घतम्।
कृतं स्वयं रुचिरमथात्रिणा शुभं
शुभावहं तद् ददृशे स मद्राद्॥ ७७

इति श्रीमात्ये महापुराणे भुवनकोशेऽत्र्याश्रमवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११८॥
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें अत्रि-आश्रमवर्णन नामक एक सौ अठाहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११८॥

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

आश्रमस्थ विवरमें पुरुरवा* का प्रवेश, आश्रमकी शोभाका वर्णन तथा पुरुरवाकी तपस्या
सूत उवाच

तत्र यौ तौ महाशृङ्गौ महावर्णौ महाहिमौ।
तृतीयं तु तयोर्मध्ये शृङ्गमत्यन्तमुच्छ्रितम्॥ १
नित्यात्मशिलाजालं सदाभ्यपरिवर्जितम्।
तस्याधस्ताद् वृक्षगणो दिशां भागे च पश्चिमे॥ २
जातीलतापरिक्षिमं विवरं चारुदर्शनम्।
द्वौष्ट्रैव कौतुकाविष्टस्तं विवेश महीपतिः॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! वहाँ सदा हिमाच्छादित तथा रंग-बिरंगे जो दो महान् शिखर थे, उनके बीचमें एक तीसरा शिखर था, जो अत्यन्त ऊँचा था। वह बादलोंसे सदा शून्य रहता था, जिससे उसकी शिलाएँ नित्य सन्तास बनी रहती थीं। उस शिखरके नीचे पश्चिम दिशामें वृक्षोंके समूह शोभा पा रहे थे। उन्हींके बीचमें एक अत्यन्त सुन्दर विवर (छिद्र) था, जो मालतीकी लताओंसे आच्छादित था। उसे देखते ही राजा पुरुरवा आश्वर्यचकित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने उस विवरमें

* इस पुराणमें—यजुर्वेद ५। २, ऋग्वेद १०। १५, शतपथब्राह्मण ११। ५ आदिमें संकथित पुरुरवाके कथानकका सर्वाधिक विस्तारसे उपवृण्ण हुआ है और कई बार उसकी पुनरुक्ति भी हुई है। इससे विक्रमोर्वशीयमें कालिदास एवं पार्जीटर आदि आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् लेखक बहुत प्रभावित हुए हैं। निघण्ड ५। ४ तथा यास्कीय निरुक्त १०। ४६ एवं ऋग्वेद १०। १५। २ के अनुसार ये सूर्य या मूल प्राणतत्त्व हैं। पाणिं ६। ३। १३७ के अनुसार यहाँ 'पुरु' में दीर्घ हुआ है।

तमसा चातिनिबिंदं नल्वमात्रं सुसंकटम् ।
 नल्वमात्रमतिक्रम्य स्वप्रभाभरणोज्ज्वलम् ॥ ४
 तमुच्छ्रितमथात्यन्तं गम्भीरं परिवर्तुलम् ।
 न तत्र सूर्यस्तपति न विराजति चन्द्रमाः ॥ ५
 तथापि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्मिशम् ।
 क्रोशाधिकपरीमाणं सरसा च विराजितम् ॥ ६
 समंतात् सरसस्तस्य शैललग्ना तु वेदिका ।
 सौवर्णे राजतैर्वृक्षैर्विद्मैरुपशोभितम् ॥ ७
 नानामाणिक्यकुसुमैः सुप्रभाभरणोज्ज्वलैः ।
 तस्मिन् सरसि पद्मानि पद्मरागच्छदानि तु ॥ ८
 वज्रकेशरजालानि सुगन्धीनि तथा युतम् ।
 पत्रैर्मरकतैर्नालैर्वैदूर्यस्य महीपते ॥ ९
 कर्णिकाश्च तथा तेषां जातरूपस्य पार्थिव ।
 तस्मिन् सरसि या भूमिः सा तु वज्रसमाकुला ॥ १०
 नानारैरुपचिता जलजानां समाश्रया ।
 कपर्दिकानां शुक्तीनां शङ्खानां च महीपते ॥ ११
 मकराणां च मत्स्यानां चण्डानां कच्छपैः सह ।
 तत्र मरकतखण्डानि वज्राणां च सहस्रशः ॥ १२
 पद्मरागेन्द्रनीलानि महानीलानि पार्थिव ।
 पुष्परागाणि सर्वाणि तथा कर्केतनानि च ॥ १३
 तुथकस्य तु खण्डानि तथा शेषस्य भागशः ।
 रा(ला) जावर्तस्य मुख्यस्य रुधिराक्षस्य चाप्यथ ॥ १४
 सूर्येन्दुकान्तयश्चैव नीलो वर्णान्तिमश्च यः ।
 ज्योतीरसस्य रम्यस्य स्यमन्तस्य च भागशः ॥ १५
 सुरोरगवलक्षणां स्फटिकस्य तथैव च ।
 गोमेदपित्तकानां च धूलीमरकतस्य च ॥ १६
 वैदूर्यसौगन्धिकयोस्तथा राजमणेर्नृप ।
 वज्रस्यैव च मुख्यस्य तथा ब्रह्ममणेरपि ॥ १७
 मुक्ताफलानि मुक्तानां ताराविग्रहधारणीम् ॥ १८

प्रवेश किया । वह मार्ग चार सौ हाथ (एक फलांग)-तक घने अन्धकारसे समावृत होनेके कारण अत्यन्त संकटमय था । उस चार सौ हाथकी दूरी पार कर लेनेपर राजा ऐसे स्थानपर पहुँचे, जो अपनी कान्तिसे ही उद्घासित हो रहा था । वह स्थान ऊँचा, अत्यन्त गम्भीर और गोलाकार था तथा एक कोसके विस्तारवाला था । यद्यपि वहाँ न सूर्य तपते थे न चन्द्रमा ही विराजमान थे, तथापि वह दिनकी भाँति रात-दिन प्रकाशयुक्त बना रहता था । वहाँ एक सरोवर भी था । जो सुवर्ण, चाँदी और मूँगोंके समान रंग-बिरंगे वृक्षोंसे सुशोभित था । उन वृक्षोंमें नाना प्रकारके मणियोंके सदृश परमोत्कृष्ट कान्तिसे युक्त फूल खिले हुए थे । उस सरोवरके चारों ओर शिलाओंकी बेदी बनी हुई थी, भूपाल ! उस सरोवरमें विभिन्न प्रकारके कमल खिले हुए थे, जिनके पुष्पदल पद्मरागमणि-सरीखे, केसर-समूह हीरेके-से और पत्ते नीले वैदूर्य मणिके समान चमक रहे थे और वे सुगन्धसे भरे हुए थे । उनकी कर्णिका (छत्ता) सुवर्णके समान चमकीली थी ॥ १—९ १३ ॥

उस सरोवरमें जो भूमि थी, वह हीरेसे आच्छादित थी, साथ ही वह नाना प्रकारके दूसरे रत्नोंसे भी मणिडत थी । महीपाल ! वहाँ जलमें उत्पन्न होनेवाली कौड़ी, सीपी और शङ्ख भी वर्तमान थे । वह कछुओंके साथ-साथ भयानक घड़ियालों और मछलियोंका वासस्थान था । राजन् ! उसमें कहीं मरकतमणि तथा हीरेके हजारों टुकड़े पड़े थे । कहीं पद्मराग (माणिक्य या लाल), इन्द्रनील (नीलम), महानील, पुष्पराग (पुखराज), कर्केतन, तुथक तथा शेष मणियोंके खण्ड चमक रहे थे । कहीं लाजावर्त, मुख्य, रुधिराक्ष, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, नीलवर्णान्तिक, ज्योतीरस, रम्य एवं स्यमन्तक मणियोंके टुकड़े यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे । कहीं सुरमणि, सर्पमणि, वलक्षमणि और स्फटिकमणिकी चट्टानें चमक रही थीं, तो कहीं गोमेद, पित्तक, धूलीमणि, मरकत, वैदूर्य, सौगन्धिक, राजमणि, हीरा, मुख्य तथा ब्रह्ममणिके खण्ड दृष्टिगोचर हो रहे थे । कहीं-कहीं बिखरे हुए मोती* अपनी प्रभा फैला रहे थे, जो ताराओंके समान लग रहे थे ।

* यहाँ श्लोक ८ से लेकर १९ तके—बारह श्लोकोंमें—३२ मुख्य मणियोंके उल्लेखपूर्वक सम्पूर्ण रत्नशस्त्रका संक्षेपमें निरूपण हुआ है । गरुडपुराण ६८—७८, विष्णुधर्मो० २ । १५, युक्तिकल्पतरु, बृहत्संहिता, रत्नसारमें इनका विस्तृत परिचय है ।

सुखोष्णं चैव तत् तोयं स्नानाच्छीतविनाशनम्।
वैदूर्यस्य शिला मध्ये सरसस्तस्य शोभना ॥ १९

प्रमाणेन तथा सा च द्वे च राजन् धनुःशते ।
चतुरस्त्रा तथा रम्या तपसा निर्मितात्रिणा ॥ २०

बिलद्वारसमो देशो यत्र यत्र हिरण्मयः ।
प्रदेशः स तु राजेन्द्र द्वीपे तस्मिन् मनोहरे ॥ २१
तथा पुष्करिणी रम्या तस्मिन् राजञ्जिष्ठातले ।
सुशीतामलपानीया जलजैश्च विराजिता ॥ २२
आकाशप्रतिमा राजंश्चतुरस्त्रा मनोहरा ।
तस्यास्तदुदकं स्वादु लघु शीतं सुगच्छिकम् ॥ २३
न क्षिणोति यथा कण्ठं कुक्षिं नापूरयत्यपि ।
तृसिं विधत्ते परमां शरीरे च महत् सुखम् ॥ २४

मध्ये तु तस्याः प्रासादं निर्मितं तपसात्रिणा ।
रुक्मसेतुप्रवेशान्तं सर्वत्रमयं शुभम् ॥ २५

शशाङ्करश्मेः संकाशं प्रासादं राजतं हितम् ।
रम्यवैदूर्यसोपानं विद्वुमामलसारकम् ॥ २६

इन्द्रनीलमहास्तम्भं मरकतासक्तवेदिकम् ।
वज्रांशुजालैः स्फुरितं रम्यं दृष्टिमनोरमम् ॥ २७

प्रासादे तत्र भगवान् देवदेवो जनार्दनः ।
भोगिभोगावलीसुप्तः सर्वालङ्कारभूषितः ॥ २८

जान्वाच्य कुञ्जितस्त्वेको देवदेवस्य चक्रिणः ।
फणीन्द्रसंनिविष्टोऽङ्गिर्द्वितीयश्च तथानघ ॥ २९

लक्ष्म्युत्सङ्गतोऽङ्गिरस्तु शेषभोगप्रशायिनः ।
फणीन्द्रभोगसंन्यस्तबाहुः केयूरभूषणः ॥ ३०

अङ्गुलीपृष्ठविन्यस्तदेवशीर्षधरं भुजम् ।
एकं वै देवदेवस्य द्वितीयं तु प्रसारितम् ॥ ३१

उस सरोवरका जल कुछ गुनगुना गरम था, जो स्नान करनेसे ठण्डको दूर कर देता था। उस सरोवरके मध्यमें वैदूर्यमणिकी एक सुन्दर शिला थी। राजन्! उस रमणीय शिलाको महर्षि अत्रिने अपनी तपस्याके प्रभावसे निर्मित किया था। वह आठ सौ हाथ (दो फलांग) विस्तृत एवं चौकोर थी। राजेन्द्र! उस मनोहर द्वीपमें सारा प्रदेश बिलद्वारके समान स्वर्णमय था ॥ १०—२१ ॥

राजन्! उस शिलातलपर एक रमणीय पुष्करिणी (पोखरी) थी, जो चौकोर, मनोमोहिनी तथा आकाशके समान निर्मल थी। वह अत्यन्त शीतल एवं निर्मल जलसे परिपूर्ण तथा कमलोंसे सुशोभित थी। उसका वह जल सुस्वादु, पचनेमें हलका, शीतल और सुगन्धयुक्त था। वह जैसे गलेको कष्ट नहीं पहुँचाता था, उसी प्रकार कुक्षिको भी वायुसे परिपूर्ण नहीं करता था, अर्थात् वायुविकार नहीं उत्पन्न करता था, अपितु शरीरमें पहुँचकर परम तृप्ति उत्पन्न करता तथा महान् सुख पहुँचाता था। उस पुष्करिणी (बावली)-के मध्यभागमें महर्षि अत्रिने अपनी तपस्याके बलसे एक महलका निर्माण किया था। वह सुन्दर प्रासाद चाँदीका बना हुआ था, जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमक रहा था। उसमें सभी प्रकारके रत्न जड़े गये थे तथा भीतर प्रवेश करनेके लिये सोनेकी सीढ़ियाँ बनी थीं, जिनमें रमणीय वैदूर्य एवं निर्मल मूँगे लगे हुए थे। उसमें इन्द्रनील मणिके विशाल खम्भे लगे थे। उसकी वेदिका अर्थात् फर्शपर मरकतमणि जड़ी हुई थी। हीरेकी किरणोंसे चमचमाता हुआ वह रमणीय महल देखते ही मनको लुभा लेता था। उस महलमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दन (मूर्ति-रूपसे) सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित होकर शेषनागके फणोंपर शयन कर रहे थे। अनघ! देवाधिदेव चक्रधारी भगवान् का एक चरण घुटनेसे मुड़ा हुआ था और दूसरा चरण शेषनागके ऊपरसे होता हुआ लक्ष्मीकी गोदमें स्थित था। शेषनागके फणोंपर शयन करनेवाले भगवान् का बाजूबंदसे विभूषित एक हाथ शेषनागके फणोंपर स्थापित था ॥ २२—३० ॥

उस हाथकी अङ्गुलियोंका पृष्ठभाग शेषके सिरपर रखा हुआ था। उनका दूसरा हाथ फैला हुआ था।

समाकुञ्जितजानुस्थमणिबन्धेन शोभितम्।
 किञ्चिदाकुञ्जितं चैव नाभिदेशकरस्थितम्॥ ३२
 तृतीयं तु भुजं तस्य चतुर्थं तु तथा शृणु।
 आत्तसंतानकुसुमं घाणदेशानुसर्पिणम्॥ ३३
 लक्ष्म्या संवाह्यमानाङ्गिः पद्मपत्रनिभैः करैः।
 संतानमालामुकुटं हारकेयूरभूषितम्॥ ३४
 भूषितं च तथा देवमङ्गदैरङ्गुलीयकैः।
 फणीन्द्रफणविन्यस्तचारुलशिखोऽच्चलम्॥ ३५
 अज्ञातवस्तुचरितं प्रतिष्ठितमथात्रिणा।
 सिद्धानुपूज्यं सततं संतानकुसुमार्चितम्॥ ३६
 दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यधूपेन धूषितम्।
 सुरसैः सुफलैर्हृद्यैः सिद्धैरुपहृतैः सदा॥ ३७
 शोभितोत्तमपार्श्वं तं देवमुत्यलशीर्षकम्।
 ततः सम्मुखमुद्धीक्ष्य ववन्दे स नराधिपः॥ ३८
 जानुभ्यां शिरसा चैव गत्वा भूमि यथाविधि।
 नामां सहस्रेण तथा तुष्टाव मधुसूदनम्॥ ३९
 प्रदक्षिणमथो चक्रे स तूत्थाय पुनः पुनः।
 रम्यमायतनं दृष्ट्वा तत्रोवासाश्रमे पुनः॥ ४०
 बिलाद् बहिर्गुहां काञ्जिदाश्रित्य सुमनोहराम्।
 तपश्चकार तत्रैव पूजयन् मधुसूदनम्॥ ४१
 नानाविधैस्तथा पुष्टैः फलमूलैः सगोरसैः।
 नित्यं त्रिष्वणस्त्रायी वह्निपूजापरायणः॥ ४२
 देववापीजलैः कुर्वन् सततं प्राणधारणम्।
 सर्वाहारपरित्यागं कृत्वा तु मनुजेश्वरः॥ ४३
 अनास्तृतगुहाशायी कालं नयति पार्थिवः।
 त्यक्ताहारक्रियश्चैव केवलं तोयतो नृपः।
 न तस्य ग्लानिमायाति शरीरं च तदद्भुतम्॥ ४४

तीसरे हाथका मणिबन्ध मुड़े हुए घुटनेपर सुशोभित था तथा कुछ मुड़कर नाभिदेशपर फैले हुए पहले हाथपर अवलम्बित था। अब उनके चौथे हाथकी दशा सुनो। चौथे हाथमें भगवान् कल्पवृक्षका पुष्प धारण किये हुए थे और उसे अपनी नासिकातक ले गये थे। उस समय लक्ष्मी अपने कमल-दलके समान कोमल हाथोंसे भगवान् का चरण दबा रही थीं। भगवान् के मस्तकपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालाओंका मुकुट शोभा दे रहा था। वे हार, केयूर, बाजूबंद और अङ्गूठीसे विभूषित तथा शेषनागके फणोंपर रखे हुए सुन्दर रलोंसे प्रकाशित हो रहे थे। एवं इनकी विशेषता यह थी कि महर्षि अत्रिने उनकी स्थापना की थी। उनका चरित्र वस्तुतः जाना नहीं जा सकता। सिद्धगण सदा उनकी पूजा करते थे। कल्पवृक्षके पुष्पोंद्वारा उनकी अर्चना होती थी। उनके अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप था तथा वे दिव्य धूपसे धूषित थे। सिद्धगण उन्हें सदा सरस एवं मनोहर फलोंका उपहार देते थे। वे उत्तम पार्श्वसे सुशोभित थे तथा उनके मस्तकपर कमल शोभा पा रहा था॥ ३१—३७ १/२॥

ऐसे भगवान् (-की मूर्ति)-को अपने सम्मुख देखकर राजा पुरुरवाने विधिपूर्वक घुटने टेककर और मस्तकको भूमिपर रखकर भगवान् को प्रणाम किया तथा सहस्रनामोंद्वारा उन मधुसूदनका स्तवन किया और उठकर बारम्बार उनकी प्रदक्षिणा की। पुनः उस रमणीय देवमन्दिरको देखकर उसी आश्रममें निवास करनेका निश्चय किया। तत्पश्चात् उस बिलसे बाहर निकलकर वे किसी अतिशय मनोहारिणी गुफाका आश्रय लेकर नाना प्रकारके पुष्पों, फलों, मूलों तथा गोरसोंद्वारा भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हुए वहीं तपस्यामें संलग्न हो गये। वे नित्य त्रिकाल स्नान तथा अग्निहोत्र करते थे। वे नरेश सभी प्रकारके आहारका परित्याग कर सदा उस देववापी (पोखरी)-के जलसे ही प्राणोंकी रक्षा करते थे। राजा बिना बिछौनेके ही गुफामें शयन करते हुए समय बिता रहे थे। यद्यपि राजाने भोजन करना छोड़ दिया था और केवल जलपर ही निर्भर थे, तथापि उन्हें किसी प्रकारकी ग्लानि नहीं होती थी, प्रत्युत उनका शरीर अद्भुत तेजोमय हो गया

एवं स राजा तपसि प्रसक्तः
सम्पूजयन् देववरं सदैव।
तत्राश्रमे कालमुवास कञ्चित्
स्वर्गोपमे दुःखमविन्दमानः ॥ ४५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे आयतनवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णनमें आयतनवर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११९ ॥

था। इस प्रकार राजा पुरुरवाने तपस्यामें दत्तचित्त होकर सदा देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी पूजा करते हुए दुःखकी कुछ भी परवा न कर उस स्वर्गतुल्य आश्रममें कुछ कालतक निवास किया ॥ ३८—४५ ॥

एक सौ बीसवाँ* अध्याय

राजा पुरुरवाकी तपस्या, गन्धर्वों और अप्सराओंकी क्रीडा, महर्षि अत्रिका आगमन तथा राजाको वरप्राप्ति

सूत उवाच

स त्वाश्रमपदे रम्ये त्यक्ताहारपरिच्छदः ।
क्रीडाविहारं गन्धर्वैः पश्यत्यप्सरसां सह ॥ १
कृत्वा पुष्पोच्ययं भूरि ग्रथयित्वा तथा स्त्रजः ।
अर्घ्यं निवेद्य देवाय गन्धर्वेभ्यस्तदा ददौ ॥ २
पुष्पोच्ययप्रसक्तानां क्रीडन्तीनां यथासुखम् ।
चेष्टा नानाविधाकाराः पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ३
काचित् पुष्पोच्यये सक्ता लताजालेन वेष्टिता ।
सखीजनेन संत्यक्ता कान्तेनाभिसमुज्जिता ॥ ४
काचित् कमलगन्धाभा निःश्वासपवनाहृतैः ।
मधुपैराकुलमुखी कान्तेन परिमोचिता ॥ ५
मकरन्दसमाक्रान्तनयना काचिदद्भुता ।
कान्तनिःश्वासवातेन नीरजस्ककृतेक्षणा ॥ ६
काचिदुच्चीय पुष्पाणि ददौ कान्तस्य भामिनी ।
कान्तसंग्रथितैः पुष्पै रराज कृतशेखरा ॥ ७

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार राजकीय सामग्रियों तथा आहारका परित्याग कर राजा पुरुरवा उस रमणीय आश्रममें निवास करने लगे। वहाँ उन्हें गन्धर्वोंके साथ अप्सराओंका क्रीडाविहार भी देखनेको मिलता था। राजा बहुत-से फूलोंको तोड़कर उसकी माला गूँथते थे और उन्हें अर्घ्यसहित पहले भगवान् विष्णुको निवेदित कर पुनः गन्धर्वोंको दे देते थे। वे वहाँ पुष्प-चयनमें लगी हुई एवं सुखपूर्वक क्रीडा करती हुई अप्सराओंकी विभिन्न प्रकारकी चेष्टाओंको देखकर भी अनदेखी कर जाते थे। वहाँ पुष्प-चयनमें निरत कोई अप्सरा लता-समूहमें उलझ गयी और सखियाँ उसे उसी दशामें छोड़कर चलती बनीं, तब उसके पतिने आकर उसे बन्धन-मुक्त किया। किसी अप्सराके शरीरसे कमलकी-सी गन्ध निकल रही थी। इस कारण उसकी निःश्वासवायुसे आकृष्ट होकर भ्रमर उसके ऊपर मँडरा रहे थे। उन भ्रमरोंसे उसका मुख ढक-सा गया था; तब उसके पतिने उसे उस कष्टसे मुक्त किया। किसी अप्सराकी आँखें पुष्प-रजसे आक्रान्त हो गयीं, तब उसके पतिने अपनी श्वासवायुसे फूँककर उन्हें धूलरहित कर दिया। किसी सुन्दरीने पुष्पोंको एकत्रकर अपने पतिको दे दिया। तत्पश्चात् वह अपने पतिद्वारा गूँथी गयी पुष्पमालाको अपने मस्तकपर रखकर सुशोभित

* इस अध्यायके अनेक शब्दार्थलिंगकारोंसे उद्दीपित अधिकांश श्लोक भागवत १०। ३३ से मिलते हैं। कोई एक-दूसरेसे अवश्य प्रभावित है। वैसे इस प्रकारका वर्णन गर्वसंहिता, ब्रह्मवैवर्तपुराणके रासप्रकरणोंमें तथा भागवतके रामनारायणकृत भावविभाविक तथा किशोरीदासकृता विशुद्धरसदीपिकामें इनकी भी पूरी व्याख्या है।

उच्चीय स्वयमुद्गथ्य कान्तेन कृतशेखरा ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने मन्मथवर्धिनी ॥८

अस्त्यस्मिन् गहने कुञ्जे विशिष्टकुसुमा लता ।
काचिदेवं रहो नीता रमणेन रिंसुना ॥९

कान्तसंनामितलता कुसुमानि विचिन्वती ।
सर्वाभ्यः काचिदात्मानं मेने सर्वगुणाधिकम् ॥१०

काश्चित् पश्यन्ति भूपालं नलिनीषु पृथक् पृथक् ।
क्रीडमानास्तु गन्धर्वैर्देवरामा मनोरमाः ॥११

काचिदाताडयत् कान्तमुदकेन शुचिस्मिता ।
ताडयमानाथ कान्तेन प्रीतिं काचिदुपाययौ ॥१२

कान्तं च ताडयामास जातखेदा वराङ्गना ।
अदृश्यत वरारोहा श्वासनृत्यत्पयोधरा ॥१३

कान्ताम्बुताडनाकृष्टकेशपाशनिबन्धना ।
केशाकुलमुखी भाति मधुपैरिव पद्मिनी ॥१४

स्वचक्षुःसदृशैः पुष्टैः संच्छन्ने नलिनीवने ।
छन्ना काचिच्चिरात् प्राप्ता कान्तेनान्विष्य यत्रतः ॥१५

स्नाता शीतापदेशेन काचित् प्राहाङ्गना भृशम् ।
रमणालिङ्गनं चक्रे मनोऽभिलिषितं चिरम् ॥१६

जलार्द्रवसनं सूक्ष्ममङ्गलीनं शुचिस्मिता ।
धारयन्ती जनं चक्रे काचित् तत्र समन्मथम् ॥१७

कण्ठमाल्यगुणैः काचित् कान्तेन कृष्टताम्भसि ।
त्रुट्यत्वगदामपतितं रमणं प्राहसच्चिरम् ॥१८

काचिद्गुना सखीदत्तजानुदेशे नखक्षता ।
सम्भान्ता कान्तशरणं मग्ना काचिद् गता चिरम् ॥१९

काचित् पृष्ठकृतादित्या केशनिस्तोयकारिणी ।
शिलातलगता भर्त्रा दृष्टा कामार्तचक्षुषा ॥२०

कृतमाल्यं विलुलितं संक्रान्तकुचकुङ्कमम् ।
रतिक्रीडितकान्तेव रराज तत् सरोदकम् ॥२१

सुस्नातदेवगंधर्वदेवरामागणेन च ।
पूज्यमानं च ददृशो देवदेवं जनार्दनम् ॥२२

होने लगी । तभी किसीके पतिने पुष्प-चयन करके अपने ही हाथों माला गूँथकर उसे अपनी पत्नीके मस्तकपर रखकर उसे सुसज्जित कर दिया, इससे उसने अपनेको कृतकृत्य मान लिया ॥१—८॥

कोई पतिद्वारा झुकायी गयी लतासे फूल तोड़ रही थी, जिससे वह अपनेको सभी सखियोंसे सम्पूर्ण गुणोंमें बढ़-चढ़कर मान रही थी। कुछ सुन्दरी देवाङ्गनाएँ गन्धर्वोंके साथ पृथक्-पृथक् क्रीडा करती हुई कमलसमूहोंके बीचसे राजाकी ओर देख रही थीं। कोई सुन्दरी अपने पतिके ऊपर जल उछाल रही थी और किसीके ऊपर उसका पति जल फेंक रहा था, जिससे उसे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। कोई देवाङ्गना खिन्न मनसे अपने पतिके ऊपर जल उछाल रही थी। पतिके ऊपर जल फेंकनेसे किसीकी चोटी खुल गयी थी, जिससे उसका मुख बालोंसे ढक गया था। उस समय वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो भ्रमरोंसे घिरी हुई कमलिनी हो। कोई अपने नेत्रोंके समान कमल-पुष्पोंसे ढके हुए उस कमलिनीके बनमें छिप गयी थी, जिसे उसके पतिने बड़ी देरके बाद प्रयत्नपूर्वक खोजकर प्राप्त किया। किसीको उसका पति गलेमें पड़ी हुई मालाके धागेको पकड़कर जलमें खींच रहा था, किंतु उस धागेके टूट

कवचिच्च ददूशे राजा लतागृहगताः स्त्रियः ।
मण्डयन्तीः स्वगात्राणि कान्तसंन्यस्तमानसाः ॥ २३
काचिदादर्शनकरा व्यग्रा दूतीमुखोद्भूतम् ।
शृण्वती कान्तवचनमधिका तु तथा बभौ ॥ २४
काचित् सत्वरिता दूत्या भूषणानां विपर्ययम् ।
कुर्वाणा नैव बुबुधे मन्मथाविष्टचेतना ॥ २५
वायुनुन्नातिसुरभिकुसुमोत्करमण्डिते ।
काचित् पिबन्ती ददूशे मैरेयं नीलशाढ्वले ॥ २६
पाययामास रमणं स्वयं काचिद् वराङ्गना ।
काचित् पपौ वरारोहा कान्तपाणिसमर्पितम् ॥ २७
काचित् स्वनेत्रचपलनीलोत्पलयुतं पयः ।
पीत्वा पप्रच्छ रमणं क्रृ गतौ तौ ममोत्पलौ ॥ २८
त्वयैव पीतौ तौ नूनमित्युक्ता रमणेन सा ।
तथा विदित्वा मुग्धत्वाद् बभूव व्रीडिता भृशम् ॥ २९
काचित् कान्तार्पितं सुभ्रः कान्तपीतावशेषितम् ।
सविशेषरसं पानं पपौ मन्मथवर्धनम् ॥ ३०
आपानगोष्ठीषु तथा तासां स नरपुङ्गवः ।
शुश्राव विविधं गीतं तन्त्रीस्वरविमिश्रितम् ॥ ३१
प्रदोषसमये ताश्च देवदेवं जनार्दनम् ।
राजन् सदोपनृत्यन्ति नानावाद्यपुरःसराः ॥ ३२
याममात्रे गते रात्रौ विनिर्गत्य गुहामुखात् ।
आवसन् संयुताः कान्तैः परर्थिरचितां गुहाम् ॥ ३३
नानागन्धान्वितलतां नानागन्धसुगन्धिनीम् ।
नानाविचित्रशयनां कुसुमोत्करमण्डिताम् ॥ ३४
एवमप्सरसां पश्यन् क्रीडितानि स पर्वते ।
तपस्तेषे महाराजन् केशवार्पितमानसः ॥ ३५
तमूचुर्नपतिं गत्वा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
राजन् स्वर्गोपमं देशमिमं प्राप्नोऽस्यरिदम् ॥ ३६
वयं हि ते प्रदास्यामो मनसः काङ्क्षितान् वरान् ।
तानादाय गृहं गच्छ तिष्ठेह यदि वा पुनः ॥ ३७

राजोवाच

अमोघदर्शनाः सर्वे भवन्तस्वमितौजसः ।
वरं वितरताद्यैव प्रसादं मधुसूदनात् ॥ ३८

जानेपर जब वह गिर पड़ा, तब वह बड़ी देरतक हँसती रही। इस प्रकार राजाने स्थानसे निवृत्त हुई सभी देव-देवियों एवं गन्धर्व-अप्सराओंद्वारा भगवान् जनार्दनको पूजित होते हुए देखा ॥ ९—२५ ॥

राजन्! वे अप्सराएँ सदा प्रदोषकालमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दनके समक्ष नाना प्रकारके बाजोंके साथ नृत्य करती थीं। एक पहर रात बीत जानेपर वे गुफाके मुखद्वारसे बाहर निकलकर अपने पतियोंके साथ ऐसी सजी-सजायी गुफामें निवास करती थीं, जिसपर अनेकों प्रकारके गन्धोंवाली लताएँ फैली हुई थीं, जिसमेंसे विभिन्न प्रकारकी सुगन्ध निकल रही थी, जो पुष्पसमूहसे सुशोभित थी तथा जिसमें अनेकों विचित्र शब्दाएँ बिछी थीं। महाराज! इस प्रकार उस पर्वतपर अप्सराओंकी क्रीडाका अवलोकन करते हुए राजा पुरुरवा भगवान् केशवमें मनको एकाग्र करके तपस्या करते रहे। एक दिन यूथ-के-यूथ गन्धर्व और अप्सराएँ राजाके निकट जाकर उनसे बोलीं—‘शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश! (बड़े सौभाग्यसे) आप इस स्वर्गतुल्य देशमें आ गये हैं, अतः हमलोग आपको मनोऽभिलिष्ट वर प्रदान करेंगी। उन्हें ग्रहणकर यदि आपकी इच्छा हो तो घर चले जाइये अथवा यहाँ रहिये’ ॥ २६—३७ ॥

राजाने कहा—गन्धर्वों एवं अप्सराओं! आपलोग अमित तेजस्वी हैं, इससे आपलोगोंका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता, इसलिये आपलोग आज ही मुझे ऐसा वरदान दें, जिससे भगवान् मधुसूदनकी कृपा प्राप्त हो जाय। यह

एवमस्त्वित्यथोक्तस्तैः स तु राजा पुरुरवाः।
 तत्रोवास सुखी मासं पूजयानो जनार्दनम्॥ ३९
 प्रिय एव सदैवासीद् गन्धर्वाप्सरसां नृपः।
 तुतोष स जनो राज्ञस्तस्यालौल्येन कर्मणा॥ ४०
 मासस्य मध्ये स नृपः प्रविष्ट-

स्तदाश्रमं रत्नसहस्रचित्रम्।
 तोयाशनस्तत्र ह्युवास मासं
 यावत्सितान्तो नृप फाल्गुनस्य॥ ४१
 फाल्गुनामलपक्षान्ते राजा स्वप्ने पुरुरवाः।
 तस्यैव देवदेवस्य श्रुतवान् गदितं शुभम्॥ ४२
 रात्र्यामस्यां व्यतीतायामत्रिणा त्वं समेष्यसि।
 तेन राजन् समागम्य कृतकृत्यो भविष्यसि॥ ४३
 स्वप्नमेवं स राजर्षिर्दृष्ट्वा देवेन्द्रविक्रमः।
 प्रत्यूषकाले विधिवत् स्नातः स प्रयतेन्द्रियः॥ ४४
 कृतकृत्यो यथाकामं पूजयित्वा जनार्दनम्।
 ददर्शात्रिं मुनिं राजा प्रत्यक्षं तपसां निधिम्॥ ४५
 स्वप्नं तु देवदेवस्य न्यवेदयत धार्मिकः।
 ततः शुश्राव वचनं देवतानां समीरितम्॥ ४६
 एवमेतन्महीपाल नात्र कार्या विचारणा।
 एवं प्रसादं सम्प्राप्य देवदेवाज्जनार्दनात्॥ ४७
 कृतदेवार्चनो राजा तथा हुतहुताशनः।
 सर्वान् कामानवास्तोऽसौ वरदानेन केशवात्॥ ४८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ऐलाश्रमवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनमें ऐलाश्रमवर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२० ॥

सुनकर वे 'एवमस्तु—ऐसा ही होगा'—ऐसा कहकर वहाँसे चले गये। तत्पश्चात् राजा पुरुरवा वहाँ एक मासतक भगवान् जनार्दनकी पूजा करते हुए सुखपूर्वक निवास करते रहे। वे सदा गन्धर्वों एवं अप्सराओंके प्रेमपात्र बने रहे। वे लोग राजाके निर्लोभ कर्मसे परम संतुष्ट थे। राजन्! उस मासके बीचमें ही राजा पुरुरवाने हजारों रत्नोंसे चित्रित उस आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ वे एक मासतक केवल जल पीकर तबतक निवास करते रहे, जबतक फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथि नहीं आ गयी। राजा पुरुरवाने फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथिकी रातमें स्वप्नमें उन्हीं देवाधिदेव भगवान् विष्णुद्वारा कहे जाते हुए इस प्रकारके मङ्गलमय शब्दोंको सुना—'राजन्! इस रात्रिके व्यतीत हो जानेपर अत्रिसे तुम्हारी भेट होगी और उनसे मिलकर तुम कृतकृत्य हो जाओगे। देवराजके समान पराक्रमी राजर्षि पुरुरवाको जब इस प्रकारका स्वप्न दीख पड़ा, तब उन्होंने प्रातःकाल उठकर इन्द्रियोंको संयत रखते हुए विधिपूर्वक स्नान किया और इच्छानुसार भगवान् जनार्दनकी पूजा की। तत्पश्चात् उन्हें तपोधन महर्षि अत्रिका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ, जिससे वे कृतकृत्य हो गये। तब धर्मात्मा राजाने महर्षि अत्रिसे देवाधिदेव भगवान्द्वारा दिखाये गये स्वप्नके वृत्तान्तको कह सुनाया। उसी समय उन्होंने देवताओंद्वारा कहे हुए इस वचनको फिर सुना—'महीपाल! यह ऐसा ही होगा, इसमें तुम्हें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी कृपा प्राप्तकर राजाने देवार्चन किया और अग्रिमें आहुतियाँ डालीं। इस तरह भगवान् केशवके वरदानसे उनकी सारी कामनाएँ पूरी हो गयीं ॥ ३८—४८ ॥

एक सौ इककीसवाँ अध्याय

कैलास पर्वतका वर्णन, गङ्गाकी सात धाराओंका वृत्तान्त तथा जम्बूद्वीपका विवरण

सूत उवाच

तस्याश्रमस्योत्तरतस्त्रिपुरारिनिषेवितः ।
नानारत्नमयैः शृङ्गैः कल्पद्रुमसमन्वितैः ॥ १

मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः ।
तस्मिन् निवसति श्रीमान् कुबेरः सह गुह्यकैः ॥ २

अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः ।
कैलासपादसम्भूतं पुण्यं शीतजलं शुभम् ॥ ३

मन्दोदकं नाम सरः पयस्तु दधिसंनिभम् ।
तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा ॥ ४

दिव्यं च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम् ।
प्रागुत्तरेण कैलासाद् दिव्यं सौगच्छिकं गिरिम् ॥ ५

सर्वधातुमयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति ।
चन्द्रप्रभो नाम गिरिः यः शुभ्रो रत्नसंनिभः ॥ ६

तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम् ।
तस्मात् प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदिका शुभा ॥ ७

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्छैत्ररथं शुभम् ।
तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभ्रदः सहानुगः ॥ ८

यक्षसेनापतिः शूरो गुह्यकैः परिवारितः ।
पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदिका शुभा ॥ ९

महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टा सा महोदधिम् ।
कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वांषधिं गिरिम् ॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उस आश्रमकी उत्तर दिशामें हिमालय पर्वतके पृष्ठ-भागके मध्यमें कैलास नामक पर्वत स्थित है। उसपर त्रिपुरासुरके संहारक शंकरजी निवास करते हैं। उसके शिखर नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित हैं तथा उनपर कल्पवृक्ष शोभा पा रहे हैं। उस पर्वतपर श्रीमान् कुबेर गुह्यकोंके साथ निवास करते हैं। इस प्रकार अलकापुरीके अधीश्वर राजा कुबेर अप्सराओंद्वारा अनुगमन किये जाते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। कैलासके पाद (उपत्यका)-से एक मन्दोदक नामक सरोवर प्रकट हुआ है, जिसका जल बड़ा पवित्र, निर्मल एवं शीतल है। उसका जल दहीके समान उज्ज्वल है। उसी सरोवरसे मङ्गलमयी दिव्य मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती है। वहाँ उस नदीके तटपर नन्दन नामक दिव्य एवं महान् वन है। कैलासकी पूर्वोत्तर दिशामें चन्द्रप्रभ नामक पर्वत है, जो रत्न-सदृश चमकदार है। वह सभी प्रकारकी धातुओंसे विभूषित तथा अनेकों प्रकारकी सुगन्धसे सुवासित दिव्य सुबेल पर्वततक फैला हुआ है। उसके निकट अच्छोद (अच्छावत) नामसे विख्यात एक दिव्य सरोवर है, उससे अच्छोदिका (अच्छोदा) नामकी कल्याणमयी दिव्य नदी उद्भूत हुई है। उस नदीके तटपर चैत्ररथ नामक दिव्य एवं सुन्दर महान् वन है। उस पर्वतपर शूरवीर यक्ष-सेनापति मणिभ्रद गुह्यकोंसे धिरे हुए अपने अनुयायियोंके साथ निवास करते हैं। पुण्यमयी मन्दाकिनी तथा कल्याणकारिणी अच्छोदा—ये दोनों नदियाँ पृथ्वी-मण्डलके मध्यभागसे प्रवाहित होती हुई महासागरमें मिली हैं ॥ १—९ १४ ॥

कैलासके दक्षिण-पूर्व दिशामें लाल वर्णवाला हेमशृङ्ग नामक एक विशाल पर्वत है। वह दिव्य सुबेल पर्वततक

मनःशिलामयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति ।
लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ॥ ११
तस्य पादे महद् दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः ।
तस्मात् प्रभवते पुण्यो लौहित्यश्च नदो महान् ॥ १२
दिव्यारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महद् वनम् ।
तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षो मणिधरो वशी ॥ १३
सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः ।
कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्यानौषधीगिरिः ॥ १४
ककुद्याति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्यिनः ।
तदञ्जनं त्रैककुदं शैलं त्रिककुदं प्रति ॥ १५
सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः ।
तस्य पादे महद् दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम् ॥ १६
तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूलोकपावनी ।
यस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम् ॥ १७
कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतिनयो वशी ।
ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥ १८
कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिर्गिरिः ।
वरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ॥ १९
भवस्य दयितः श्रीमान् पर्वतो हैमसंनिभः ।
शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः ॥ २०
शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् ।
शृङ्गवान् सुमहादिव्यो दुर्गः शैलो महाचितः ॥ २१
तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः ।
तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ॥ २२

फैला हुआ है। उसकी कान्ति सूर्यके समान है। वह मङ्गलप्रद पर्वत सभी प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न तथा मैनशिल नामक धातुसे परिपूर्ण है। उसके पाद-प्रान्तमें एक विशाल दिव्य सरोवर है, जिसका नाम लोहित है। वह पुण्यमय लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नामक महान् नदका उदगमस्थान है। उस नदके तटपर विशोक नामक एक दिव्य एवं विस्तृत वन है। उस पर्वतपर मणिधर नामक यक्ष इन्द्रियोंको वशमें करके परम धार्मिक एवं सौम्य-स्वभाववाले गुह्यकोंके साथ निवास करता है। कैलासकी पश्चिमोत्तर दिशामें ककुदमान् नामक पर्वत है, जिसपर सभी प्रकारकी ओषधियाँ सुलभ हैं। वह अञ्जन-जैसा काला तथा तीन शिखरोंसे सुशोभित है। उस ककुदमान् पर्वतपर भगवान् रुद्रके गण ककुदमी (नन्दिकेश्वर)-की उत्पत्ति हुई है। वहीं समस्त धातुओंसे सम्पन्न वैद्युत नामक अत्यन्त महान् पर्वत है, जो त्रिककुद् पर्वततक विस्तृत है। उसके पाद-प्रान्तमें सिद्धोद्वारा सेवित एक महान् दिव्य मानस सरोवर है। उस सरोवरसे लोकपावनी पुण्य-सलिला सरयू* निकली हुई हैं, जिनके तटपर (बरुणका) वैभ्राज नामक सुप्रसिद्ध दिव्य वन है। उस वनमें प्रहेतिका पुत्र ब्रह्मधाता नामक राक्षस निवास करता है। वह जितेन्द्रिय, अनन्तपराक्रमी और कुबेरका अनुचर है ॥ १०—१८ ॥

कैलासकी पश्चिम दिशामें सम्पूर्ण ओषधियोंसे सम्पन्न वरुण नामक दिव्य पर्वत है। वह पर्वतश्रेष्ठ सुवर्ण आदि धातुओंसे विभूषित, भगवान् शंकरका प्रियपात्र, शोभाशाली, स्वर्णसदृश चमकीला और स्वर्णमयी दिव्य शिलाओंसे सम्पन्न है। वह अपने स्वर्णसरीखे चमकदार सैकड़ों शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ-सा दीख पड़ता है। वहीं शृङ्गवान् नामका एक महान् दिव्य पर्वत है, जो समृद्धिशाली एवं दुर्गम है। उस पर्वतपर धूम्रलोचन भगवान् शिव निवास करते हैं। उस पर्वतके पाद-प्रान्तमें शैलोद नामक सरोवर है। उसीसे मङ्गलमयी पुण्यतोया शैलोदका नामकी नदी प्रवाहित होती है। उसे चक्षुषी

* इस अध्यायका हिमालयसे सम्बद्ध भौगोलिक विवरण बड़े महत्वका है और यह वर्णन बहुत कुछ कालिकापुराणसे मिलता है।

तस्मात् प्रभवते पुण्या नदी शैलोदका शुभा ।
 सा चक्षुषी तयोर्मध्ये प्रविष्टा पश्चिमोदधिम् ॥ २३
 अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधो गिरिः ।
 गौरं तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति ॥ २४
 हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः ।
 तस्य पादे महद् दिव्यं सरः काञ्छनबालुकम् ॥ २५
 रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ।
 गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास बहुलाः समाः ॥ २६
 दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गङ्गातोयाप्लुतास्थिकाः ।
 तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ॥ २७
 सोमपादात् प्रसूता सा समधा प्रविभज्यते ।
 यूपा मणिमयास्तत्र विमानाश्रि हिरण्मया ॥ २८
 तत्रेष्वा क्रतुभिः सिद्धः शक्रः सुरगणैः सह ।
 दिव्यश्छायापथस्तत्र नक्षत्राणां तु मण्डलम् ॥ २९
 दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा ।
 अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वा भुवं गता ॥ ३०
 भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया ।
 तस्या ये बिन्दवः केचित् क्रुद्धायाः पतिता भुवि ॥ ३१
 कृतं तु तैर्बहुसरस्ततो बिन्दुसरः स्मृतम् ।
 ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा रुषा ॥ ३२
 ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ।
 भित्त्वा विशामि पातालं स्वोतसा गृह्णा शङ्करम् ॥ ३३
 अथावलेपं तं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धस्तु शङ्करः ।
 तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषु तां नदीम् ॥ ३४
 एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः ।
 धर्मनीसंततं क्षीणं क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम् ॥ ३५

भी कहते हैं। वह उन दोनों पर्वतोंके बीचसे बहती हुई पश्चिम-सागरमें जा मिली है। कैलासकी उत्तर दिशामें हिरण्यशृङ्ग नामका अत्यन्त विशाल पर्वत है, जो हरितालसे परिपूर्ण पर्वतश्रेष्ठ गौरतक फैला हुआ है। इस कल्याणकारी पर्वतपर दिव्य ओषधियाँ प्राप्त होती हैं। इसके पादप्रान्तमें बिन्दुसर नामक अत्यन्त रमणीय दिव्य सरोवर है, जो सुवर्णके समान बालुकासे युक्त है। यहाँपर राजर्षि भगीरथने 'मेरे पूर्वज गङ्गाजलसे हड्डियोंके अभिषिक्त हो जानेपर स्वर्गलोकको चले जायँ, इस भावनासे भावित होकर गङ्गाको भूतलपर लानेके लिये बहुत वर्षोंतक (तप करते हुए) निवास किया था। इसलिये त्रिपथगा* गङ्गादेवी सर्वप्रथम वहीं प्रतिष्ठित हुई थीं और सोम पर्वतके पादसे निकलकर सात भागोंमें विभक्त हो गयीं। उस सरोवरके तटपर अनेकों मणिमय यज्ञस्तम्भ तथा स्वर्णमय विमान शोभा पा रहे थे। वहाँ देवताओंके साथ इन्द्रने यज्ञोंका अनुष्ठान कर सिद्धि लाभ किया था। वहाँ दिव्य छायापथ तथा नक्षत्रोंका मण्डल विद्यमान है। वहाँ त्रिपथगा गङ्गादेवी रातमें चमकती हुई दीख पड़ती हैं ॥ १९—२९ ३३ ॥

गङ्गादेवी स्वर्गलोक और अन्तरिक्षलोकको पवित्र कर भूतलपर आयीं और वे शिवजीके मस्तकपर गिरीं। तब शिवजीने अपनी योगमायाके बलसे उन्हें वहीं रोक दिया। (इससे गङ्गादेवी कुद्ध हो गयीं।) उस समय उन कुपित हुई गङ्गादेवीकी जो कुछ बूँदें पृथ्वीपर गिरीं, उनसे 'बहुसर' नामक एक सरोवर बन गया, वही आगे चलकर 'बिन्दुसर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस समय शिवजीके सहसा रोक लिये जानेपर गङ्गादेवी कुद्ध होकर ऐसा विचार करने लगीं कि मैं अपनी धाराके साथ शङ्करको बहाती हुई पृथ्वीको फोड़कर पातालमें प्रवेश कर जाऊँगी। जब शङ्करजीको गङ्गाकी यह कुचेष्टा और क्रूर अभिप्राय ज्ञात हुआ, तब वे उसे गङ्गाका अभिमान समझकर कुद्ध हो गये और उस नदी-रूपिणी गङ्गाको अपने अङ्गोंमें ही लीन कर लेनेका विचार करने लगे; परंतु ठीक इसी समय राजा भगीरथ, जिनकी इन्द्रियाँ भूखसे व्याकुल हो गयी थीं तथा जिनके शरीरमें नसेंमात्र दीख रही थीं, शिवजीके सम्मुख आ गये।

* वाल्मी० रामायण (१। ४४। ६)-के अनुसार गङ्गा भू, पाताल, स्वर्ग—इन तीन पथों—मार्गोंको भावित—पवित्र करनेके कारण 'त्रिपथगा' कही जाती हैं—'त्रीन् पथो भावयतीति तस्मात्त्रिपथगा स्मृता।'

अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थे पूर्वमेव तु।
बुद्ध्वास्य वरदानं तु ततः कोपं न्ययच्छत ॥ ३६

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा यदुक्तं धारयन् नदीम्।
ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा ॥ ३७

नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः।
ततो विसर्जयामास सप्त स्रोतांसि गङ्गया ॥ ३८

त्रीणि प्राचीभिमुखं प्रतीचीं त्रीण्यथैव तु।
स्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्त सप्तधा ॥ ३९

नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगाः।
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्वस्ता वै प्रतीच्यगाः ॥ ४०

सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम्।
तस्माद् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ४१

सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्ष तु हिमसाह्रयम्।
प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्धवाः ॥ ४२

तान् देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः।
सशैलान् कुकुरान् रौधान् बर्बरान् यवनान् खसान् ॥ ४३

पुलिन्दांश्च कुलत्थांश्च अङ्गलोक्यान् वरांश्च यान्।
कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ४४

अथ वीरमरुंश्चैव कालिकांश्चैव शूलिकान्।
तुषारान् बर्बरान् कारान् पह्वान् पारदाञ्छकान् ॥ ४५

एताञ्जनपदांश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिं गता।
दरदोर्जगुडांश्चैव गान्धारानौरसान् कुहून् ॥ ४६

शिवपौरानिन्द्रमरुन् वसतीन् समतेजसम्।
सैन्धवानुर्वशान् बर्बान् कुपथान् भीमरोमकान् ॥ ४७

शुनामुखांश्चोर्दमरुन् सिन्धुरेतान् निषेवते।
गन्धर्वान् किंनरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ॥ ४८

कलापग्रामकांश्चैव तथा किम्पुरुषान् नरान्।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरुन् वै भारतानपि ॥ ४९

उन क्षीणकाय नरेशको देखकर शङ्करजी विचारमें पड़ गये कि इसने तो पहले ही इस नदीको भूतलपर लानेके लिये तपस्याद्वारा मुझे संतुष्ट कर लिया है। फिर अपने द्वारा राजाको दिये गये वरदानको यादकर उन्होंने अपने क्रोधको रोक लिया। तत्पश्चात् गङ्गा नदीको धारण करते समय ब्रह्माद्वारा कहे गये वचनोंको सुनकर तथा भगीरथकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शङ्करने अपने तेजसे रोकी हुई गङ्गा नदीको छोड़ दिया। इसके बाद गङ्गा सात धाराओंमें विभक्त होकर प्रवाहित हुई ॥ ३०—३८ ॥

त्रिपथगा गङ्गाकी तीन धाराएँ पूर्वाभिमुखी तथा तीन पश्चिमाभिमुखी प्रवाहित हुई (और सातवीं धारा स्वयं भागीरथी गङ्गा थीं)। इस प्रकार वे सात धाराओंमें विभक्त हो गयीं। उनमें पूर्व दिशामें बहनेवाली धाराओंका नाम नलिनी, ह्लादिनी और पावनी है तथा पश्चिम दिशामें प्रवाहित होनेवाली तीनों धाराएँ सीता, चक्षु और सिंधु नामसे कही गयी हैं। उनमें सातवीं धारा भगीरथके पीछे-पीछे दक्षिण दिशाकी ओर चली और दक्षिणसागरमें प्रविष्ट हो गयी, इसी कारण वह भागीरथी नामसे प्रसिद्ध हुई। ये ही सातों धाराएँ हिमवर्षको आप्लावित करती हैं। इस प्रकार ये सातों नदियाँ बिन्दुसरसे निकली हुई हैं। ये सब ओरसे उन म्लेच्छप्राय देशोंको सींचती हैं, जो पर्वतीय कुकुर, रौध्र, बर्बर, यवन, खस, पुलिन्द, कुलत्थ, अङ्गलोक्य और वर नामसे कहे जाते हैं। इस प्रकार गङ्गा हिमवान्को दो भागोंमें विभक्त कर दक्षिणसमुद्रमें प्रवेश कर गयी हैं। इसके बाद चक्षु (वंक्षु) नदी वीरमरु, कालिक, शूलिक, तुषार, बर्बर, कार, पह्व, पारद और शक—इन देशोंको आप्लावित कर समुद्रमें मिल गयी है। सिन्धु नदी दरद, उर्जगुड, गान्धार, औरस, कुहू, शिवपौर, इन्द्रमरु, वसति, सैन्धव, उर्बश, वर्ब, कुपथ, भीमरोभक, शुनामुख और उर्दमरु—इन देशोंकी सेवा करती अर्थात् इन देशोंमें बहती है। मङ्गलमयी गङ्गा गन्धर्व, किंनर, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, नाग, कलापग्रामवासी जन, किम्पुरुष, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पाञ्चाल, कौशिक मत्स्य (विराट), मगध, अङ्ग,

पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च।
सुह्योत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च ॥ ५०
एताञ्जनपदानार्थान् गङ्गा भावयते शुभा।
ततः प्रतिहता विश्वे प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ५१
ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ।
प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानपि सर्वशः ॥ ५२
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि।
केकरानेककर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥ ५३
कालञ्जरान् विकर्णांश्च कुशिकान् स्वर्गभौमकान्।
सा मण्डले समुद्रस्य तीरे भूत्वा तु सर्वशः ॥ ५४
ततस्तु नलिनी चापि प्राचीमेव दिशं ययौ।
कुपथान् प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युप्सरांस्यपि ॥ ५५
तथा खरपथान् देशान् वेत्रशङ्कपथानपि।
मध्येनोज्जानकमरून् कुथप्रावरणान् ययौ ॥ ५६
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम्।
ततस्तु पावनी प्रायात् प्राचीमाशां जवेन तु ॥ ५७
तोमरान् प्लावयन्ती च हंसमार्गान् समूहकान्।
पूर्वान् देशांश्च सेवन्ती भित्त्वा सा बहुधा गिरिम्।
कर्णप्रावरणान् प्राप्य गता साश्वमुखानपि ॥ ५८
सिक्त्वा पर्वतमेरुं सा गत्वा विद्याधरानपि।
शैमिमण्डलकोष्ठं तु सा प्रविष्टा महत्सरः ॥ ५९
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः।
उपगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः ॥ ६०
तीरे वंशौकसारायाः सुरभिर्नाम तद् वनम्।
हिरण्यशृङ्गो वसति विद्वान् कौबेरको वशी ॥ ६१
यज्ञादपेतः सुमहानमितौजाः सुविक्रमः।
तत्रागस्त्यैः परिवृता विद्वद्विद्विर्बहुराक्षसैः ॥ ६२
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः।
एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिः पर्वतवासिनाम् ॥ ६३

उत्तरसुह्य, वङ्ग और ताप्रलिप्त—इन आर्य देशोंको पवित्र करती हैं। इस प्रकार वे (हिमालयसे निकलकर) विन्ध्यपर्वतसे अवरुद्ध होकर पूर्वकी ओर आगे बढ़ती हुई दक्षिणसमुद्रमें मिल गयी हैं ॥ ३९—५१ ॥

इसी प्रकार पुण्यतोया ह्लादिनी, जो पूर्वाभिमुखी प्रवाहित होती है, उपका, निषाद, धीवर, त्रैषिक, नीलमुख, केकर, अनेककर्ण, किरात, कालंजर, विकर्ण, कुशिक और स्वर्गभौमक—इन सभी देशोंको सींचती हुई समुद्रमण्डलके तटपर पहुँचकर उसमें लीन हो गयी है। नलिनी नदी भी बिन्दुसरसे निकलकर पूर्व दिशाकी ओर प्रवाहित हुई है। वह कुपथ, इन्द्रद्युप्सर, खरपथ, वेत्र (ट) द्वीप, शङ्कपथ आदि प्रदेशोंको सींचती हुई उज्जानक (जूनागढ़) मरुके मध्यभागसे बहती हुई कुथप्रावरणकी ओर चली गयी है तथा इन्द्रद्वीपके निकट लवणसागरमें मिल गयी है। उसी (मूल) सरोवरसे पावनी नदी बड़े वेगसे पूर्व दिशाकी ओर बहती है। वह तोमर, हंसमार्ग और समूहक देशोंको सींचती हुई पूर्वी देशोंमें जा पहुँचती है। वहाँ अनेकों प्रकारसे पर्वतको विदीर्ण करके कर्णप्रावरणमें पहुँचकर अश्वमुख देशमें चली जाती है। इसके बाद मेरु पर्वतको सींचती हुई विद्याधरोंके लोकोंमें जाकर शैमिमण्डलकोष्ठ नामक महान् सरोवरमें प्रवेश कर जाती है। इनकी छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों सहायक नदियाँ भी हैं, जो पृथक्-पृथक् इन्हींमें आकर मिली हैं। इन्हींके जलको ग्रहण कर इन्द्र वर्षा करते हैं ॥ ५२—६० ॥

वंशोंकसाराके तटपर सुरभि नामक वह वन है, जिसमें जितेन्द्रिय एवं विद्वान् हिरण्यशृङ्ग निवास करता है। वह कुबेरका अनुचर, यज्ञसे विमुख, अमित तेजस्वी एवं परम पण्डिती है। वहीं अगस्त्यगोत्रीय विद्वान् ब्रह्मण्डसोंका भी निवासस्थान है। (उनकी संख्या चार है।) वे चारों कुबेरके अनुचर हैं, जो उसी हिरण्यशृङ्गके आश्रममें रहते हैं। इसी प्रकार पर्वतनिवासियोंकी सिद्धि समझनी चाहिये।

परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः ।
 हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पणां तत् सरः स्मृतम् ॥ ६४
 सरस्वती प्रभवति तस्माज्योतिष्ठती तु या ।
 अवगाढे ह्यभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ६५
 सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे ।
 यस्मादग्रे प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते ॥ ६६
 मेरोः पार्श्वात् प्रभवति हृदश्नन्दप्रभो महान् ।
 जम्बूश्चैव नदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं स्मृतम् ॥ ६७
 पयोदस्तु हृदो नीलः स शुभः पुण्डरीकवान् ।
 पुण्डरीकात् पयोदाच्च तस्मादद्वे सम्प्रसूयताम् ॥ ६८
 सरसस्तु सरस्वेतत् स्मृतमुत्तरमानसम् ।
 मृग्या च मृगकान्ता च तस्मादद्वे सम्प्रसूयताम् ॥ ६९
 हृदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः ।
 नाम्ना ते वैजया नाम द्वादशोदधिसंनिभाः ॥ ७०
 तेभ्यः शान्ती च मध्वी च द्वे नद्यौ सम्प्रसूयताम् ।
 किम्पुरुषाद्यानि यान्यष्टौ तेषु देवो न वर्षति ॥ ७१
 उद्दिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः ।
 बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च ॥ ७२
 विनिविष्टाः प्रतिदिशं निमग्ना लवणाम्बुधिम् ।
 चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्च शिलोच्चयः ॥ ७३
 उद्भायता उदीच्यां तु अवगाढा महोदधिम् ।
 चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वतः ॥ ७४
 प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम् ।
 जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः ॥ ७५
 आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति ।
 चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि संदक्षिणापथे ॥ ७६

वह धर्म, काम और अर्थके अनुसार परस्पर दुगुना फल देनेवाली होती है। हेमकूट पर्वतके पृष्ठभागपर जो सर्पोंका सरोवर बतलाया जाता है, उसीसे सरस्वती और ज्योतिष्ठती नामकी दो नदियाँ निकली हैं। वे क्रमशः पूर्व और पश्चिम समुद्रमें जाकर मिली हैं। पर्वतश्रेष्ठ निषधपर विष्णुपद नामक सरोवर है, जो उसी पर्वतके अग्रभागसे निकला हुआ है। वे दोनों (नाग और विष्णुपद) सरोवर गन्धर्वोंके अनुकूल हैं। मेरुके पार्श्वभागसे चन्द्रप्रभ नामक महान् सरोवर तथा पुण्यसलिला जम्बूनदी निकलती है। जम्बूनदीमें जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है। वहीं पयोद और पुण्डरीकवान् नामक दो सरोवर और हैं, जिनका जल क्रमशः नील और श्वेत है। इन पुण्डरीक और पयोद सरोवरोंसे दो सरोवर और प्रकट हुए हैं। उनमें एक सरोवरसे निकला हुआ सर उत्तरमानस नामसे प्रसिद्ध है। उससे मृग्या और मृगकान्ता नामकी दो नदियाँ निकली हैं। कुरुदेशमें सागरके समान अगाध एवं विस्तृत बारह हृद हैं, जो कमलों और मछलियोंसे भरे रहते हैं, वे 'वैजय' नामसे विख्यात हैं। उनसे शान्ती और मध्वी नामकी दो नदियाँ निकली हैं। किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें इन्द्रदेव वर्षा नहीं करते, अपितु वहाँकी बड़ी-बड़ी नदियाँ ही अनोत्पादक जलको प्रवाहित करती हैं ॥ ६१—७१ १/२ ॥

बलाहक, ऋषभ, चक्र और मैनाक—ये चारों पर्वत क्रमशः चारों दिशाओंमें लवणसागरतक फैले हुए हैं। चन्द्रकान्त, द्रोण तथा सुमहान्—इन पर्वतोंका विस्तार उत्तर दिशामें महासागरतक है। चक्र, बधिरक और नारद—ये पर्वत पश्चिम दिशामें फैले हुए हैं। इनका विस्तार महासागरतक है। जीमूत, द्रावण, मैनाक और चन्द्र—ये महापर्वत दक्षिण दिशामें दक्षिण समुद्रतक विस्तृत हैं। दक्षिणापथके समुद्रमें चक्र और मैनाक पर्वतके मध्यमें संवर्तक नामक अग्निका निवास है। वह उस सागरके जलको पीता है। समुद्रमें निवास करनेवाला और्व नामक अग्नि है,

तत्र संवर्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम्।
अग्निः समुद्रवासस्तु और्वोऽसौ वडवामुखः ॥ ७७
इत्येते पर्वताविष्टाश्वत्वारो लवणोदधिम्।
छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात् ॥ ७८
तेषां तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः।
ते भारतस्य वर्षस्य भेदा येन प्रकीर्तिः ॥ ७९
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः।
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ॥ ८०
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः।
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भागशः ॥ ८१
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै।
इत्येतद् धारयद् विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता ॥ ८२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनमें जम्बूद्वीपवर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२१ ॥

एक सौ बाईसवाँ अध्याय

शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप और शाल्मलद्वीपका वर्णनै

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य वक्ष्यामि यथावदिह निश्चयम्।
कथ्यमानं निबोधध्वं शाकं द्वीपं द्विजोत्तमाः ॥ १
जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः।
विस्तारात् त्रिगुणश्चापि परिणाहः समन्ततः ॥ २
तेनावृतः समुद्रोऽयं द्वीपेन लवणोदधिः।
तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च मियते जनः ॥ ३

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! अब मैं शाकद्वीपका निश्चितरूपसे यथार्थ वर्णन कर रहा हूँ। आपलोग मेरे कथनानुसार शाकद्वीपके विषयमें जानकारी प्राप्त करें। शाकद्वीपका विस्तार जम्बूद्वीपके विस्तारसे दुगुना है और चारों ओरसे उसका फैलाव विस्तारसे भी तिगुना है। उस द्वीपसे यह लवणसागर धिरा हुआ है। शाकद्वीपमें अनेकों पुण्यमय जनपद हैं। वहाँके निवासी लम्बी आयु भोग कर मरते हैं। भला, उन क्षमाशील एवं तेजस्वी जनोंके प्रति दुर्भिक्षकी सम्भावना कहाँसे हो सकती है।

१. आर्यभट्टीय आदिके अनुसार वडवामुख दक्षिणी ध्रुवके पास एक स्थान है, जिस मार्गसे लोग पातालमें प्रवेश करते थे। बडवाग्निको बडवाचक्र, बडवाभुग; हुत् आदि भी कहा गया है। महावीरचरितमें इसके रूप आदिका भी वर्णन है।

२. प्रायः सभी पुराणोंके भुवनकोश-प्रकरणमें इन सभी द्वीपोंका वर्णन है, पर मत्स्यपुराणसे उनके नामक्रमादिमें कुछ भेद है। W. Kirfel के भुवनकोश—(Das Pnraha Von, Weltge-banden P, III.F. Bharatvarsha 1931) ग्रन्थमें इन सबका एकत्र सूक्ष्म तुलनात्मक अध्ययन विशेष महत्वका है।

कुत एव च दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुतेष्विह ।
 तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषिताः ॥ ४
 शाकद्वीपादिषु त्वेषु सप्त सप्त नगास्त्रिषु ।
 ऋज्ञवायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वताः ॥ ५
 रत्नाकराद्रिनामानः सानुमन्तो महाचिताः ।
 समोदिताः प्रतिदिशं द्वीपविस्तारमानतः ॥ ६
 उभयत्रावगाढौ च लवणक्षीरसागरौ ।
 शाकद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त दिव्यान् महाचलान् ॥ ७
 देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते ।
 प्रागायतः स सौवर्ण उदयो नाम पर्वतः ॥ ८
 तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्त्यपयान्ति च ।
 तस्यापरेण सुमहाङ्गलधारो महागिरिः ॥ ९
 स वै चन्द्रः समाख्यातः सर्वोषधिसमन्वितः ।
 तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ॥ १०
 नारदो नाम चैवोक्तो दुर्गशैलो महाचितः ।
 तत्राचलौ समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ ॥ ११
 तस्यापरेण सुमहाङ्गयामो नाम महागिरिः ।
 यत्र श्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल ॥ १२
 स एव दुन्दुभिनामि श्यामपर्वतसंनिभः ।
 शब्दमृत्युः पुरा तस्मिन् दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः ॥ १३
 रत्नमालान्तरमयः शाल्मलश्चान्तरालकृत् ।
 तस्यापरेण रजतो महानस्तो गिरिः स्मृतः ॥ १४
 स वै सोमक इत्युक्तो देवैर्यत्रामृतं पुरा ।
 सम्भृतं च हतं चैव मातुरर्थं गरुत्पत्ता ॥ १५
 तस्यापरे चाम्बिकेयः सुमनाशैव स स्मृतः ।
 हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिङ्गैले निषूदितः ॥ १६
 आम्बिकेयात् परो रम्यः सर्वोषधिनिषेवितः ।
 विभ्राजस्तु समाख्यातः स्फटिकस्तु महान् गिरिः ॥ १७

इस द्वीपमें भी मणियोंसे विभूषित श्वेत रंगके सात पर्वत हैं । शाकद्वीप आदि तीन द्वीपोंमें सात-सात पर्वत हैं, जो चारों दिशाओंमें सीधे फैले हुए हैं । ये ही वहाँ वर्षपर्वत कहलाते हैं । ये रत्नाकराद्रि नामवाले वर्षपर्वत ऊँचे शिखरोंसे युक्त तथा वृक्षोंसे सम्पन्न हैं । ये द्वीप विस्तारके परिमाणकी समानतामें चारों दिशाओंमें फैले हुए हैं और एक ओर क्षीरसागरतक तथा दूसरी ओर लवणसागरतक पहुँच गये हैं । अब मैं शाकद्वीपके सातों दिव्य महापर्वतोंका वर्णन कर रहा हूँ । उनमें पहला पर्वत मेरु कहा जाता है, जो देवो, ऋषियों और गन्धर्वोंसे सुसेवित है । वह स्वर्णमय पर्वत पूर्व दिशामें फैला हुआ है । उसका दूसरा नाम 'उदयगिरि' है । वहाँ मेघगण वृष्टि करनेके लिये आते हैं और (जल बरसाकर) चले जाते हैं । उसके पार्श्वभागमें सम्पूर्ण ओषधियोंसे सम्पन्न जलधार नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है । वह चन्द्र नामसे भी विख्यात है । उसी पर्वतसे इन्द्र नित्य अधिक-से-अधिक जल ग्रहण करते हैं ॥ १—१० ॥

वहाँ महान् समृद्धिशाली नारद नामक पर्वत है, जिसे दुर्गशैल भी कहते हैं । पूर्वकालमें ये दोनों नारद और दुर्गशैल पर्वत यहाँ उत्पन्न हुए थे । उसके बाद श्याम नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है, जहाँ पूर्वकालमें ये सारी प्रजाएँ श्यामलताको प्राप्त हो गयी थीं । श्यामपर्वतके सदृश काले रंगवाला वहाँ दुन्दुभि पर्वत भी है, जिसपर प्राचीनकालमें देवताओंद्वारा दुन्दुभिके बजाये जानेपर उसके शब्दसे ही (शत्रुओंकी) मृत्यु हो जाती थी । इसके अन्तःप्रदेशमें रत्नोंके समूह भरे पड़े हैं और यह सेमलके वृक्षोंसे सुशोभित है । उसके बाद महान् अस्ताचल है, जो रजतमय है । उसे सोमक भी कहते हैं । इसी पर्वतपर पूर्वकालमें गरुड़ने अपनी माताके हितार्थ देवताओंद्वारा संचित किये गये अमृतका अपहरण किया था । उसके बाद आम्बिकेय नामक महापर्वत है, जिसे सुमना भी कहते हैं । इसी पर्वतपर वराहभगवान्ने हिरण्याक्षका वध किया था । आम्बिकेय पर्वतके बाद सम्पूर्ण ओषधियोंसे परिपूर्ण एवं स्फटिककी शिलाओंसे व्याप्त परम रमणीय महान् पर्वत है, जो विभ्राज नामसे विख्यात है । इससे अग्नि विशेष उद्दीप होती है, इसी

यस्माद् विभ्राजते वह्निर्विभ्राजस्तेन स स्मृतः ।
 सैवेह केशवेत्युक्तो यतो वायुः प्रवाति च ॥ १८
 तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि पर्वतानां द्विजोत्तमाः ।
 शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्वशः ॥ १९
 द्विनामान्येव वर्षाणि यथैव गिरयस्तथा ।
 उदयस्योदयं वर्ष जलधारेति विश्रुतम् ॥ २०
 नाम्ना गतभ्यं नाम वर्ष तत् प्रथमं स्मृतम् ।
 द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति स्मृतम् ॥ २१
 तदेव शैशिरं नाम वर्ष तत् परिकीर्तितम् ।
 नारदस्य च कौमारं तदेव च सुखोदयम् ॥ २२
 श्यामपर्वतवर्ष तदनीचक्रमिति स्मृतम् ।
 आनन्दकमिति प्रोक्तं तदेव मुनिभिः शुभम् ॥ २३
 सोमकस्य शुभं वर्ष विज्ञेयं कुसुमोत्करम् ।
 तदेवासितमित्युक्तं वर्ष सोमकसंज्ञितम् ॥ २४
 आम्बिकेयस्य मैनाकं क्षेमकं चैव तत्स्मृतम् ।
 तदेव ध्रुवमित्युक्तं वर्ष विभ्राजसंज्ञितम् ॥ २५
 द्वीपस्य परिणाहं च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च ।
 जम्बूद्वीपेन संख्यातं तस्य मध्ये वनस्पतिम् ॥ २६
 शाको नाम महावृक्षः प्रजास्तस्य महानुगाः ।
 एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥ २७
 विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह ।
 तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्णसमन्विताः ॥ २८
 तेषु नद्यश्च सैव प्रतिवर्ष समुद्रगाः ।
 द्विनाम्ना चैव ताः सर्वा गङ्गाः सप्तविधाः स्मृताः ॥ २९
 प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला शुभा ।
 अनुतसा च नामैषा नदी सम्परिकीर्तिता ॥ ३०
 सुकुमारी तपःसिद्धा द्वितीया नामतः सती ।
 नन्दा च पावनी चैव तृतीया परिकीर्तिता ॥ ३१
 शिविका च चतुर्थी स्याद् द्विविधा च पुनः स्मृता ।
 इक्षुश्च पञ्चमी ज्ञेया तथैव च पुनः कुहूः ॥ ३२

कारण इसे विभ्राज कहते हैं। इसीको 'केशव' भी कहते हैं। यहींसे वायुकी गति प्रारम्भ होती है ॥ ११—१८ ॥
 द्विजवरो! अब मैं उन पर्वतोंके वर्षोंका यथार्थरूपसे नामनिर्देशानुसार आनुपूर्वी वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। जिस प्रकार वहाँके पर्वत दो नामवाले हैं, उसी तरह वर्षोंके भी दो-दो नाम हैं। उदयपर्वतके वर्ष उदय और जलधार नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें जो पहला उदय वर्ष है, वह गतभय नामसे अभिहित होता है। दूसरे जलधार पर्वतके वर्षको सुकुमार कहते हैं। वही शैशिर वर्षके नामसे भी विख्यात है। नारदपर्वतके वर्षका नाम कौमार है। उसीको सुखोदय भी कहते हैं। श्यामपर्वतका वर्ष अनीचक्र नामसे कहा जाता है। उसी मङ्गलमय वर्षको मुनिगण आनन्दक नामसे पुकारते हैं। सोमक पर्वतके कल्याणमय वर्षको कुसुमोत्कर नामसे जानना चाहिये। उसी सोमक नामवाले वर्षको असित भी कहा जाता है। आम्बिकेय पर्वतके वर्ष मैनाक और क्षेमक नामसे प्रसिद्ध हैं। (सातवें केसर पर्वतके वर्षका नाम) विभ्राज है। वही ध्रुव नामसे भी कहा जाता है ॥ १९—२५ ॥

शाकद्वीपका विस्तार तथा लम्बाई-चौड़ाई जम्बूद्वीपके परिमाणसे अधिक है। (यह ऊपर बतला चुके हैं।) इस द्वीपके मध्यभागमें शाक नामका एक महान् वनस्पति है। इस द्वीपकी प्रजाएँ महापुरुषोंका अनुगमन करनेवाली हैं। इन वर्षोंमें देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण विहार करते हैं और उनकी रमणीयता देखते हुए प्रजाओंके साथ क्रीड़ा करते हैं। इस द्वीपमें चारों वर्णोंकी प्रजाओंसे सम्पन्न सुन्दर जनपद हैं। इनमें प्रत्येक वर्षमें समुद्रगामिनी सात नदियाँ भी हैं और वे सभी दो नामोंवाली हैं। केवल गङ्गा सात प्रकारकी बतलायी जाती हैं। मङ्गलमयी एवं पुण्यसलिला प्रथमा गङ्गा सुकुमारी नामसे कही जाती है। यही नदी अनुतसा नामसे भी प्रसिद्ध है। दूसरी गङ्गा तपःसिद्धा सुकुमारी हैं। ये ही सती नामसे भी प्रसिद्ध हैं। तीसरी गङ्गा नन्दा और पावनी नामसे विख्यात हैं। चौथी गङ्गा शिविका हैं, इन्हींको द्विविधा भी कहा जाता है। इक्षुको पाँचवीं गङ्गा समझना चाहिये। उसी प्रकार पुनः इन्हें कुहू भी कहते हैं।

वेणुका चामृता चैव षष्ठी सम्परिकीर्तिता ।
 सुकृता च गभस्ती च सप्तमी परिकीर्तिता ॥ ३३
 एताः सप्त महाभागाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः ।
 भावयन्ति जनं सर्वं शाकद्वीपनिवासिनम् ॥ ३४
 अभिगच्छन्ति ताश्शान्या नदनद्यः सरांसि च ।
 बहूदकपरिस्त्रावा यतो वर्षति वासवः ॥ ३५
 तासां तु नामधेयानि परिमाणं तथैव च ।
 न शक्यं परिसंख्यातुं पुण्यास्ताः सरिदुत्तमाः ॥ ३६
 ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ।
 एते शान्तमयाः प्रोक्ताः प्रमोदा ये च वै शिवाः ॥ ३७
 आनन्दाश्च सुखाश्चैव क्षेमकाश्च नवैः सह ।
 वर्णाश्रमाचारयुता देशास्ते सप्त विश्रुताः ॥ ३८
 आरोग्या बलिनश्चैव सर्वे मरणवर्जिताः ।
 अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी पुनः ॥ ३९
 न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित् ।
 त्रेतायुगसमः कालः सदा तत्र प्रवर्तते ॥ ४०
 शाकद्वीपादिषु ज्ञेयं पञ्चस्वेतेषु सर्वशः ।
 देशस्य तु विचारेण कालः स्वाभाविकः स्मृतः ॥ ४१
 न तेषु सङ्करः कश्चिद् वर्णाश्रमकृतः क्वचित् ।
 धर्मस्य चाव्यभीचारादेकान्तसुखिनः प्रजाः ॥ ४२
 न तेषु माया लोभो वा ईर्ष्यासूया भयं कुतः ।
 विपर्ययो न तेष्वस्ति तद्वै स्वाभाविकं स्मृतम् ॥ ४३
 कालो नैव च तेष्वस्ति न दण्डो न च दाण्डकः ।
 स्वधर्मेण च धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ ४४
 परिमण्डलस्तु सुमहान् द्वीपो वै कुशसंज्ञकः ।
 नदीजलैः परिवृतः पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः ॥ ४५
 सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्वुमभूषितैः ।
 अन्यैश्च विविधाकारै रम्यर्जनपदैस्तथा ॥ ४६

छठी गङ्गा वेणुका और अमृता नामसे प्रसिद्ध हैं। सातवें गङ्गाको सुकृता और गभस्ती कहा जाता है। कल्याणमय जलसे परिपूर्ण एवं महान् भाग्यशालिनी ये सातों गङ्गाएँ शाकद्वीपके प्रत्येक वर्षके सभी प्राणियोंको पवित्र करती हैं। दूसरे बड़े-बड़े नद, नदियाँ और सरोवर भी इन्हीं गङ्गाकी धाराओंमें आकर मिलते हैं, जिसके कारण ये सभी अथाह जल बहानेवाली हैं। इन्हींसे जल ग्रहण कर इन्द्र वर्षा करते हैं॥ २६—३५॥

उन सहायक नदियोंके नाम और परिमाणकी गणना नहीं की जा सकती। ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पुण्यतोया हैं। इनके तटपर निवास करनेवाले जनपदवासी सदा हर्षपूर्वक इनका जल पीते हैं। उनके तटपर स्थित शान्तमय, प्रमोद, शिव, आनन्द, सुख, क्षेमक और नव—ये सात विश्व-विख्यात देश हैं। यहाँ वर्ण और आश्रमके धर्मोंका सुचारूरूपसे पालन होता है। यहाँके सभी निवासी नीरोग, बलवान् और मृत्युसे रहित होते हैं। उनमें अवसर्पिणी (अधोगामिनी) तथा उत्सर्पिणी (ऊर्ध्वगामिनी) क्रिया नहीं होती है। वहाँ कहीं भी चारों युगोंद्वारा की गयी युगव्यवस्था नहीं है। वहाँ सदा त्रेतायुगके समान ही समय वर्तमान रहता है। शाकद्वीप आदि इन पाँचों द्वीपोंमें ऐसी ही दशा जाननी चाहिये; क्योंकि देशके विचारसे ही कालकी स्वाभाविक गति जानी जाती है। उन द्वीपोंमें कहीं भी वर्ण एवं आश्रमजन्य संकर नहीं पाया जाता। इस प्रकार धर्मका परित्याग न करनेके कारण वहाँकी प्रजा एकान्त सुखका अनुभव करती है। उनमें न तो माया (छल-कपट) है, न लोभ, तब भला ईर्ष्या, असूया और भय कैसे हो सकते हैं? उनमें धर्मका विपर्यय भी नहीं देखा जाता। धर्म तो उनके लिये स्वाभाविक कर्म माना गया है। उनपर कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वहाँ न तो दण्डका विधान है, न कोई दण्ड देनेवाला ही है। वहाँके निवासी धर्मके ज्ञाता हैं, अतः वे स्वधर्मानुसार परस्पर एक-दूसरेकी रक्षा करते रहते हैं॥ ३६—४४॥

कुश नामक द्वीप अत्यन्त विशाल मण्डलवाला है। उसके चारों ओर नदियोंका जल प्रवाहित होता रहता है। वह बादल-सदृश रंगवाले, सम्पूर्ण धातुओंसे युक्त होनेके कारण रंगे-बिरंगे तथा मणियों और मूँगोंसे विभूषित पर्वतोंद्वारा घिरा हुआ है। उसमें चारों ओर विभिन्न आकारवाले रमणीय जनपद तथा फूल-फलोंसे लदे हुए

वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सर्वतो धनधान्यवान् ।
नित्यं पुष्पफलोपेतः सर्वरत्नसमावृतः ॥ ४७
आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्राम्यारण्यैश्च सर्वशः ।
आनुपूर्व्यात् समासेन कुशद्वीपं निबोधत ॥ ४८
अथ तृतीयं वक्ष्यामि कुशद्वीपं च कृत्स्नशः ।
कुशद्वीपेन क्षीरोदः सर्वतः परिवारितः ॥ ४९
शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्वितः ।
तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ॥ ५०
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु ।
द्विनामानश्च ते सर्वे शाकद्वीपे यथा तथा ॥ ५१
प्रथमः सूर्यसंकाशः कुमुदो नाम पर्वतः ।
विद्वुमोच्चय इत्युक्तः स एव च महीधरः ॥ ५२
सर्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमन्वितैः ।
द्वितीयः पर्वतस्तत्र उन्नतो नाम विश्रुतः ॥ ५३
हेमपर्वत इत्युक्तः स एव च महीधरः ।
हरितालमयैः शृङ्गद्वीपमावृत्य सर्वशः ॥ ५४
बलाहकस्तृतीयस्तु भात्यञ्जनमयो गिरिः ।
द्युतिमान् नामतः प्रोक्तः स एव च महीधरः ॥ ५५
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महाबलाः ।
विशल्यकरणी चैव मृतसंजीवनी तथा ॥ ५६
पुष्पवान् नाम सैवोक्तः पर्वतः सुमहाचितः ।
कङ्कस्तु पञ्चमस्तेषां पर्वतो नाम सारवान् ॥ ५७
कुशेशय इति प्रोक्तः पुनः स पृथिवीधरः ।
दिव्यपुष्पफलोपेतो दिव्यवीरुत्समन्वितः ॥ ५८
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसंनिभः ।
स एव तु पुनः प्रोक्तो हरिरित्यभिविश्रुतः ॥ ५९
तस्मिन् सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम योऽप्सुजः ।
सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्यान् स हि भाषते ॥ ६०

वृक्षोंके समूह शोभायमान हो रहे हैं । वह धन-धान्यसे परिपूर्ण है । वह सदा पुष्पों और फलोंसे युक्त रहता है । उसमें सभी प्रकारके रत्न पाये जाते हैं । वह सर्वत्र ग्रामीण एवं जंगली पशुओंसे भरा हुआ है । उस कुशद्वीपका संक्षेपमें आनुपूर्वी वर्णन सुनिये । अब मैं तीसरे कुशद्वीपका समग्ररूपसे वर्णन कर रहा हूँ । कुशद्वीपसे क्षीरसागर चारों ओरसे घिरा हुआ है । यह शाकद्वीपके दुगुने विस्तारसे युक्त है । यहाँ भी रत्नोंकी खानोंसे युक्त सात पर्वत जानना चाहिये । यहाँकी नदियाँ भी रत्नोंकी भण्डार हैं । अब मुझसे उनका नाम सुनिये । जैसे शाकद्वीपमें सभी पर्वतों और नदियोंके दो नाम थे, वैसे ही यहाँके भी पर्वत एवं नदी दो नामवाली हैं । पहला सूर्यके समान चमकीला कुमुद नामक पर्वत है । वह पर्वत विद्वुमोच्चय नामसे भी कहा जाता है । वहाँ दूसरा पर्वत उन्नत नामसे विख्यात है । वह सम्पूर्ण धातुओंसे परिपूर्ण एवं शिला-समूहोंसे समन्वित शिखरोंसे युक्त है । वही पर्वत हेमपर्वत नामसे अभिहित होता है ॥ ४५—५३ ३ ॥

तीसरा बलाहक पर्वत है, जो अज्ञनके समान काला है । यह अपने हरितालमय शिखरोंसे सर्वत्र द्वीपको आवृत किये हुए है । यही पर्वत द्युतिमान् नामसे भी पुकारा जाता है । चौथा पर्वत द्रोण है । इस महान् गिरिपर विशल्यकरणी और मृतसंजीवनी आदि महाबलवती ओषधियाँ पायी जाती हैं । वही महान् समृद्धिशाली पर्वत पुष्पवान् नामसे विख्यात है । उनमें पाँचवाँ कङ्क पर्वत है, जो सारयुक्त पदार्थोंसे सम्पन्न है । इस पर्वतको कुशेशय भी कहते हैं । वहाँ छठा महिष पर्वत है, जो मेघ-सदृश काला है । वह दिव्य पुष्पों एवं फलोंसे युक्त तथा दिव्य वृक्षोंसे सम्पन्न है । वही पुनः हरि नामसे विख्यात है । उस पर्वतपर महिष नामक अग्नि, जो जलसे उत्पन्न हुआ है, निवास करता है । वहाँ सातवें पर्वतको ककुद्यान् कहा जाता है । उसीको मन्दर जानना चाहिये । वह

मन्दरः सैव विज्ञेयः सर्वधातुमयः शुभः ।
 मन्द इत्येष यो धातुरपामर्थे प्रकाशकः ॥ ६१
 अपां विदारणाच्चैव मन्दरः स निगद्यते ।
 तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः ॥ ६२
 प्रजापतिमुपादाय प्रजाभ्यो विदधत् स्वयम् ।
 तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः समुदाहृतः ॥ ६३
 इत्येते पर्वताः सप्त कुशद्वीपे प्रभाषिताः ।
 तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु विभागशः ॥ ६४
 कुमुदस्य स्मृतः श्वेत उन्नतश्चैव स स्मृतः ।
 उन्नतस्य तु विज्ञेयं वर्ष लोहितसंज्ञकम् ॥ ६५
 वेणुमण्डलकं चैव तथैव परिकीर्तितम् ।
 बलाहकस्य जीमूतः स्वैरथाकारमित्यपि ॥ ६६
 द्रोणस्य हरिकं नाम लवणं च पुनः स्मृतम् ।
 कङ्कस्यापि ककुन्नाम धृतिमच्चैव तत् स्मृतम् ॥ ६७
 महिषं महिषस्यापि पुनश्चापि प्रभाकरम् ।
 ककुद्विनस्तु तद्वर्षं कपिलं नाम विश्रुतम् ॥ ६८
 एतान्यपि विशिष्टानि सप्त सप्त पृथक् पृथक् ।
 वर्षाणि पर्वताश्चैव नदीस्तेषु निबोधत ॥ ६९
 तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं हि ताः स्मृताः ।
 द्विनामवत्यस्ताः सर्वाः सर्वाः पुण्यजलाः स्मृताः ॥ ७०
 धूतपापा नदी नाम योनिश्चैव पुनः स्मृता ।
 सीता द्वितीया विज्ञेया सा चैव हि निशा स्मृता ॥ ७१
 पवित्रा तृतीया विज्ञेया वितृष्णापि च या पुनः ।
 चतुर्थी ह्रादिनीत्युक्ता चन्द्रभा इति च स्मृता ॥ ७२
 विद्युच्य पञ्चमी प्रोक्ता शुक्ला चैव विभाव्यते ।
 पुण्ड्रा षष्ठी तु विज्ञेया पुनश्चैव विभावरी ॥ ७३
 महती सप्तमी प्रोक्ता पुनश्चैषा धृतिः स्मृता ।
 अन्यास्ताभ्योऽपि संजाताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७४
 अभिगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः ।
 इत्येष संनिवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः ॥ ७५
 शाकद्वीपेन विस्तारः प्रोक्तस्तस्य सनातनः ।
 कुशद्वीपः समुद्रेण धृतमण्डोदकेन च ॥ ७६

सम्पूर्ण धातुओंसे युक्त और अत्यन्त सुन्दर है। जो यह मंद धातु है, वह जलरूप अर्थको प्रकट करनेवाली है, अतः जलका विदारण करके निकलनेके कारण इस पर्वतको मन्दर कहा जाता है। उस पर्वतपर अनेकों प्रकारके रत्न पाये जाते हैं, जिनकी रक्षा प्रजापतिको साथ लेकर स्वयं इन्द्र करते हैं। साथ ही स्वयं इन्द्र वहाँकी प्रजाओंकी भी देख-भाल करते हैं। इनके अन्तर-विष्कम्भ पर्वत परिमाणमें दुगुने बतलाये जाते हैं। कुशद्वीपमें ये सात पर्वत कहे गये हैं। अब मैं इनके सात वर्षोंका विभागपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। कुमुद पर्वतके वर्षका नाम श्वेत है। इसे उन्नत नामसे भी पुकारते हैं। उन्नत पर्वतका लोहित नामक वर्ष जानना चाहिये। इसे वेणुमण्डलक भी कहते हैं। बलाहक पर्वतका वर्ष जीमूत है, इसीका नाम स्वैरथाकार भी है ॥ ५४—६६ ॥

द्रोणपर्वतके वर्षका नाम हरिक है, इसे लवण भी कहते हैं। कङ्क पर्वतका वर्ष ककुद है, इसे धृतिमान् भी कहा जाता है। महिष पर्वतके वर्षका नाम महिष है, इसे प्रभाकर नामसे अभिहित किया जाता है। ककुद्वी पर्वतका जो वर्ष है, वह कपिल नामसे विख्यात है। कुशद्वीपमें ये सातों विशिष्ट वर्ष तथा सात पर्वत पृथक्-पृथक् हैं। अब उन वर्षोंकी नदियोंको सुनिये। वहाँ प्रत्येक वर्षमें नदियाँ भी सात ही बतलायी जाती हैं। वे सभी दो नामोंवाली तथा पुण्यसलिला हैं। उनमें पहली नदीका नाम धूतपापा है, उसे योनि भी कहते हैं। दूसरी नदीको सीता नामसे जानना चाहिये। वही निशा भी कही जाती है। पवित्राको तीसरी नदी समझना चाहिये। उसीका नाम वितृष्णा भी है। चौथी ह्रादिनी नामसे पुकारी जाती है, यही चन्द्रमा नामसे भी प्रसिद्ध है। पाँचवीं नदीको विद्युत् कहते हैं, यही शुक्ला नामसे भी अभिहित होती है। पुण्ड्राको छठी नदी जानना चाहिये, इसको विभावरी भी कहते हैं। सातवीं नदीका नाम महती है, यही धृति नामसे भी कही जाती है। इनके अतिरिक्त अन्य भी छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं, जो इन्हीं प्रमुख नदियोंमें जाकर मिली हैं। इन्हींसे जल ग्रहण करके इन्द्र यहाँ वर्षा करते हैं। इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कुशद्वीपकी संस्थितिका वर्णन कर दिया तथा उसके शाकद्वीपसे दुगुने सनातन विस्तारको भी बतला दिया। यह महान् कुशद्वीप चारों ओरसे चन्द्रमाकी भाँति घृत और मट्टेसे

सर्वतः सुमहान् द्वीपश्चन्द्रवत् परिवेष्टितः ।
 विस्तारान्मण्डलाच्चैव क्षीरोदाद् द्विगुणो मतः ॥ ७७
 ततः परं प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चद्वीपं यथा तथा ।
 कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः ॥ ७८
 घृतोदकः समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः ।
 चक्रनेमिप्रमाणेन वृतो वृत्तेन सर्वशः ॥ ७९
 तस्मिन् द्वीपे नराः श्रेष्ठा देवनो गिरिरुच्यते ।
 देवनात् परतश्चापि गोविन्दो नाम पर्वतः ॥ ८०
 गोविन्दात् परतश्चापि क्रौञ्चस्तु प्रथमो गिरिः ।
 क्रौञ्चात् परः पावनकः पावनादन्धकारकः ॥ ८१
 अन्धकारात् परे चापि देवावृत्ताम पर्वतः ।
 देवावृतः परेणापि पुण्डरीको महान् गिरिः ॥ ८२
 एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः ।
 परस्परस्य द्विगुणो विष्कम्भो वर्षपर्वतः ॥ ८३
 वर्षाणि तस्य वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत ।
 क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः ॥ ८४
 मनोऽनुगात् परे चोष्णास्तृतीयोऽपि स उच्यते ।
 उष्णात् परे पावनकः पावनादन्धकारकः ॥ ८५
 अन्धकारकदेशात् तु मुनिदेशस्तथापरः ।
 मुनिदेशात् परे चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ॥ ८६
 सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायः शुचिर्जनः ।
 श्रुतास्त्रैव नद्यस्तु प्रतिवर्षं गताः शुभाः ॥ ८७
 गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा ।
 ख्यातिश्च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधा स्मृता ॥ ८८
 तासां सहस्रशशान्या नद्यः पार्श्वसमीपगाः ।
 अभिगच्छन्ति ता नद्यो बहुलाश्च बहूदकाः ॥ ८९
 तेषां निसर्गो देशानामानुपूर्व्येण सर्वशः ।
 न शक्यो विस्तराद् वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ९०
 सर्गो यश्च प्रजानां तु संहारो यश्च तेषु वै ।
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शाल्मलस्य निबोधत ॥ ९१
 शाल्मलो द्विगुणो द्वीपः क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तरात् ।
 परिवार्यं समुद्रं तु घृतमण्डोदकं स्थितः ॥ ९२

भरे हुए सागरसे धिरा हुआ है । यह विस्तार एवं मण्डल (घेराव) -में क्षीरसागरसे दुगुना माना गया है ॥ ६७—७७ ॥
 इसके बाद अब मैं क्रौञ्चद्वीपका यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ । इसका विस्तार कुशद्वीपके विस्तारसे दुगुना है । चकेकी भाँति गोलाकार उस क्रौञ्चद्वीपसे घृतसागर चारों ओरसे धिरा हुआ है । श्रेष्ठ ऋषियो ! इस क्रौञ्चद्वीपमें देवन नामक पर्वत बतलाया जाता है । देवनके बाद गोविन्द नामक पर्वत है । गोविन्दके बाद क्रौञ्च नामक पहला पर्वत है । क्रौञ्चके बाद पावनक, पावनकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद देवावृत् नामक पर्वत है । देवावृतके बाद पुण्डरीक नामक विशाल पर्वत है । क्रौञ्चद्वीपके ये सातों पर्वत रत्नमय हैं । इस द्वीपके वर्ष पर्वतके रूपमें स्थित विष्कम्भं पर्वत परस्पर एक-दूसरेसे दुगुने हैं । अब इस द्वीपके वर्षोंका नाम बतला रहा हूँ, सुनिये । क्रौञ्च पर्वतके प्रदेशका नाम कुशल है । वामन पर्वतका प्रदेश मनोऽनुग कहलाता है । मनोऽनुगके बाद तीसरा उष्ण प्रदेश कहा जाता है । उष्णके बाद पावनक, पावनकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद दूसरा मुनिदेश है । मुनिदेशके बाद दुन्दुभिस्वन नामक देश कहा जाता है । यह द्वीप सिद्धों एवं चारणोंसे व्यास है । यहाँके निवासी प्रायः गौर वर्णके एवं परम पवित्र होते हैं । इस द्वीपके प्रत्येक वर्षमें मङ्गलमयी नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं, ऐसा सुना गया है । वहाँ गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका—ये सात प्रकारकी गङ्गा बतलायी जाती हैं । इनके अगल-बगलमें बहनेवाली अगाध जलसे भरी हुई हजारों अन्य नदियाँ भी हैं, जो इन्हीं प्रमुख नदियोंमें आकर मिली हैं । उन पर्वतीय प्रदेशोंकी सर्वथा आनुपूर्वी स्वाभाविकी स्थितिका तथा वहाँकी प्रजाओंकी सृष्टि एवं संहारका विस्तारपूर्वक वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता ॥ ७८—९० १२ ॥

इसके बाद मैं शाल्मलद्वीपका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । शाल्मलद्वीप क्रौञ्चद्वीपके विस्तारसे दुगुना है । यह घृतमण्डोदसागरको घेरकर स्थित है । इसमें पुण्यमय जनपद हैं । वहाँके निवासी क्षमाशील एवं तेजस्वी होते

तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च प्रियते जनः ।
कुत एव तु दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते ॥ १३

प्रथमः सूर्यसङ्काशः सुमना नाम पर्वतः ।
पीतस्तु मध्यमश्वासीत् ततः कुम्भमयो गिरिः ॥ १४

नाम्ना सर्वसुखो नाम दिव्यौषधिसमन्वितः ।
तृतीयश्वैव सौवर्णो भृङ्गपत्रनिभो गिरिः ॥ १५

सुमहान् रोहितो नाम दिव्यो गिरिवरो हि सः ।
सुमनाः कुशलो देशः सुखोदर्कः सुखोदयः ॥ १६

रोहितो यस्तृतीयस्तु रोहिणो नाम विश्रुतः ।
तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः ॥ १७

प्रजापतिमुपादाय प्रसन्नो विदधत् स्वयम् ।
न तत्र मेघा वर्षन्ति शीतोष्णं च न तद्विधम् ॥ १८

वर्णाश्रमाणां वार्ता वा त्रिषु द्वीपेषु विद्यते ।
न ग्रहो न च चन्द्रोऽस्ति ईर्ष्यासूया भयं तथा ॥ १९

उद्धिदान्युदकान्यत्र गिरिप्रस्त्रवणानि च ।
भोजनं षड्सं तत्र तेषां स्वयमुपस्थितम् ॥ १००

अथमोत्तमं न तेष्वस्ति न लोभो न परिग्रहः ।
आरोग्यबलवन्तश्च एकान्तसुखिनो नराः ॥ १०१

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।
सुखमायुश्च रूपं च धर्मेश्वर्यं तथैव च ॥ १०२

शाल्मलान्तेषु विज्ञेयं द्वीपेषु त्रिषु सर्वतः ।
व्याख्यातः शाल्मलान्तानां द्वीपानां तु विधिः शुभः ॥ १०३

हैं तथा दीर्घायुका उपभोग कर मृत्युको प्राप्त होते हैं। वहाँ अकालकी कोई सम्भावना ही नहीं है। वहाँ पहले पर्वतका नाम सुमना है, जो सूर्यके समान चमकीला होनेके कारण पीले रंगका है। उसके बाद दूसरा कुम्भमय नामक पर्वत है। उसका दूसरा नाम सर्वसुख है। वह दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न है। तीसरा स्वर्णसम्पन्न एवं भ्रमरके पंखके समान रंगवाला रोहित नामक विशाल पर्वत है। यह पर्वतश्रेष्ठ दिव्य है। सुमना पर्वतका देश कुशल एवं दूसरे सर्वसुख पर्वतका देश सुखोदय है, जो सभी सुखोंको उत्पन्न करनेवाला है। तीसरे रोहित पर्वतका प्रदेश रोहिण नामसे विख्यात है। वहाँ अनेकों प्रकारके रत्नोंकी खाने हैं, जिनकी रक्षा प्रजापतिको साथ लेकर स्वयं इन्द्र करते हैं और वे ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँकी प्रजाओंके लिये कार्यका विधान करते हैं। वहाँ न तो मेघ वर्षा करते हैं, न शीत एवं उष्णकी ही अधिकता रहती है। इन तीनों द्वीपोंमें वर्णाश्रमकी चर्चा चलती रहती है। अर्थात् यहाँ वर्णाश्रमका पूर्णरूपसे प्रचार है। यहाँ न ग्रहगण हैं, न चन्द्रमा हैं और न यहाँके निवासियोंमें ईर्ष्या, असूया और भय ही देखा जाता है। यहाँ पर्वतोंसे झरते हुए जल ही अन्नके उत्पादक हैं। वहाँके निवासियोंके लिये षट्-रसयुक्त भोजन स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। उनमें न तो ऊँच-नीचका भाव है, न लोभ है और न परिग्रह (दान लेनेकी प्रवृत्ति) ही है। वे नीरोग एवं बलवान् होते हैं तथा एकान्त सुखका उपभोग करते हैं। वे लोग तीस हजार वर्षतककी मानसी सिद्धिको प्राप्त होकर सुख, दीर्घायु, सुन्दर रूप, धर्म और ऐश्वर्यका उपभोग करते हुए जीवन-यापन करते हैं। कुश, क्रौञ्च और शाल्मल—इन तीनों द्वीपोंमें यही स्थिति समझनी चाहिये। इस प्रकार मैं इन तीनों द्वीपोंकी शुभमयी विधिका विवरण बतला चुका। इस

परिमण्डलस्तु द्वीपस्य चक्रवत् परिवेष्टिः । | शाल्मलद्वीपका मण्डल (धेर) दुगुने परिमाणवाले सुरोदसागरसे
सुरोदेन समुद्रेण द्विगुणेन समन्वितः ॥ १०४ | चारें ओर चक्रकी भाँति गोलाकर घिर हुआ है ॥ ११—१०४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे द्वीपवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णन-प्रसङ्गमें द्वीप-वर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२२ ॥

एक सौ तेर्झसवाँ अध्याय

गोमेदकद्वीप* और पुष्करद्वीपका वर्णन

सूत उवाच

गोमेदकं प्रवक्ष्यामि षष्ठं द्वीपं तपोधनाः ।
सुरोदकसमुद्रस्तु गोमेदेन समावृतः ॥ १
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः ।
तस्मिन् द्वीपे तु विज्ञेयौ पर्वतौ द्वौ समाहितौ ॥ २
प्रथमः सुमना नाम भात्यञ्जनमयो गिरिः ।
द्वितीयः कुमुदो नाम सर्वोषधिसमन्वितः ॥ ३
शातकौभ्यमयः श्रीमान् विज्ञेयः सुमहाचितः ।
समुद्रेक्षुरसोदेन वृतो गोमेदकश्च सः ॥ ४
षष्ठेन तु समुद्रेण सुरोदाद् द्विगुणेन च ।
धातकी कुमुदश्चैव हव्यपुत्रौ सुविस्तृतौ ॥ ५
सौमनं प्रथमं वर्षं धातकीखण्डमुच्यते ।
धातकिनः स्मृतं तद् वै प्रथमं प्रथमस्य तु ॥ ६
गोमेदं यत्स्मृतं वर्षं नाम्ना सर्वसुखं तु तत् ।
कुमुदस्य द्वितीयस्य द्वितीयं कुमुदं ततः ॥ ७
एतौ द्वौ पर्वतौ वृत्तौ शेषौ सर्वसमुच्छ्रितौ ।
पूर्वेण तस्य द्वीपस्य सुमनाः पर्वतः स्थितः ॥ ८
प्राक्पश्चिमायतैः पादैरासमुद्रादिति स्थितः ।
पश्चार्धं कुमुदस्तस्य एवमेव स्थितस्तु वै ॥ ९
एतैः पर्वतपादैस्तु स देशो वै द्विधा कृतः ।
दक्षिणार्धं तु द्वीपस्य धातकीखण्डमुच्यते ॥ १०

सूतजी कहते हैं—तपोधन ऋषियो ! अब मैं छठे गोमेदक द्वीपका वर्णन कर रहा हूँ । गोमेदक द्वीपसे सुरोदकसागर घिरा हुआ है । इसका विस्तार शाल्मलद्वीपके विस्तारसे दुगुना है । उस द्वीपमें उच्च शिखरोंवाले दो पर्वत हैं—ऐसा जानना चाहिये । उनमें पहलेका नाम सुमना है । यह पर्वत अञ्जनके समान काले रंगसे सुशोभित है । दूसरा पर्वत कुमुद नामवाला है, जो सभी प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न, सुवर्णमय, शोभाशाली और वृक्षादिकी समृद्धियोंसे युक्त है । यह गोमेदक द्वीप छठे सुरोदसागरकी अपेक्षा दुगुने परिमाणवाले इक्षुरसोदसागरसे घिरा हुआ है । इसमें धातकी और कुमुद नामक दो अत्यन्त विस्तृत प्रदेश हैं, जो 'हव्यपुत्र' नामसे विख्यात हैं । सुमना पर्वतका जो प्रथम वर्ष है, उसीको धातकीखण्ड कहते हैं । यही धातकी नामक प्रथम पर्वतका प्रथम वर्ष कहलाता है । गोमेद नामसे जो वर्ष कहा गया है, उसीको सर्वसुख भी कहते हैं । इसके बाद दूसरे कुमुदपर्वतका प्रदेश भी कुमुद नामसे विख्यात है । ये दोनों पर्वत अन्य सभी पर्वतोंसे ऊँचे हैं । इस गोमेदक द्वीपके पूर्वभागमें सुमना नामक पर्वत स्थित है, जो पूर्वसे पश्चिम समुद्रतक फैला हुआ है । इसी प्रकार इस द्वीपके पश्चिमार्ध भागमें कुमुद नामक पर्वत स्थित है । इन पर्वतोंके चरण-प्रान्तोंसे वह देश दो भागोंमें विभक्त हो गया है । इस द्वीपका दक्षिणार्ध भाग धातकीखण्ड कहलाता है

* इस द्वीपका वर्णन प्रायः अन्य पुराणोंमें नहीं है । पर सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय ३ । २५ आदिमें इसका वर्णन है । अन्य पुराणमें गोमेद प्लक्षद्वीपमें एक मर्यादा पर्वतमात्र है ।

कुमुदं तूत्तरे तस्य द्वितीयं वर्षमुत्तमम्।
 एतौ जनपदौ द्वौ तु गोमेदस्य तु विस्तृतौ॥ ११
 इतः परं प्रवक्ष्यामि सप्तमं द्वीपमुत्तमम्।
 समुद्रेक्षुरसं चैव गोमेदाद् द्विगुणं हि सः॥ १२
 आवृत्य तिष्ठति द्वीपः पुष्करः पुष्करैर्वृतः।
 पुष्करेण वृतः श्रीमांश्चित्रसानुर्महागिरिः॥ १३
 कूटैश्चित्रैर्मणिमयैः शिलाजालसमुद्भवैः।
 द्वीपस्यैव तु पूर्वार्धं चित्रसानुः स्थितो महान्॥ १४
 परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः सप्तविंशतिः।
 ऊर्ध्वं स वै चतुर्विंशद् योजनानां महाचलः॥ १५
 द्वीपार्धस्य परिक्षिपः पश्चिमे मानसो गिरिः।
 स्थितो वेलासमीपे तु पूर्वचन्द्र इवोदितः॥ १६
 योजनानां सहस्राणि सार्धं पञ्चाशदुच्छितः।
 तस्य पुत्रो महावीतः पश्चिमार्धस्य रक्षिता॥ १७
 पूर्वार्धं पर्वतस्यापि द्विधा देशस्तु स स्मृतः।
 स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः॥ १८
 विस्तारामण्डलाच्चैव गोमेदाद् द्विगुणेन तु।
 त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः॥ १९
 विपर्ययो न तेष्वस्ति एतत् स्वाभाविकं स्मृतम्।
 आरोग्यं सुखबाहुल्यं मानसीं सिद्धिमास्थिताः॥ २०
 सुखमायुश्च रूपं च त्रिषु द्वीपेषु सर्वशः।
 अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां तुल्यास्ते वीर्यरूपतः॥ २१
 न तत्र वध्यवधकौ नेष्यासूया भयं तथा।
 न लोभो न च दम्भो वा न च द्वेषः परिग्रहः॥ २२
 सत्यानुते न तेष्वास्तां धर्माधर्मो तथैव च।
 वर्णाश्रमाणां वार्ता च पाशुपाल्यं वणिक् कृषिः॥ २३
 त्रयीविद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा दण्ड एव च।
 न तत्र वर्षं नद्यो वा शीतोष्णां न च विद्यते॥ २४
 उद्दिदान्युदकानि स्युर्गिरिप्रस्त्रवणानि च।
 तुल्योत्तरकुरुणां तु कालसत्र तु सर्वदा॥ २५

तथा इसके उत्तरार्ध भागमें कुमुद नामक दूसरा श्रेष्ठ वर्ष है। गोमेदक द्वीपके ये दोनों प्रदेश अत्यन्त विस्तृत माने जाते हैं॥ १—११॥

इसके बाद अब मैं सातवें सर्वोत्तम द्वीपका वर्णन कर रहा हूँ, जो पुष्करों (कमलों)-से व्यास होनेके कारण पुष्कर नामसे प्रसिद्ध है। यह परिमाणमें गोमेदकद्वीपसे दुगुना है और इक्षुरसोदक-सागरको घेरकर स्थित है। पुष्करद्वीपमें चित्रसानु (विचित्र शिखरेंवाला) नामक शोभाशाली महान् पर्वत है। यह अनेकों चित्र-विचित्र मणिमय शिखरों तथा शिलासमूहोंसे सुशोभित है। यह महान् पर्वत चित्रसानु द्वीपके पूर्वार्ध भागमें स्थित है। यह महान् गिरि सत्ताईस योजन विस्तृत और चौबीस योजन ऊँचा है। इस द्वीपके पश्चिमार्ध भागमें समुद्रतटपर मानस नामक पर्वत स्थित है, जो पूर्व दिशामें निकले हुए चन्द्रमाके समान शोभायमान है। यह साढ़े पचास हजार योजन ऊँचा है। मानस पर्वतके पूर्वार्धमें स्थित रहते हुए भी इसका पुत्र महावीत नामक पर्वत द्वीपके पश्चिमार्ध भागकी रक्षा करता है। इस प्रकार वह प्रदेश दो भागोंमें विभक्त कहा जाता है। पुष्करद्वीप स्वादिष्ट जलवाले महासागरसे धिरा हुआ है। यह विस्तार एवं मण्डल (घेराव)-में गोमेदक द्वीपसे दुगुना है। इस द्वीपके अन्तःस्थित प्रदेशोंके मानव तीस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। उनमें वृद्धावस्थाका प्रवेश नहीं होता। वे स्वाभाविक रूपसे युवावस्था, नीरोगता, अत्यधिक सुख और मानसी सिद्धिसे युक्त होते हैं॥ १२—२०॥

तीनों द्वीपोंमें सर्वत्र सुख, दीर्घायु और सुन्दर रूपकी सुलभता रहती है। उनमें ऊँच-नीचका भाव नहीं होता। पराक्रम और रूपकी दृष्टिसे वे एकतुल्य होते हैं। उनमें न कोई वध करनेयोग्य होता है और न मारनेवाला ही पाया जाता है। उनमें ईर्ष्या, असूया, भय, लोभ, दम्भ, द्वेष और संग्रहका नामतक नहीं है। उनमें सत्य-असत्य एवं धर्म-अधर्मका विवाद, वर्णाश्रमकी चर्चा, पशुपालन, व्यवसाय, खेती, त्रयीविद्या, दण्डनीति (शत्रुओं या अपराधियोंको दण्ड देकर वशमें करनेकी नीति), नौकरी और परस्पर दण्ड-विधान भी नहीं पाया जाता। वहाँ न तो वर्षा होती है, न नदियाँ ही हैं तथा सर्दी-गरमी भी नहीं पड़ती। पर्वतोंसे टपकते हुए जल ही अन्न और जलका काम पूरा करते हैं। वहाँ सर्वदा उत्तरकुरु देशके सदृश समय

सर्वतः सुखकालोऽसौ जराक्लेशविवर्जितः ।
 सर्गस्तु धातकीखण्डे महावीते तथैव च ॥ २६
 एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
 द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रसत्समस्तु वै ॥ २७
 एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम् ।
 अपां चैव समुद्रेकात् समुद्र इति संज्ञितः ॥ २८
 ऋषद्वसन्त्यो वर्षेषु प्रजा यत्र चतुर्विधाः ।
 ऋषिरित्येष गमने वर्ष त्वेतेन तेषु वै ॥ २९
 उदयतीन्दौ पूर्वे तु समुद्रः पूर्वते सदा ।
 प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते च वै ॥ ३०
 आपूर्यमाणो हुदधिरात्मनैवाभिपूर्यते ।
 ततो वै क्षीयमाणे तु स्वात्मन्येव ह्यपां क्षयः ॥ ३१
 उदयात् पयसां योगात् पुष्णन्त्यापो यथा स्वयम् ।
 तथा स तु समुद्रोऽपि वर्धते शशिनोदये ॥ ३२
 अन्यूनानतिरिक्तात्मा वर्धन्त्यापो हसन्ति च ।
 उदयेऽस्तमये चेन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ३३
 क्षयवृद्धी समुद्रस्य शशिवृद्धिक्षये तथा ।
 दशोत्तराणि पञ्चाहुरङ्गुलानां शतानि च ॥ ३४
 अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणां तु पर्वसु ।
 द्विरापत्वात् स्मृतो द्वीपो दधनाच्चोदधिः स्मृतः ॥ ३५
 निगीर्णत्वाच्च गिरयो पर्वबन्धाच्च पर्वताः ।
 शाकद्वीपे तु वै शाकः पर्वतस्तेन चोच्यते ॥ ३६
 कुशद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य तु ।
 क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चस्तस्य नाम्ना निगद्यते ॥ ३७
 शाल्मलिः शाल्मलद्वीपे पूज्यते स महाद्वूमः ।
 गोमेदके तु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते ॥ ३८
 न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे पद्मवत् तेन स स्मृतः ।
 पूज्यते स महादेवैर्ब्रह्मांशोऽव्यक्तसम्भवः ॥ ३९

बना रहता है। वहाँ सब लोग सर्वत्र वृद्धावस्थाके कष्टसे रहित सुखमय समय व्यतीत करते हैं। यही स्थिति धातकीखण्ड तथा महावीत—दोनों प्रदेशोंमें पायी जाती है। इस प्रकार सातों द्वीप पृथक्-पृथक् सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। जो समुद्र जिस द्वीपके बाद पड़ता है, वह परिमाणमें उसी द्वीपके बराबर माना गया है। इस प्रकार द्वीपों और समुद्रोंकी परस्पर वृद्धि समझनी चाहिये। जलकी सम्यक् प्रकारसे वृद्धि होनेके कारण इस जलराशिको समुद्र कहते हैं। 'ऋषि' धातुका अर्थ गमन है, इसीसे 'वर्ष' शब्द बनता है। उन वर्षोंमें चार प्रकारकी प्रजाएँ सुखपूर्वक निवास करती हैं। पूर्व दिशामें चन्द्रमाके उदय होनेपर समुद्र सर्वदा जलसे पूर्ण हो जाता है अर्थात् उसमें ज्वार आ जाता है और वही चन्द्रमा जब अस्त हो जाते हैं तब समुद्रका बढ़ा हुआ जल अत्यन्त क्षीण हो जाता है अर्थात् भाटा हो जाता है। जलकी वृद्धिके समय समुद्र अपनी मर्यादाके भीतर ही बढ़ता है और क्षीण होते समय मर्यादाके अंदर ही उसके जलका क्षय होता है ॥ २१—३१ ॥

जिस प्रकार चन्द्रमाके उदय होनेपर चन्द्र-किरणोंका जलके साथ संयोग होनेसे जल अपने-आप उछलने लगता है, उसी प्रकार समुद्र भी बढ़ने लगता है। यद्यपि शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें चन्द्रमाके उदय और अस्त-कालमें जल बढ़ता और घटता है, तथापि समुद्रकी मर्यादामें न्यूनता या अधिकता नहीं दीख पड़ती। चन्द्रमाकी वृद्धि और क्षयके अवसरपर समुद्रका भी उत्कर्ष और अपकर्ष होता है। पानीका यह चढ़ाव-उतार एक सौ पंद्रह अङ्गुलितक बतलाया जाता है। पर्वके अवसरोंपर समुद्रोंके जलोंका यह ज्वारभाटा स्पष्ट दीखनेमें आता है। दो ओर जलसे घिरा होनेके कारण समुद्रस्थ प्रदेशको द्वीप कहते हैं और जलको धारण करनेके कारण समुद्रको उदधि कहा जाता है। (सभी वस्तुओंको) आत्मसात् कर लेनेके कारण 'गिरि' और (पृथ्वीके) संधिस्थानको बाँधनेके कारण 'पर्वत' नाम पड़ा है। शाकद्वीपमें शाक नामक पर्वत है, इसी कारण उसे शाकद्वीप कहते हैं। कुशद्वीपमें जनपदके मध्यभागमें विशाल कुशस्तम्ब (कुशका गुलम) है (इसीलिये वह कुशद्वीप कहा जाता है)। क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामक पर्वत है, अतः उसीके नामपर वह क्रौञ्चद्वीप कहलाता है। शाल्मलद्वीपमें सेमलका महान् वृक्ष है, उसकी वहाँके लोग पूजा करते हैं। (इसीसे उसे शाल्मलद्वीप कहा जाता है।) गोमेदकद्वीपमें गोमेद नामका पर्वत है, अतः उसीके नामपर द्वीपको गोमेदक नामसे पुकारते हैं। पुष्करद्वीपमें कमलके समान बरगदका वृक्ष है, इसी कारण उसे पुष्करद्वीप कहते हैं। वह वटवृक्ष अव्यक्त ब्रह्मके अंशसे समुद्रूत हुआ है, इसीलिये प्रधान-प्रधान

तस्मिन् स वसति ब्रह्मा साध्यैः सार्थं प्रजापतिः ।
तत्र देवा उपासन्ते त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः ॥ ४०

स तत्र पूज्यते देवो देवैर्महर्षिसत्तमैः ।
जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च ॥ ४१
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमशैस्तु वै ।
आर्जवाद् ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥ ४२
आरोग्यायुष्माणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ।
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु यथोक्तं वर्षकेषु च ॥ ४३
गोपायन्ते प्रजास्तत्र सर्वैः सहजपण्डितैः ।
भोजनं चाप्रयत्नेन सदा स्वयमुपस्थितम् ॥ ४४
षड्सं तन्महावीर्यं तत्र ते भुज्ञते जनाः ।
परेण पुष्करस्याथ आवृत्यावस्थितो महान् ॥ ४५
स्वादूदकसमुद्रस्तु स समन्तादवेष्टयत् ।
स्वादूदकस्य परितः शैलस्तु परिमण्डलः ॥ ४६
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते ।
आलोकस्तत्र चार्वाक् च निरालोकस्ततःपरम् ॥ ४७
लोकविस्तारमात्रं तु पृथिव्यर्थं तु बाह्यतः ।
प्रतिच्छन्नं समन्तात् तु उदकेनावृतं महत् ॥ ४८
भूमेर्दशगुणश्चापः समन्तात् पालयन्ति गाम् ।
अद्भ्यो दशगुणश्चाग्निः सर्वतो धारयत्यपः ॥ ४९
अग्रेदशगुणो वायुर्धारयज्योतिरास्थितः ।
तिर्यक् च मण्डलो वायुर्भूतान्यावेष्ट्य धारयन् ॥ ५०
दशाधिकं तथाऽऽकाशं वायोर्भूतान्यधारयत् ।
भूतानि धारयन् व्योम तस्माद् दशगुणस्तु वै ॥ ५१
भूतादितो दशगुणं महद्भूतान्यधारयत् ।
महत्तत्त्वं ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते ॥ ५२
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिणाम् ।
पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम् ॥ ५३

देवगण उसकी पूजा करते हैं। उस द्वीपमें साध्यगणोंके साथ प्रजापति ब्रह्मा निवास करते हैं। वहाँ महर्षियोंके साथ तैतीस देवता उपासना करते हैं। वहाँ श्रेष्ठ महर्षियों एवं देवताओंद्वारा देवाधिदेव ब्रह्माकी पूजा की जाती है। जम्बूद्वीपसे अनेकों प्रकारके रत्न (अन्यान्य द्वीपोंमें) प्रवर्तित होते हैं ॥ ३२—४१ ॥

उपर्युक्त उन सभी द्वीपों और वर्षोंमें क्रमशः प्रजाओंकी सरलता, ब्रह्मचर्य, सत्यवादिता, इन्द्रियनिग्रह, नीरोगता और आयुका प्रमाण एक-दूसरेसे दुगुना बढ़ता जाता है। वे सभी स्वाभाविक ही पण्डित होते हैं, अतः उनके द्वारा स्वयं प्रजाओंकी रक्षा होती रहती है। वहाँ भोजन अनायास ही स्वयं उपस्थित हो जाता है, जो छहों रसोंसे युक्त और महान् बलदायक होता है। उसे ही वहाँके निवासी खाते हैं। पुष्करद्वीपके बाद स्वादिष्ट जलसे परिपूर्ण महासागर उस द्वीपको चारों ओरसे घेरकर अवस्थित है। उस स्वादिष्ट जलवाले सागरके चारों ओर एक मण्डलाकार पर्वत है, जो प्रकाश और अन्धकारसे युक्त है। उसीको 'लोकालोक' नामसे पुकारा जाता है। उसका अगला भाग प्रकाशयुक्त तथा पिछला भाग अन्धकारसे आच्छादित रहता है। उसका विस्तार लोकोंके विस्तारके बराबर है, किंतु वह बाहरसे पृथ्वीके अर्धभाग-जितना दीख पड़ता है। वह महान् पर्वत चारों ओर जल-राशिसे आच्छन्न एवं घिरा हुआ है। पृथ्वीसे दसगुना जल चारों ओरसे पृथ्वीकी रक्षा करता है। जलसे दसगुनी अग्नि सब ओरसे जलको धारण करती है। अग्निसे दसगुनी वायु तेजको धारण करके स्थित है। वह वायुमण्डल तिरछा होकर समस्त प्राणियोंमें प्रविष्ट हो सबको धारण किये हुए है। वायुसे दसगुना आकाश भूतोंको धारण किये हुए है। उस आकाशसे दसगुना भूतादि अर्थात् तामस अहंकार है। उस भूतादिसे दसगुना महद्भूत (महत्तत्त्व) है और वह महत्तत्त्व अनन्त अव्यक्तद्वारा धारण किया जाता है। इन विकृतिशील तत्त्वोंके विकार आधाराधेयभावसे कल्पित हैं। ये पृथ्वी आदि विकार परस्पर विभक्त हैं,

परस्पराधिकाश्चैव प्रविष्टाश्च परस्परम्।
एवं परस्परोत्पन्ना धार्यन्ते च परस्परम्॥५४
यस्मात् प्रविष्टास्तेऽन्योन्यं तस्मात् ते स्थिरतां गताः।
आसंस्ते ह्यविशेषाश्च विशेषा अन्यवेशनात्॥५५
पृथ्व्यादयस्तु वाच्वन्ताः परिच्छन्नास्तु तत्र ते।
भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यालोकः सर्वतः स्मृतः॥५६
तथा ह्यालोक आकाशे परिच्छन्नानि सर्वशः।
पात्रे महति पात्राणि यथा ह्यन्तर्गतानि च॥५७
भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्रयात्।
तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गतागताः॥५८
कृतान्येतानि तत्त्वानि अन्योन्यस्याधिकानि च।
यावदेतानि तत्त्वानि तावदुत्पत्तिरुच्यते॥५९
जन्तूनामिह संस्कारो भूतेष्वन्तर्गतेषु वै।
प्रत्याख्यायेह भूतानि कार्योत्पत्तिर्न विद्यते॥६०
तस्मात् परिमिता भेदाः स्मृताः कार्यात्मकास्तु वै।
ते कारणात्मकाश्चैव स्युर्भेदा महदादयः॥६१
इत्येवं संनिवेशोऽयं पृथ्व्याक्रान्तस्तु भागशः।
सप्तद्वीपसमुद्राणां याथातथ्येन वै मया॥६२
विस्तारान्मण्डलाच्चैव प्रसंख्यानेन चैव हि।
विश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिनः॥६३
एतावत् संनिवेशस्तु मया सम्यक् प्रकाशितः।
एतावदेव श्रोतव्यं संनिवेशस्य पार्थिव॥६४

परस्पर एक-दूसरेसे अधिक तथा एक-दूसरेमें घुसे हुए भी हैं। इसी प्रकार ये परस्पर उत्पन्न होते हैं और परस्पर एक-दूसरेको धारण भी करते हैं*॥ ४२—५४॥
चौंकि ये सभी परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट-से हैं, इसीलिये स्थिरताको प्राप्त हुए हैं। पहले इनमें कोई विशेषता नहीं थी, परंतु एक-दूसरेमें प्रविष्ट हो जानेसे ये विशिष्ट हो गये हैं। पृथ्वीसे लेकर वायुतकके सभी तत्त्व परस्पर विभक्त हैं। इन तत्त्वोंसे परे सारा जगत् निर्जन है। (अन्य सभी तत्त्व) प्रकाशमान आकाशमें सर्वत्र व्याप्त हैं। जिस प्रकार छोटे-छोटे पात्र बड़े पात्रके अन्तर्गत समा जाते हैं और परस्पर समाश्रयण होनेके कारण एक-दूसरेसे छोटे होते जाते हैं, उसी प्रकार ये सारे भेद प्रकाशमान आकाशके अन्तर्गत विलीन हो जाते हैं। ये तत्त्व परस्पर एक-दूसरेसे अधिक परिमाणवाले बनाये गये हैं। जबतक ये तत्त्व वर्तमान रहते हैं, तभीतक प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। इस जगत्में इन्हीं तत्त्वोंके अन्तर्गत प्राणियोंकी व्यवस्थिति होती है। इन तत्त्वोंका प्रत्याख्यान कर देनेपर किसी प्रकार कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसीलिये वे परिमित (पृथ्वीसे वायुतक) तत्त्व कार्यात्मक कहे जाते हैं तथा महत्तत्त्व आदि भेद कारणात्मक हैं। इस प्रकार विभागपूर्वक पृथ्वीसे आच्छादित मण्डल, सातों द्वीपों और सातों समुद्रोंका यथार्थरूपसे गणनासहित विस्तार एवं मण्डल तथा परिमाणमें एकदेशी प्रधान तत्त्वका इसे विश्वरूप जानना चाहिये। राजन्! मैंने इस मण्डलका यहाँतक सम्यक् प्रकारसे वर्णन कर दिया; क्योंकि मण्डलके वृत्तान्तको यहाँतक ही सुनना चाहिये॥५५—६४॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे भुवनकोशे सप्त द्वीपनिवेशनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२३॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सप्तद्वीपनिवेशन नामक एक सौ तेर्वेसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२३॥

* यह वर्णन अन्य पुराणमें भी है। पर इन सबोंका आचार्य यामुनने 'स्तोत्रलनम्'में परमात्मसम्बन्धसहित—

'यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यद्शोत्तराण्यावरणानि यानि च। गुणाः प्रधानं पुरुषाः परं पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः॥'

इस एक ही श्लोकमें बड़े संक्षेपमें, पर सुन्दर शब्दों तथा भावोंमें चित्रण कर दिया है।

मत्स्यावतार-कथा-प्रसंग

स्तुतिनि हित हरि मच्छ रूप धार्थौ। सदा ही भक्त-संकट निवार्थौ॥
 चतुरमुख कहौ, सँख असुर स्तुति लै गयो, सत्यब्रत कहौ परलय दिखायौ।
 भक्त-बत्सल, कृपाकरन, असरन-सरन, मत्स्यकौ रूप तब धारि आयौ॥
 स्नान करि अंजली जल जबै नृप लियौ, मत्स्य जौ देखि कहौ डारि दीजै।
 मत्स्य कहौ, मैं गही आइ तुम्हरी सरन, करि कृपा मोहिं अब राखि लीजै॥
 नृप सुनत बचन, चकित प्रथम है रहौ, कहौ, मछ बचन किहिं भाँति भाष्यौ।
 पुनि कमंडल धर्थौ, तहाँ सो बढ़ि गयौ, कुंभ धरि बहुरि पुनि माट राख्यौ॥
 पुनि धर्थौ खाड़, तालाब मैं पुनि धर्थौ, नदी मैं बहुरि पुनि डारि दीन्हौ।
 बहुरि जब बढ़ि गयौ, सिंधु तब लै गयौ, तहाँ हरि-रूप नृप चीन्हि
 कहौ करि बिनय तुम ब्रह्म जो अनंत हौ, मत्स्यकौ रूप किहिं काज
 बेद-विधि चहत, तुम प्रलय देखन कहत, तुम दुहुँनि हेत अवतार
 कबहुँ बाराह, नरसिंह कबहुँ भयौ, कबहुँ मैं कच्छकौ रूप
 कबहुँ भयौ राम, बसुदेव-सुत कबहुँ भयौ, और बहु रूप हित-भक्त
 सातवें दिवस दिखराइहौं प्रलय तोहिं सप्त-रिषि नाव मैं बैठि आवैं।
 तोहिं बैठारिहों नावमैं हाथ गहि, बहुरि हम ज्ञान तोहिं कहि सुनावैं॥
 सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरे निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग
 यहै कहि भए अँतरधान तब मत्स्य प्रभु, बहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ॥
 सातवें दिवस आयौ निकट जलधि जब, नृप कहौ अब कहाँ नाव पावैं।
 आइ गइ नाव, तब रिषिन तासौं कहौ, आउ हम नृपति तुमकौं बचावै॥
 पुनि कहौ, मत्स्य हरि अब कहाँ पाइय, रिषिन कहौ, ध्यान चित माहिं धारौ।
 मत्स्य अरु सर्पु तिहिं ठौर परगट भए, बाँधि नृप नाव यों कहि उचारौ॥
 ज्यों महाराज या जलधितैं पार कियौ, भव-जलधि पार त्यों करो स्वामी।
 अहं-ममता हमैं सदा लागी रहै, मोह-मद-क्रोध-जुत मंद कामी॥
 कर्म सुख-हित करत, होत तहै दुःख नित, तऊ नर मूढ नाहिं संभारत।
 करन-कारन महराज हैं आप हो, ध्यान प्रभुकौ न मन माहिं धारत॥
 बिन तुम्हारी कृपा गति नहीं नरनिकी, जानि मोहिं आपनौ कृपा कीजै।
 जनम अरु मरनमैं सदा दुःखित देहु मोहिं ज्ञान जिहिं सदा जीजै॥
 मत्स्य भगवान कहौ ज्ञान पुनि नृपति सौं, भयो सो पुरान सब जगत जान्यौ।
 लहो नृप ज्ञान, कहौ आँखि अब मीचि तू, मत्स्य कहौ सो नृपति मान्यौ॥
 आँखिकौं खोलि जब नृपति देख्यौ बहुरि, कहौ, हरि प्रलय-माया दिखाई॥
 कहौ जो ज्ञान भगवान, सो आनि उर, नृपति निज आपु इहिं बिधि बिताई॥
 बहुरि सँखासुरहि मारि, बेद आनि दिए, चतुरमुख बिबिध अस्तुति सुनाई।
 सूरके प्रभूकी नित्य लीला नई, सकै कहि कौन, यह कछुक गाई॥

('सूरदास' १६। ४४३)

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

सूर्य उचाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्यचन्द्रमसोर्गतिम्।
 सूर्यचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु॥१
 समद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः।
 विस्तरार्थं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः॥२
 पर्यासपरिमाणं च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः।
 पर्यासपारिमाण्यात् भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम्॥३
 भवति त्रीनि माँल्लोकान् सूर्यो यस्मात् परिभ्रमन्।
 अब धातुः प्रकाशाख्यो अवनात् रविः स्मृतः॥४
 अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः।
 महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन्नर्थे निगद्यते॥५
 अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भं तु सुविस्तरम्।
 मण्डलं भास्करस्याथ योजनैस्तन्निबोधतः॥६
 नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु।
 विस्तारात् त्रिगुणश्चापि परिणाहोऽत्र मण्डले॥७
 विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी।
 अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः॥८
 समद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु।
 इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः॥९
 तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतं चाभिमानिभिः।
 अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैस्त्विह॥१०
 देवा ये वै ह्यतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च।
 तस्माद्वै साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामिर्वै वसुधातलम्॥११
 दिव्यस्य संनिवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्त्वशः।
 शतार्थकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्त्वशः स्मृता॥१२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद अब मैं सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन कर रहा हूँ। ये सूर्य और चन्द्रमा सातों द्वीपों एवं सातों समुद्रोंके विस्तारको तथा समग्र भूतलके अर्धभागको और उसके बाहरके अन्य प्रदेशोंको ये अपने प्रकाशसे उद्दासित करते हैं। ये विश्वकी अन्तिम सीमातक प्रकाश फैलाते हैं। तुलना परिभ्रमणके प्रमाणको लेकर ही विद्वान् लोग आकाशकी करते हैं। सूर्य सामान्यतः तीनों लोकोंमें शीघ्रतापूर्वक भ्रमण करते हैं। 'अब्' धातु रक्षण और प्रकाशार्थक है। प्रकाश फैलाने तथा प्राणियोंकी रक्षा करनेके कारण सूर्यको 'रवि' कहा जाता है। पुनः सूर्य और चन्द्रमाका प्रमाण बतला रहा हूँ। महनीय होनेके कारण पृथिवीके लिये 'मही' शब्दका प्रयोग किया जाता है। अब भारतवर्षका तथा सूर्य-मण्डलके व्यासका परिमाण योजनोंमें बतला रहा हूँ उसे सुनिये। सूर्य-मण्डलका परिमाण नौ हजार योजन है। इस मण्डलमें परिणाह (धेरा) विस्तारसे तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। व्यास और मण्डलकी दृष्टिसे भी सूर्यसे चन्द्रमा बहुत छोटे हैं। पुनः सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथिवीमण्डलके विस्तारका प्रमाण, जिन्हें विद्वानोंने पुराणोंमें बतलाया है, (योजनोंकी संख्यामें) बतला रहा हूँ॥१—९॥

पूर्वकालमें जो पुराणोंके ज्ञाता हो चुके हैं, वे भी आजकलके पुराणोंके तुल्य ही थे। पूर्वकालके विद्वान् एवं आधुनिक विद्वान्—दोनोंके मत इस विषयमें समान हैं। अतः वर्तमानकालिक विद्वानोंके अनुसार भूतलका परिमाण बतला रहा हूँ। आधुनिक विद्वानोंने दिव्यलोककी स्थितिको भी पृथिवीमण्डलके बराबर ही माना है। समूची पृथिवी पचास करोड़ योजनोंमें विस्तृत मानी गयी है।

१. इस अध्यायके सभी श्लोक वायुपु० ५०। ५६—१६९ (किसी प्रतिमें ५१। १—११३) तथा ब्रह्माण्डपुराणसे सर्वांशमें मिल जाते हैं। उनके श्लोक विशेष शुद्ध हैं।

२. यहाँ 'विद्वांसो ह वै देवा:' के अनुसार विद्वान् ही देवता है।

तस्याश्रार्थप्रमाणं च मेरोर्वै चातुरन्तरम्।
 मेरोर्मध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता ॥ १३
 तथा शतसहस्राणामेकोननवति पुनः।
 पञ्चाशत्त्वं सहस्राणि पृथिव्याः स तु विस्तरः ॥ १४
 पृथिव्या विस्तरं कृत्वं योजनैस्तन्निबोधत ।
 तिस्त्रः कोट्यस्तु विस्तारात्संख्यातास्तु चतुर्दिशम् ॥ १५
 विस्तरं त्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम्।
 गणितं योजनानां तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः ॥ १६
 तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः।
 इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम् ॥ १७
 तारकासंनिवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम्।
 पर्यासः संनिवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ॥ १८
 पर्यासपरिमाणं च भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम्।
 सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ॥ १९
 ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिवक्ष्यते।
 मेरोः प्राच्यां दिशायां तु मानसोत्तरमूर्धनि ॥ २०
 वस्त्वौकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता।
 दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानिसस्य तु पृष्ठतः ॥ २१
 वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे।
 प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्मानिसस्य तु मूर्धनि ॥ २२
 सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः।
 दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्धनि ॥ २३
 तुल्या महेन्द्रपुरुषापि सोमस्यापि विभावरी।
 मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् ॥ २४
 स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च।
 लोकपालोपरिष्टात् तु सर्वतो दक्षिणायने ॥ २५
 काष्टागतस्य सूर्यस्य गतिस्तत्र निबोधत।
 दक्षिणोपक्रमे सूर्यः क्षिमेषुरिव सर्पति ॥ २६

ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति।
 मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ॥ २७

वैवस्वते संयमने उद्यन् सूर्यः प्रदृश्यते।
 सुखायामर्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमेति च ॥ २८

उसका आधा भाग मेरुपर्वतके उत्तरोत्तर फैला हुआ है और मेरुपर्वतके मध्यभागमें वह चारों ओर एक करोड़ योजन विस्तारवाली कही जाती है। इसी तरह पृथ्वीके अर्धभागका विस्तार नवासी लाख, पचास हजार योजन बतलाया जाता है। अब योजनके परिमाणसे पृथ्वीके समूचे विस्तारको सुनिये। इसका विस्तार चारों दिशाओंमें तीन करोड़ योजन माना गया है। यही सातों द्वीपों और समुद्रोंसे घिरी हुई पृथ्वीका विस्तार है। पृथ्वीका आन्तरिक मण्डल बाह्य मण्डलसे तिगुना अधिक है। इस प्रकार उसका परिमाण ग्यारह करोड़ सैंतीस लाख योजन माना गया है। यही पृथ्वीके आन्तरिक मण्डलकी गणना की गयी है। आकाश-मण्डलमें जितने तारागणोंकी स्थिति है, उतना ही समग्र पृथ्वीमण्डलका विस्तार माना गया है। इस प्रकार पृथ्वीमण्डलके परिमाणके बराबर आकाशमण्डल भी है। अब ज्योतिर्गणके प्रचारकी बात सुनिये। मेरुपर्वतकी पूर्व दिशामें मानसोत्तर पर्वतके शिखरपर वस्त्वौकसारा नामकी महेन्द्रकी पुण्यमयी नगरी है, जो सुवर्णसे सुसज्जित है। पुनः मेरुकी दक्षिण दिशामें मानसपर्वतके पृष्ठभागपर संयमनी पुरी है, जिसमें सूर्यके पुत्र यमराज निवास करते हैं। पुनः मेरुकी पश्चिम दिशामें मानसपर्वतके शिखरपर बुद्धिमान् वरुणकी सुखा नामकी रमणीय पुरी है। मेरुकी उत्तर दिशामें मानसपर्वतके शिखरपर महेन्द्रपुरीके समान चन्द्रदेवकी विभावरी पुरी है। उसी मानसोत्तर पर्वतके पृष्ठभागकी चारों दिशाओंमें लोकपालगण धर्मकी व्यवस्था और लोकोंकी रक्षा करनेके लिये स्थित हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य उन लोकपालोंसे ऊपर होकर भ्रमण करते हैं ॥ १०—२५ ॥

दक्षिण दिशाका आश्रय लेनेपर सूर्यकी जैसी गति होती है, उसे सुनिये। दक्षिणायनकालमें सूर्य छोड़े गये बाणकी तरह शीघ्रगतिसे चलते हैं। वे ज्योतिश्शक्रको सदा साथ लिये रहते हैं। (इस प्रकार भ्रमण करते हुए) जिस समय सूर्य अमरावती पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय वे गगनमण्डलके मध्यभागमें रहते हैं अर्थात् मध्याह्न होता है। उसी समय वे यमराजकी संयमनीपुरीमें उदित होते हुए और विभावरी नगरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा सुखा नगरीमें आधी रात होती है।

वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा ।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥ २९
विभावर्यामर्धरात्रं माहेन्द्र्यामस्तमेव च ।
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा ॥ ३०
विभावर्या सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ।
महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः ॥ ३१
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा ।
स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत् ॥ ३२
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः ।
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणान्तेषु सर्पति ॥ ३३
उदयास्तमये वासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।
पूर्वाङ्गे चापराह्ने च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ॥ ३४
पतत्येकं तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मभिः ।
उदितो वर्धमानाभिर्मध्याह्ने तपसे रविः ॥ ३५
अतः परं ह्वसन्तीभिर्गांभिरस्तं स गच्छति ।
उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै ॥ ३६
यादृक्पुरस्तात्पति तादृक्पृष्ठे तु पार्श्वयोः ।
यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषां स उदयः स्मृतः ॥ ३७
प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते ।
सर्वेषामुत्तरे मेरुलोकालोकस्तु दक्षिणे ॥ ३८
विद्वरभावादर्कस्य भूमेलेखावृतस्य च ।
हियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥ ३९
ऊर्ध्वं शतसहस्रांशुः स्थितस्तत्र प्रदृश्यते ।
एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः ॥ ४०
त्रिंशद्वागं च मेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति ।
योजनानां सहस्रस्य इमां संख्यां निबोधत ॥ ४१
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशच्च सा स्मृता ।
पञ्चाशच्च सहस्राणि तथान्यान्यधिकानि च ॥ ४२
मौहूर्तिकी गतिहीना सूर्यस्य तु विधीयते ।
एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम् ॥ ४३
परिगच्छति सूर्योऽसौ मासं काष्ठामुदगिदनात् ।
मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने ॥ ४४

इसी प्रकार जब सूर्य मध्याह्नकालमें यमराजकी संयमनी-पुरीमें पहुँचते हैं, तब वरुणकी सुखानगरीमें उगते हुए और महेन्द्रकी वस्त्रौकसारा (अमरावती) पुरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा विभावरी पुरीमें आधी रात होती है। जब दोपहरके समय सूर्य वरुणकी सुखानगरीमें पहुँचते हैं, तब चन्द्रदेवकी पुरी विभावरीमें उदय होते हैं। जब सूर्य महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें उदय होते हैं, तब वरुणकी सुखानगरीमें अस्त होते (दीखते) हैं और संयमनीपुरीमें आधी रात होती है। इस प्रकार सूर्य अलातचक्र (जलती बनेठी)-की भाँति बड़ी शीघ्रतासे चक्कर लगाते हैं ॥ २६—३२ ॥

इस प्रकार स्वयं भ्रमण करते हुए सूर्य नक्षत्रोंको भी भ्रमण कराते हैं। वे चारों दक्षिणान्त पार्श्व भागोंमें चलते रहते हैं। उदय और अस्तके समय वे पुनः-पुनः उदय और अस्त होते रहते हैं और पूर्वाङ्ग एवं अपराह्नमें दो-दो देवपुरियोंमें तथा मध्याह्नके समय एक पुरीमें पहुँचते हैं। इस प्रकार सूर्य उदय होकर अपनी बढ़ती हुई तेजस्विनी किरणोंसे दोपहरके समय तपते हैं और उसके बाद धीरे-धीरे ह्रासको प्राप्त होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त हो जाते हैं। सूर्यके इसी उदय और अस्तसे पूर्व और पश्चिम दिशाका ज्ञान होता है। यों तो सूर्य जैसे पूर्व दिशामें तपते हैं, उसी तरह पश्चिम तथा पार्श्वभाग (उत्तर और दक्षिण)-में भी प्रकाश फैलाते हैं, परंतु उन दिशाओंमें जहाँ सूर्यका उदय दीखता है, वही उदय-स्थान कहलाता है तथा जिस दिशामें सूर्य अदृश्य हो जाते हैं, उसे अस्त-स्थान कहते हैं। मेरुपर्वत सभी पर्वतोंसे उत्तर तथा लोकालोक पर्वत दक्षिण दिशामें स्थित है, इसलिये सूर्यके बहुत दूर हो जाने तथा पृथ्वीकी छायासे आवृत होनेके कारण उनकी किरणें अवरुद्ध हो जाती हैं, इसी कारण सूर्य रातमें नहीं दीख पड़ते। इस प्रकार एक लाख किरणोंसे सुशोभित सूर्य जब पुष्करद्वीपके मध्यभागमें पहुँचते हैं, तब वहाँ ऊँचाईपर स्थित होनेके कारण दीख पड़ते हैं। सूर्य एक मुहूर्त (दो घड़ी)-में पृथ्वीके तीसवें भागतक पहुँच जाते हैं। उनकी गतिका प्रमाण योजनोंके हजारोंकी गणनामें सुनिये। सूर्यकी एक मुहूर्तकी गतिका परिमाण एकतीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक बतलाया जाता है ॥ ३३—४२ ॥

इसी क्रमसे जब सूर्य दक्षिण दिशामें जाते हैं, तब (वहाँ छः महीनेतक भ्रमण करनेके पश्चात् पुनः) सातवें मासमें उत्तर दिशाकी ओर लौटते हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें भ्रमण करते हैं।

मानसोन्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम्।
 सर्वतो दक्षिणस्यां तु काष्ठायां तन्निबोधत ॥ ४५
 नव कोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम्।
 तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ ४६
 अहोरात्रात् पतञ्जस्य गतिरेषा विधीयते ।
 दक्षिणादिइनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ॥ ४७
 क्षीरोदस्य समुद्रस्योन्तरतोऽपि दिशं चरन्।
 मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ॥ ४८
 तिस्रः कोट्यस्तु सम्पूर्णा विषुवस्यापि मण्डलम्।
 तथा शतसहस्राणि विंशत्येकाधिकानि तु ॥ ४९
 श्रवणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत्।
 गोमेदस्य परे द्वीपे उत्तरां च दिशं चरन् ॥ ५०
 उत्तरायाः प्रमाणं तु काष्ठाया मण्डलस्य तु ।
 दक्षिणोन्तरमध्यानि तानि विद्याद् यथाक्रमम् ॥ ५१
 स्थानं जरद्रवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम्।
 वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ॥ ५२
 नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्राजवीथिस्तु दक्षिणा ।
 उभे आषाढ़मूलं तु अजवीथ्युदयास्त्रयः ॥ ५३
 अभिजित्यूर्वतः स्वातिं नागवीथ्युदयास्त्रयः ।
 अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथ्यस्त्रयः स्मृताः ॥ ५४
 रोहिण्याद्र्वा मृगशिरो नागवीथिरिति स्मृता ।
 पुष्यश्लेषापुनर्वस्वां वीथी चैरावती स्मृता ॥ ५५
 तिस्रस्तु वीथयो होता उत्तरो मार्ग उच्यते ।
 पूर्वउत्तरफाल्युन्यौ मघा चैवार्षभी भवेत् ॥ ५६
 पूर्वोत्तरप्रोष्टपदौ गोवीथी रेवती स्मृता ।
 श्रवणं च धनिष्ठा च वारणं च जरद्रवम् ॥ ५७
 एतास्तु वीथयस्तिस्त्रो मध्यमो मार्ग उच्यते ।
 हस्तश्चित्रा तथा स्वाती ह्राजवीथिरिति स्मृता ॥ ५८
 ज्येष्ठा विशाखा मैत्रं च मृगवीथी तथोच्यते ।
 मूलं पूर्वोत्तराषाढे वीथी वैश्वानरी भवेत् ॥ ५९
 स्मृतास्तिस्त्रस्तु वीथ्यस्ता मार्गे वै दक्षिणे पुनः ।
 काष्ठयोन्तरं चैतद् वक्ष्यते योजनैः पुनः ॥ ६०
 एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत् वै स्मृतम्।
 शतानि त्रीणि चान्यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च ॥ ६१
 काष्ठयोन्तरं होतद् योजनानां प्रकीर्तिंतम्।
 काष्ठयोलेञ्चयोश्चैव अयने दक्षिणोन्तरे ॥ ६२

मानसोन्तर और मेरु पर्वतके बीचमें पुष्करद्वीपसे तिगुना अन्तर है। अब दक्षिण दिशामें सूर्यकी गतिका परिमाण सुनिये। यह (दक्षिणायन-) मण्डल नौ करोड़ पैंतालीस लाख योजन विस्तृत बतलाया गया है। यह सूर्यकी एक दिन-रातकी गति है। दक्षिणायनसे निवृत्त होकर जब सूर्य विषुव (खगोलीय विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तका कटान-विन्दु) स्थानपर स्थित होते हैं, तब वे क्षीरसागरकी उत्तर दिशामें भ्रमण करते हैं। अब विषुवन्मण्डलका परिमाण योजनोंमें सुनिये। वह विषुवन्मण्डल तीन करोड़ इक्कीस लाख योजनके परिमाणवाला है। श्रवणनक्षत्रमें जब सूर्य उत्तर दिशामें चले जाते हैं, तब वे गोमेदद्वीपके बादवाले द्वीपकी उत्तर दिशामें भ्रमण करते हैं। अब उत्तर दिशाके मण्डलका तथा दक्षिण और उत्तरके मध्यभागका प्रमाण क्रमशः सुनिये। इनके मध्यमें जरद्रव, उत्तरमें ऐरावत और दक्षिणमें वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततः निर्दिष्ट किये गये हैं। उत्तर दिशामें सूर्यके मार्गको नागवीथी तथा दक्षिणदिशाके मार्गको अजवीथी कहते हैं ॥ ४३—५२ १/२ ॥

दोनों आषाढ़ अर्थात् पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ और मूल—ये तीनों अजवीथी हैं। अभिजित्, श्रवण और स्वाती—ये तीनों नागवीथी हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीनों नागवीथी नामसे प्रसिद्ध हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा भी नागवीथी कहलाते हैं। पुष्य, श्लेषा और पुनर्वसु—ये तीनों ऐरावती वीथी कहे जाते हैं। ये तीनों वीथियाँ उत्तर दिशाका मार्ग कहलाती हैं। पूर्वाफाल्युनी, उत्तराफाल्युनी और मघा—ये तीनों 'आर्षभी' वीथी हैं। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये तीनों 'गोवीथी' नामसे पुकारे जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये तीनों 'जरद्रववीथी' हैं। ये तीनों वीथियाँ मध्यम मार्ग कहलाती हैं। हस्त, चित्रा और स्वाती—ये तीनों 'अजवीथी' कहलाते हैं। ज्येष्ठा, विशाखा और अनुराधा—ये 'मृगवीथी' कहलाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—ये 'वैश्वानर'-वीथी हैं। ये तीनों वीथियाँ दक्षिण-मार्गमें बतलायी गयी हैं। अब उत्तर और दक्षिण—दोनों दिशाओंका अन्तर योजनोंमें बतला रहा हूँ। इन दोनों दिशाओंका अन्तर एकतीस लाख तीन हजार छः सौ योजन बतलाया जाता है। अब उत्तरायण और दक्षिणायन-कालमें दोनों दिशाओं और दोनों रेखाओंका

ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत ।
एकैकमन्तरं तस्या नियुतान्येकसप्तिः ॥ ६३
सहस्राण्यतिरिक्ता च ततोऽन्या पञ्चविंशतिः ।
लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन् ॥ ६४
अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युतरायणे ।
बाह्यतो दक्षिणैव सततं सूर्यमण्डलम् ॥ ६५
चरन्नसावुदीच्यां च हाशीत्या मण्डलाच्छतम् ।
अभ्यन्तरं स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु ॥ ६६
प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानां निबोधत ।
योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम् ॥ ६७
अधिकान्यष्टपञ्चाशत्योजनानि तु वै पुनः ।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते ॥ ६८
अहस्तु चरते नाभेः सूर्यो वै मण्डलं क्रमात् ।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा ॥ ६९
दक्षिणे चक्रवत्सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते ।
तस्मात् प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति ॥ ७०
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तेदक्षिणायने ।
त्रयोदशार्धमृक्षाणां मध्ये चरति मण्डलम् ॥ ७१
मुहूर्तेस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति ॥ ७२
उदग्याने तथा सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ।
तस्माद् दीर्घेण कालेन भूमिं सोऽल्पां प्रसर्पति ॥ ७३
सूर्योऽष्टादशभिरहो मुहूर्तेरुदग्याने ।
त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः ।
मुहूर्तेस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ॥ ७४
ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रं तु भ्रमते पुनः ।
मृत्यिष्ठ इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा ॥ ७५
मुहूर्तेस्त्रिंशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु ॥ ७६
उत्तरक्रमणेऽर्कस्य दिवा मन्दगतिः स्मृता ।
तस्यैव तु पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ॥ ७७
दक्षिणप्रक्रमे वापि दिवा शीघ्रं विधीयते ।
गतिः सूर्यस्य वै नक्तं मन्दा चापि विधीयते ॥ ७८

अन्तर योजनोंमें परिगणित करके बतला रहा हूँ, सुनिये ।
उनमें एकसे दूसरीका अन्तर एकहतर लाख पचीस हजार योजन है । सूर्य दोनों दिशाओं और रेखाओंके बाहरी और भीतरी भागमें चक्रकर लगाते हैं । यह सूर्यमण्डल सदा उत्तरायणमें मण्डलोंके भीतर और दक्षिणायनमें बाहरसे चक्रकर लगाता है । उत्तर दिशामें विचरते हुए सूर्य एक सौ अस्सी मण्डलोंके भीतरसे गुजरते हुए उन्हें पार करते हैं ॥ ५३—६६ ॥

अब मण्डलका प्रमाण योजनोंकी गणनामें सुनिये ।
इसका परिमाण अठारह हजार अड्डावन योजन बतलाया जाता है । इस मण्डलका व्यास तिरछा जानना चाहिये ।
सूर्य दिनभर कुम्हारके चाककी तरह नाभिमण्डलपर चक्रकर लगाते हैं । सूर्यकी भाँति चन्द्रमा भी वैसा ही भ्रमण करते हैं । उसी प्रकार दक्षिणायनमें भी सूर्य चाककी तरह शीघ्रतापूर्वक चलते हुए उसे पार करते हैं । इसी कारण वे इतनी विस्तृत भूमिको थोड़े ही समयमें पार कर जाते हैं । दक्षिणायनके समय सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलको शीघ्रतापूर्वक मध्यभागसे गुजरते हुए बारह मुहूर्तोंमें पार करते हैं, किंतु रातके समय उन्हें नक्षत्रोंको पार करनेमें उन्हें अठारह मुहूर्त लगता है । जैसे कुम्हारके चाकके मध्यभागमें स्थित वस्तुकी गति मन्द हो जाती है, वैसे ही उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलते हैं । इसी कारण थोड़ी-सी भूमि पार करनेमें उन्हें अधिक समय लगाना पड़ता है । उत्तरायणके समय सूर्य दिनके अठारह मुहूर्तोंमें तेरह नक्षत्रोंके मध्यमें विचरते हैं, किंतु रातमें उन्हें नक्षत्रोंको पार करनेमें उन्हें बारह मुहूर्त लगते हैं । वह चक्र उन दोनों गतियोंसे मन्दतर गतिमें धूमता है । चाकके मध्यभागमें रखे हुए मृत्यिष्ठकी तरह ध्रुव भी उस चक्रके मध्यमें स्थित होकर धूमते रहते हैं । ध्रुव तीस मुहूर्त अर्थात् दिन-रातभरमें दोनों दिशाओंके मध्यवर्ती मण्डलोंमें भ्रमण करते हैं ॥ ६७—७६ ॥

उत्तरायणके समय दिनमें सूर्यकी गति मन्द और रात्रिके समय उन्हें सूर्यकी गति तेज बतलायी गयी है । उसी तरह दक्षिणायन-कालमें सूर्यकी गति दिनमें तेज और रात्रिमें मन्द कही गयी है ।

एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु।
 अजवीथ्यां दक्षिणायां लोकालोकस्य चोत्तरम्॥ ७९
 लोकसंतानतो ह्येष वैश्वानरपथाद् बहिः।
 व्युष्टिर्यावत्प्रभा सौरी पुष्करात् सम्प्रवर्तते॥ ८०
 पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः।
 योजनानां सहस्राणि दशोर्ध्वं चोच्छ्रतो गिरिः॥ ८१
 प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः।
 नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह॥ ८२
 अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः।
 एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम्॥ ८३
 लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता।
 लोकालोकौ तु संधत्ते तस्मात्सूर्यः परिभ्रमन्॥ ८४
 तस्मात् संध्येति तामाहुरुषाव्युष्टिर्थान्तरम्।
 उषा रात्रिः स्मृता विप्रैव्युष्टिश्चापि अहःस्मृतम्॥ ८५
 त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहस्ते दश पञ्च च।
 हासो वृद्धिरहर्भगैर्दिवसानां यथा तु वै॥ ८६
 संध्यामुहूर्तमात्रायां हासवृद्धी तु ते स्मृते।
 लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै॥ ८७
 प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागांश्चाहुश्च पञ्च च।
 तस्मात् प्रातर्गतात् कालान्मुहूर्ताः सङ्घवस्त्रयः॥ ८८
 मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात् कालादनन्तरम्।
 तस्मान्मध्यंदिनात् कालादपराह्न इति स्मृतः॥ ८९
 त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एष स्मृतो बुधैः।
 अपराह्नव्यतीताच्च कालः सायं स उच्यते॥ ९०
 दश पञ्च मुहूर्ताह्नो मुहूर्तस्त्रय एव च।
 दश पञ्चमुहूर्त वै अहस्तु विषुवे स्मृतम्॥ ९१
 वर्धत्यतो हसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे।
 अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः॥ ९२

इस प्रकार अपनी विशेष गतिसे रात-दिनका विभाजन करते हुए सूर्य दक्षिण दिशामें अजवीथीसे गुजरते हुए लोकालोक पर्वतकी उत्तर दिशामें पहुँचते हैं। वहाँसे लोक-संतानक और वैश्वानर नामक पर्वतोंके बाहरी मार्गसे चलते हुए वे पुष्करद्वीपपर पहुँचते हैं। वहाँ सूर्यकी प्रभातकालिकी प्रभा होती है। इस मार्गके पार्श्वभागमें लोकालोक पर्वत पड़ता है, जो दस हजार योजन ऊँचा है। यह पर्वत मण्डलाकार है और इसका एक भाग प्रकाशयुक्त एवं दूसरा भाग तिमिराच्छन्न रहता है। इस लोकालोक पर्वतके भीतर सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागणोंके साथ सभी ग्रह प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार जहाँतक प्रकाश होता है, उतनेको ही लोक माना गया है और शेष भाग निरालोक (तमसाच्छन्न) है। 'लोक' धातुका अर्थ दर्शन अर्थात् आलोकन है, इसलिये जो आलोक दृष्टिपथसे दूर है, वह अनालोकता है। सूर्य परिभ्रमण करते हुए जिस समय लोकालोकपर्वत (प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशकी संधि)-पर पहुँचते हैं, उस समयको संध्या कहते हैं। उषःकाल और व्युष्टिमें अन्तर है। ब्राह्मणोंने उषःकालको रात्रिमें और व्युष्टिको दिनमें परिगणित किया है॥ ७७—८५॥

तीस कलाका एक मुहूर्त होता है और एक दिनमें पंद्रह मुहूर्त होते हैं। जिस प्रकार अहर्गणके हिसाबसे दिनोंकी हास-वृद्धि होती है, उसी तरह संध्याके मुहूर्तमें भी हास-वृद्धि माने गये हैं। तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे दिनके पाँच भाग माने गये हैं। सूर्योदय होनेके पश्चात् तीन मुहूर्तकका काल प्रातःकाल कहा जाता है। उस प्रातःकालके व्यतीत होनेपर तीन मुहूर्तकका समय संगवकाल कहलाता है। उस संगवकालके बाद तीन मुहूर्तक मध्याह्न नामसे अभिहित होता है। उस मध्याह्नकालके बादका समय अपराह्न कहा जाता है। इसका भी समय विद्वानोंने तीन मुहूर्त ही माना है। अपराह्नके बीत जानेके बादका काल सायं कहलाता है। इस प्रकार पंद्रह मुहूर्तोंका दिन तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे पाँच भागोंमें विभक्त है। इसी प्रकार (रातमें भी १५ मुहूर्त होती है) दोनों विषुवोंमें (ठीक) पंद्रह मुहूर्तका दिन होता है—शरद् और वसन्त-ऋतुओंके मध्य (मेष-तुलासंक्रान्ति)-का समय विषुव कहलाता है, उत्तरायणमें दिन रात्रिको दक्षिणायनमें रात्रि दिनको

शरद्वसन्तयोर्मध्यं विषुवं तु विधीयते ।
 आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकाच्चालोक उच्यते ॥ ९३
 लोकपाला: स्थितास्त्र लोकालोकस्य मध्यतः ।
 चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥ ९४
 सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः ।
 हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान् राजसश्च सः ॥ ९५
 निर्द्वन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः ।
 लोकपाला: स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥ ९६
 उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं देवर्षिसेवितम् ।
 पितृयाणः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः ॥ ९७
 तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः ।
 लोकस्य संतानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः ॥ ९८
 भूतारम्भकृतं कर्म आशिषश्च विशाम्पते ।
 प्रारम्भन्ते लोककास्मैतेषां पन्थाः स दक्षिणः ॥ ९९
 चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
 संतस्तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥ १००
 जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु ते ।
 पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥ १०१
 एवमावर्तमानास्ते वर्तन्त्याभूतसम्प्लवम् ।
 अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम् ॥ १०२
 सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याभूतसम्प्लवम् ।
 क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये शमशानानि भेजिरे ॥ १०३
 लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च ।
 इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै ॥ १०४
 तथा कामकृतेनेह सेवनाद् विषयस्य च ।
 इत्येतैः कारणैः सिद्धाः शमशानानीह भेजिरे ॥ १०५
 प्रजैषिणः सप्तर्षयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।
 संततिं ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युजितस्तु तैः ॥ १०६
 अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्धरेतसाम् ।
 उदक्षपन्थानमाश्रित्य तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥ १०७

ग्रसती है। जहाँतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, उसे लोक कहते हैं और उस लोकके बाद जो तमसाच्छ्रव प्रदेश है, उसे अलोक कहा जाता है। इसी लोक और अलोकके मध्यमें स्थित (लोकालोक) पर्वतपर चारों लोकपाल महाप्रलयपर्यन्त निवास करते हैं। उनके नाम हैं—वैराज सुधामा, प्रजापति कर्दम, पर्जन्य हिरण्यरोमा और राजस केतुमान्। ये सभी लोकपाल सुख-दुःख आदि द्वन्द्व, अभिमान, आलस्य और परिग्रहसे रहित होकर लोकालोकके चारों दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८६—९६ ॥

लोकालोक पर्वतका जो उत्तरी शिखर है, वह अगस्त्यशिखर कहलाता है। देवर्षिगण उसका सेवन करते हैं। वह वैश्वानर-मार्गसे बाहर है और पितृयाण-मार्गके नामसे प्रसिद्ध है। उस पितृयाण-मार्गपर प्रजाभिलाषी अग्निहोत्री तथा लोगोंको संतान प्रदान करनेवाले ऋषिगण निवास करते हैं। राजन्! लौकिक कामनाओंसे युक्त वे ऋषिगण अपने आशीर्वादके प्रयोगसे प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मको सफल बनाते हैं। उनका मार्ग दक्षिणायनमें है। वे प्रत्येक युगमें अपनी उग्र तपस्या तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादाद्वारा मर्यादासे सखलित हुए धर्मकी पुनः स्थापना करते हैं। इनमें जो पहले उत्पन्न हुए थे, वे अपनेसे पीछे उत्पन्न होनेवालोंके घरोंमें जन्म लेते हैं और पीछे उत्पन्न होनेवाले मृत्युके पश्चात् पूर्वजोंके गृहोंमें चले जाते हैं। इस प्रकार वे प्रलयपर्यन्त आवागमनके चक्करमें पड़े रहते हैं। इन क्रियानिष्ठ गृहस्थ ऋषियोंकी संख्या अठासी हजार है। ये सूर्यके दक्षिण मार्गका आश्रय लेकर प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। उन्हें शमशानकी शरण लेनी पड़ती है अर्थात् ये मृत्युभागी होते हैं। लोक-व्यवहारकी रक्षाके लिये प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मोंकी पूर्ति, इच्छा, द्वेषपरता, स्त्री-सहवास तथा स्वेच्छापूर्वक सांसारिक विषयभोगोंका सेवन—इन्हीं कारणोंसे उन ऋषियोंको इस लोकमें सिद्ध होते हुए भी शमशानमें जाना पड़ता है ॥ ९७—१०५ ॥

द्वापरयुगमें प्रजाभिलाषी सात ऋषि इस मृत्युलोकमें उत्पन्न हुए थे, किंतु आगे चलकर उन्हें संततिसे घृणा हो गयी, जिससे उन्होंने मृत्युको जीत लिया। इन ऊर्ध्वरेता ऋषियोंकी संख्या अठासी हजार है। ये सूर्यके उत्तर मार्गका आश्रय लेकर प्रलयपर्यन्त विद्यमान रहते हैं।

ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात्।
 ईर्ष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात्॥ १०८
 ततोऽन्यकामसंयोगशब्दादेवोषदर्शनात् ।
 इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे॥ १०९
 आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ।
 त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मारगामिणाम्॥ ११०
 ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम् ।
 आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरेतसः॥ १११
 ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः ।
 एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम्॥ ११२
 यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
 धर्मे ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये तु लोकस्य काङ्क्षिणः॥ ११३

इति श्रीमात्ये महापुराणे भुवनकोशे चन्द्रसूर्यभुवनविस्तारो नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२४ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें चन्द्र-सूर्य-भुवन-विस्तार नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२४ ॥

वे लोक-कल्याणकर्ता, स्त्री-पुरुष-सम्पर्करहित, ईर्ष्या, द्वे आदिसे निवृत्त, प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मोंके त्यागी तथा अन्यान्य कामसम्बन्धी वासनामय शब्दोंमें दोषदर्शी होते हैं। इन शुद्ध कारणोंसे सम्पत्र होनेके कारण उन्हें अमरताकी प्राप्ति हुई। प्रलयपर्यन्त स्थित रहनेवाले नैष्ठिक ऋषियोंका त्रिलोकीकी स्थितितक वर्तमान रहना अमरत्व कहलाता है। यह कामासक्त व्यक्तियोंको नहीं प्राप्त होता। ब्रह्महत्याजन्य पाप और अश्वमेधजन्य पुण्यसे ही इनमें अन्तर आता है। (भाव यह कि जैसे धोर पाप और महान् पुण्य प्रलयपर्यन्त जीवात्माके साथ लगे रहते हैं, बीचमें नष्ट नहीं होते, वैसे ही ऊर्ध्वरेताका शरीर भी तबतक स्थित रहता है।) सप्तर्षिमण्डलके ऊपर उत्तर दिशामें जहाँ ध्रुवका निवास है, वही भगवान् विष्णुका तीसरा दिव्य पद स्थित हुआ था, जो (अब भी) आकाशमें उद्दासित होता रहता है। भगवान् विष्णुके उस परमपदको प्राप्त कर लेनेपर जीवोंको शोक नहीं करना पड़ता। इसलिये जिन्हें ध्रुवलोक प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा होती है, वे सदा धर्म-सम्पादनमें ही लगे रहते हैं॥ १०६—११३ ॥

एक सौ पचीसवाँ अध्याय

सूर्यकी गति और उनके रथका वर्णन

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामबुवल्लौमहर्षणिम्।
 सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणां चैव सर्वशः॥ १

ऋषय ऊचुः

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतीर्षि रविमण्डले ।
 अव्यूहैनैव सर्वाणि तथा चासंकरेण वा॥ २
 कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ।
 एतद् वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम॥ ३

सूत उवाच

भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत ।
 प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत् सम्मोहयति वै प्रजाः॥ ४

इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाकी गति तथा सभी ग्रहोंके गतिचारकी सारी दिव्य कथाको सुनकर शौनकादि ऋषिगण लोमहर्षणके पुत्र सूतजीसे बोले॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! ये ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिर्गण तिर्यग्व्यूहमें निबद्ध हो सूर्यमण्डलमें किस प्रकार घूमते हैं? ये सभी परस्पर मिलकर घूमते हैं अथवा पृथक्-पृथक्? इन्हें कोई घुमाता है या ये स्वयं घूमते हैं? हमें इस रहस्यको जाननेकी विशेष उत्कण्ठा है, अतः आप इसका वर्णन कीजिये॥ २-३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! यह विषय प्राणियोंको मोहमें डाल देनेवाला है; क्योंकि यह प्रत्यक्षरूपसे दृश्य होनेपर भी प्रजाओंको मोहित कर देता है। मैं इसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये!

योऽसौ चतुर्दशक्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः ।
 उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि ॥ ५
 सैष भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
 भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥ ६
 ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषां गणः ।
 वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धः प्रसर्पति ॥ ७
 तेषां भेदाश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः ।
 अस्तोदयास्तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ॥ ८
 विषुवदग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम् ।
 जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः ॥ ९
 द्वितीय आवहन् वायुमेघास्ते त्वभिसंश्रिताः ।
 इतो योजनमात्राच्च अध्यर्धविकृता अपि ॥ १०
 वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासारः प्रकीर्तिः ।
 पुष्करावर्तका नाम ते मेघाः पक्षसम्भवाः ॥ ११
 शक्रेण पक्षाशिष्ठन्ना वै पर्वतानां महौजसा ।
 कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम् ॥ १२
 पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः ।
 पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः ॥ १३
 नानास्तपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते ।
 कल्पान्तवृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्रेनियामकाः ॥ १४
 वाय्वाधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः ।
 यान्यस्याण्डस्य भिन्नस्य प्राकृतान्यभवंस्तदा ॥ १५
 यस्मिन् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः ।
 तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः ॥ १६
 तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
 तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥ १७
 गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह ।
 कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥ १८

आकाशमण्डलमें जो यह (चौदह) नक्षत्रोंके मध्यमें स्थित शिशुमारं नामक चक्र है वही उत्तानपादका पुत्र ध्रुव है, जो (उस चक्रमें) मेंढीके समान है। वह ध्रुव स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहोंके साथ सूर्य और चन्द्रमाको भी घुमाता है। नक्षत्रगण भी चक्रकी भाँति धूमते हुए ध्रुवके पीछे-पीछे चलते हैं। जो ज्योतिर्गण वायुमय बन्धनोंद्वारा ध्रुवमें निबद्ध हैं, वह ध्रुवके मानसिक संकल्पसे ही धूमता है। उन ज्योतिर्गणोंके भेद, योग, कालका निश्चय, अस्त, उदय, उत्पात, उत्तरायण एवं दक्षिणायनमें गमन, विषुवत् रेखापर स्थिति और ग्रहोंके वर्ण आदि सभी कार्य ध्रुवकी प्रेरणासे होते हैं। (भगणके नीचे मेघ हैं।) जिनसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है, उन मेघोंको जीमूत कहते हैं। वे मेघ यहाँसे एक योजन दूर आवह नामक दूसरी वायुके आश्रयपर टिके हुए हैं। उनमें कुछ विकार उत्पन्न हो जानेपर वे ही वृष्टि करते हैं, जो महावृष्टि कही जाती है। पूर्वकालमें महान् ओजस्वी इन्द्रने प्राणियोंके कल्पाणकी भावनासे स्वच्छन्दचारी एवं समृद्धिशाली पर्वतोंके पंखोंको काट डाला था। उन पंखोंसे उत्पन्न हुए मेघोंको पुष्करावर्तक कहते हैं। पर्वतोंके पंखोंका नाम पुष्कर था, वे बहुत बड़े-बड़े और जलसे भी परिपूर्ण थे, इसी कारण वे मेघ भी पुष्करावर्तक नामसे कहे गये हैं। ये अनेकों प्रकारके रूप धारण करनेवाले, महान् भयंकर गर्जनासे युक्त, कल्पान्तके समय वृष्टि करनेवाले, कल्पान्तकी अग्निके प्रशामक, अमृतयुक्त और कल्प अर्थात् प्रलयके साधक हैं ॥ ४—१४ ॥

वे वायुके आधारपर चलते-फिरते हैं। इस अण्डके विदीर्ण होनेपर उससे जो प्राकृतिक कपाल निकले थे और जिसमें सामर्थ्यशाली स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे, उन्हीं अण्डकपालोंको सभी मेघोंके रूपमें बतलाया जाता है। उन सभी मेघोंको समानरूपसे तृप्त करनेवाला धूम है। उनमें पर्जन्य नामक मेघ सबसे श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त ऐरावत्, वामन, अङ्गन आदि चार दिग्गज हैं। हाथी, पर्वत, मेघ और सर्प—इन सबका कुल एक है जो दो भागोंमें विभक्त हो गया है; परंतु इनकी योनि (उत्पत्ति-स्थान) एक ही है, जो जल नामसे कही जाती

१. शिशुमार (सूँस) एक जलीय जन्तु होता है, जो ग्रायः सर्पवत् वृत्ताकार कुण्डल (गेंडुर) मारकर स्थित रहता है। उसके समान स्थितिको 'शिशुमार' चक्र कहते हैं। उसीके समान गोल होनेसे नक्षत्रमण्डलकी उससे उपमा दी गयी है।

२. दौरीके केन्द्रमें स्थित खम्भेको मेंढी कहते हैं। उसके आश्रयपर कई बैल चलकर अन्रकणको दाँते हैं। इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण देखना चाहिये।

पर्जन्यो दिग्गजाश्रैव हेमन्ते शीतसम्भवम्।
 तुषारवर्षं वर्षन्ति वृद्धा ह्यन्नविवृद्धये ॥ १९
 घष्टः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः।
 योऽसौ बिभर्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ॥ २०
 दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम्।
 तस्या विस्पन्दितं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ॥ २१
 शीकरान् सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः।
 दक्षिणे गिरियोऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ॥ २२
 उदन् हिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे।
 पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥ २३
 तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत् तुषारसमुद्भवम्।
 ततो हिमवतो वायुहिमं तत्र समुद्भवम् ॥ २४
 आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चमानो महागिरिम्।
 हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ॥ २५
 इभास्ये च ततः पश्चादिदं भूतविवृद्धये।
 वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग् वृष्टिविवृद्धये ॥ २६
 मेघाश्राप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम्।
 सूर्य एव तु वृष्टीनां स्नष्टा समुपदिश्यते ॥ २७
 वर्षं धर्मं हिमं रात्रिं संध्ये चैव दिनं तथा।
 शुभाशुभफलानीह धुवात् सर्वं प्रवर्तते ॥ २८
 ध्रुवेणाधिष्ठिताश्रापः सूर्यों संगृह्य तिष्ठति।
 सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यानुश्चिताश्र याः ॥ २९
 दद्यमानेषु तेष्वेह जङ्गमस्थावरेषु च।
 धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रमन्तीह सर्वशः ॥ ३०
 तेन चाब्धाणि जायन्ते स्थानमब्धमयं स्मृतम्।
 तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥ ३१
 समुद्राद् वायुसंयोगाद् वहन्त्यापो गभस्तयः।
 ततस्वृतुवशात्काले परिवर्तन् दिवाकरः ॥ ३२
 नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लैस्तु रश्मिभिः।
 अब्धस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ॥ ३३
 ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये।
 वायुभिः स्तनितं चैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः ॥ ३४

है। पर्जन्य मेघ और चारों वृद्ध दिग्गज हेमन्त-ऋतुमें अनकी वृद्धिके लिये शीतसे उत्पन्न हुए तुषारकी वर्षा करते हैं। परिवह नामक छठी वायु इनका आश्रय है। यह ऐश्वर्यशाली पवन आकाशगामिनी गङ्गाको, जो दिव्य अमृतरूपी जलसे परिपूर्ण, पुण्यमयी तथा त्रिपथगा नामसे विख्यात हैं, धारण करता है, गङ्गासे निकले हुए जलको दिग्गज अपने मोटे-मोटे शुण्डोंसे फुहरेके रूपमें छोड़ते हैं। उसे नीहार (कुहासा) कहते हैं। दक्षिण पार्श्वमें जो पर्वत है, वह हेमकूट नामसे प्रसिद्ध है। वह हिमालय पर्वतके उत्तर और दक्षिण—दोनों दिशाओंमें फैला हुआ है। वहाँ पुण्ड्र नामक एक प्रसिद्ध नगर है। उसी नगरमें वह तुषारसे उत्पन्न हुई वर्षा होती है। तदनन्तर हिमवान् पर्वतसे उद्भूत हुई वायु वहाँ उत्पन्न हुए शीकरोंको अपने साथ ले आती है और बड़े वेगसे उस महान् गिरिको सींचती हुई उसका अतिक्रमण करके इभास्य नामक वर्षमें निकल जाती है। तत्पश्चात् प्राणियोंकी वृद्धिके लिये वहाँ शेष वृष्टि होती है। पहले जिन दो वर्षोंका वर्णन किया गया है, उनमें अच्छी तरह वृष्टि होती है। इस प्रकार मैंने मेघों तथा उनसे उत्पन्न हुई सारी वृष्टिका वर्णन कर दिया ॥ १५—२६ १ ॥

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टियोंके मूल कारण कहे जाते हैं। इस लोकमें वर्षा, धूप, हिम, रात्रि, दिन, दोनों संध्याएँ और शुभ एवं अशुभ कर्मोंके फल ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवद्वारा अधिष्ठित जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। जल सभी प्राणियोंके शरीरोंमें परमाणुरूपसे स्थित है। इसी कारण स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंके शरीरोंके जलाये जानेपर उनमेंसे वह जल धुएँके रूपमें बाहर निकलता है। उसी धूमसे बादल बनते हैं, इसलिये धूमको अभ्रमय स्थान कहा जाता है। सूर्य अपनी तेजोमयी किरणोंद्वारा सभी लोक (स्थानों)-से जल ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार वे ही किरणें वायुके संयोगसे समुद्रसे भी जल खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ऋतुओंके अनुसार समय-समयपर जलको परिवर्तित कर अपनी क्षेत्र किरणोंद्वारा वह शुद्ध जल मेघोंको देते हैं। तब वायुद्वारा प्रेरित हुआ वह मेघस्थित जल वर्षके रूपमें भूतलपर गिरता है। इस प्रकार सूर्य सभी प्राणियोंकी समृद्धिके निमित्त छः महीनेतक वर्षा करते हैं। उस समय वायुके आघातसे मेघ-निर्घोष भी होता है। (बिजली भी चमकती है।) ये बिजलियाँ अग्रिसे प्रादुर्भूत बतलायी जाती हैं।

मेहनाच्च मिहेर्थातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ते ततो ह्यापस्तस्मादभ्रस्य वै स्थितिः ।
स्तष्टासौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ॥ ३५
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुवृष्टिं संहरते पुनः ।
ग्रहान्निवृत्त्या सूर्यान्तु चरते ऋक्षमण्डलम् ॥ ३६
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम् ।
अतः सूर्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते ।
स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणाभिना ॥ ३७
हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना ।
चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पिणा ॥ ३८
शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते ।
द्विगुणश्च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः ॥ ३९
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु ।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः ॥ ४०
छन्दोभिर्वाजिस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः ।
वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः ॥ ४१
तेनासौ चरति व्योम्नि भास्वाननुदिनं दिवि ।
अथाङ्गानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य च ।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् ॥ ४२
अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः ।
अराः संवत्सरास्तस्य नेत्र्यः षडृतवः स्मृताः ॥ ४३
रात्रिर्वर्सथो धर्मश्च ध्वज ऊर्ध्वं व्यवस्थितः ।
अक्षकोट्योर्युगान्यस्य आर्तवाहाः कलाः स्मृताः ॥ ४४
तस्य काष्ठा स्मृताधोणा दन्तपङ्कवित्तः क्षणास्तु वै ।
निमेषश्वानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता ॥ ४५
युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ।
सप्तश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वायुरहसा ॥ ४६
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप्तथैव च ।
पङ्कवितश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमः ॥ ४७

‘मिह सेचने’ अर्थात् ‘मिह’ धातु सेचन अथवा मेहनके अर्थमें प्रयुक्त होती है, इसलिये ‘मिह’—धातुसे मेघ शब्द निष्पत्र होता है। इसी प्रकार ‘अपो विभ्रति’ या ‘न भ्रश्यन्ते आपो यस्मात्’ जिससे जल नहीं गिरते, उसे अब्ध्र या अभ्र कहते हैं। इस तरह ध्रुवद्वारा अधिकृत सूर्य वृष्टिसर्गकी सृष्टि करते हैं। पुनः ध्रुवद्वारा नियुक्त वायु उस वृष्टिका संहार करती है। नक्षत्रमण्डल सूर्यमण्डलसे निवृत्त होकर विचरण करता है और जब विचरण समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा अधिष्ठित सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ २७—३६ ३६ ३७ ॥

इसके बाद अब सूर्यके रथकी रचना बतलायी जाती है। उसमें एक पहिया, पाँच अरे (अरगजे) और तीन नाभियाँ हैं। उस चक्रकी नेमि (घेरे)-में स्वर्णमयी आठ छोटी-छोटी पुढ़ियाँ लगी हैं। ऐसे उद्दीप एवं शीघ्रगामी रथपर बैठकर सूर्य विचरण करते हैं। उस रथकी लम्बाई एक लाख योजन बतलायी जाती है। उसका ईषादण्ड (हरसा) रथके उपस्थ (मध्यभाग)-से प्रमाणमें दुगुना है। ब्रह्माने किसी मुख्य प्रयोजनवश उस रथका निर्माण किया था। उसका असङ्ग (वह रस्सी, जिससे घोड़े रथमें बँधे रहते हैं) दिव्य एवं स्वर्णमय है। उसमें पवनके समान शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। चक्रके अनुकूल चलनेवाले छन्द ही उन घोड़ोंके रूपमें उपस्थित होते हैं। वह रथ वरुणके रथके लक्षणोंसे मिलता-जुलता-सा है। उसी रथसे सूर्य प्रतिदिन गगन-मण्डलमें विचरते हैं। सूर्यके अङ्गों तथा रथके अवयवोंकी समतामें क्रमशः कल्पना की गयी है। दिनको सूर्यके एक पहियेवाले रथकी नाभि कहा जाता है। वर्ष उसके अरे और छहों ऋतुएँ उसकी नेमि कहलाती हैं। रात्रि उसका वरूथ (कवच, बख्तर) और धूप ऊपर फहरानेवाला ध्वज है। चारों युग इसके धुरेके दोनों छोर हैं और कलाएँ आर्तवाह कही गयी हैं। काष्ठा उसकी नासिका तथा क्षण उसके दाँतोंकी पङ्कवितायाँ हैं। निमेषको इसका अनुर्क्ष (रथका तला) और कलाको ईषा (हरसा) कहते हैं। उनके जुएके दोनों छोर अर्थ और काम कहलाते हैं ॥ ३७—४५ ३७ ४५ ३६ ३७ ॥

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पङ्कवित, बृहती और उष्णिक्—ये सातों छन्द सातों घोड़ोंके रूपमें हैं, जो वायु-वेगसे रथको वहन करते हैं।

चक्रमक्षे निबद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः।
 सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः॥ ४८
 अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः।
 एवमर्थवशात् तस्य सन्निवेशो रथस्य तु॥ ४९
 तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः।
 तेनाऽसौ तरणिर्देवो नभसः सर्पते दिवम्॥ ५०
 युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु।
 भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौ चक्रयुग्योस्तु वै॥ ५१
 मण्डलानि भ्रमेतेऽस्य खेचरस्य रथस्य तु।
 कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशाम्॥ ५२
 युगाक्षकोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु।
 संक्रमेते ध्रुवमहो मण्डले सर्वतोदिशाम्॥ ५३
 भ्रमतस्तस्य रश्मी ते मण्डले तूत्तरायणे।
 वर्धते दक्षिणोष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि तु॥ ५४
 युगाक्षकोटी सम्बद्धौ द्वे रश्मी स्यन्दनस्य ते।
 ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी धारयता रविम्॥ ५५
 आकृष्येते यदा ते तु ध्रुवेण समधिष्ठिते।
 तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु॥ ५६
 अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन्।
 ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन च॥ ५७
 तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु।
 उद्देष्यन् वै वेगेन मण्डलानि तु गच्छति॥ ५८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोश सूर्यचन्द्रमसोश्चारो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सूर्य-चन्द्रमाकी गति नामक एक सौ पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

सूर्य-रथ* पर प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न देवताओंका अधिरोहण तथा चन्द्रमाकी विचित्र गति

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैर्मासि मासि यथाक्रमम्।
 ततो वहत्यथादित्यं बहुभिर्त्रिष्ठिभिः सह॥ १
 गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः।
 एते वसन्ति वै सूर्ये मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण च॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! सूर्यका वह रथ प्रत्येक मासमें क्रमशः देवताओंद्वारा अधिष्ठित रहता है। इस प्रकार वह बहुत-से ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणियों, सर्पों और राक्षसोंके साथ सूर्यको वहन करता है। ये सभी देवगण दो-दो मासके क्रमसे सूर्यके निकट

* यह विषय भी भागवत स्कन्ध १२, अ० ११, वायुपुराण अ० ५२ तथा अन्य विष्णु आदि सभी पुराणोंमें स्वल्पान्तरसे प्राप्त होता है।

धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ।
उरगौ वासुकिश्चैव संकीर्णश्चैव तावुभौ ॥ ३
तुम्बुरुनारदश्चैव गन्धर्वो गायतां वरौ ।
क्रतुस्थलाप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला ॥ ४
ग्रामण्यौ रथकृत्तस्य रथौजाश्चैव तावुभौ ।
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुभौ स्मृतौ ॥ ५
मधुमाधवयोर्होषं गणो वसति भास्करे ।
वसन् ग्रीष्मे तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च वै ॥ ६
ऋषिरत्रिवसिष्ठश्च नागौ तक्षकरम्भकौ ।
मेनका सहजन्या च हाहा हूहूश्च गायकौ ॥ ७
रथन्तरश्च ग्रामण्यौ रथकृच्चैव तावुभौ ।
पुरुषादो वधश्चैव यातुधानौ तु तौ स्मृतौ ॥ ८
एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः ।
ततः सूर्ये पुनश्चान्या निवसन्ति स्म देवताः ॥ ९
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ।
एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगः ॥ १०
विश्वावसुसुषेणौ च प्रातश्चैव रथश्च हि ।
प्रम्लोचेत्यप्सराश्चैव निम्लोचन्ती च ते उभे ॥ ११
यातुधानस्तथा हेतिव्याघश्चैव तु तावुभौ ।
नभस्यनभसोरेतैर्वसन्तश्च दिवाकरे ॥ १२
मासौ द्वौ देवताः सूर्ये वसन्ति च शरदूतौ ।
पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजः सगौतमः ॥ १३
चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वा सुरुचिश्च यः ।
विश्वाची च घृताची च उभे ते पुण्यलक्षणे ॥ १४
नागश्चैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः ।
सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामणीस्तथा ॥ १५
आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ।
वसन्ते ते च वै सूर्ये मासयोश्च त्विषोर्जयोः ॥ १६
हैमन्तिकौ च द्वौ मासौ निवसन्ति दिवाकरे ।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च तौ ॥ १७
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कटकस्तथा ।
चित्रसेनश्च गन्धर्वः पूर्णायुश्चैव गायनौ ॥ १८
अप्सराः पूर्वचित्तिश्च तथैव हुर्वशी च या ।
तक्षावारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामणीश्च तौ ॥ १९

निवास करते हैं। धाता और अर्यमा दो देव, प्रजापति पुलस्त्य और प्रजापति पुलह दो ऋषि, वासुकि और संकीर्ण दो नाग, गायकोंमें श्रेष्ठ तुम्बुरु और नारद दो गन्धर्व, क्रतुस्थला और पुञ्जिकस्थला दो अप्सराएँ, रथकृत् और रथौजा दो ग्रामणी, हेति और प्रहेति दो राक्षस—इन सबका दल चैत्र और वैशाखमासमें सूर्यके रथपर निवास करता है। ग्रीष्म-ऋतुके ज्येष्ठ और आषाढ़मासमें मित्र और वरुण देवता, अत्रि और वसिष्ठ ऋषि, तक्षक और रम्भक नाग, मेनका और सहजन्या अप्सरा, हाहा और हूहू गन्धर्व, रथन्तर और रथकृत् ग्रामणी, पुरुषाद और वध राक्षस—ये सभी सूर्यके निकट रहते हैं। इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपद-मासमें इन्द्र और विवस्वान् देवता, अङ्गिरा और भृगु ऋषि, एलापत्र और शंखपाल नामक नाग, विश्वावसु और सुषेण गन्धर्व, प्रात और रथ नामक ग्रामणी, प्रम्लोचा और निम्लोचन्ती अप्सरा तथा हेति और व्याघ्र राक्षस—ये सभी सूर्यके रथपर निवास करते हैं ॥ १—१२ ॥

शरद-ऋतुमें भी दो मासतक देवगण सूर्यके निकट वास करते हैं। पर्जन्य और पूषा देवता, भरद्वाज और गौतम ऋषि, चित्रसेन और सुरुचि गन्धर्व, शुभ लक्षणोवाली विश्वाची और घृताची अप्सराएँ, ऐरावत और सुप्रसिद्ध धनञ्जय नाग, सेनजित् और सेनानायक सुषेण ग्रामणी, आप और वात नामक दो राक्षस—ये सभी आश्विन और कार्तिकमासमें सूर्यके रथपर अधिरोहण करते हैं। हेमन्त-ऋतुके दो महीने मार्गशीर्ष और पौषमें अंश और भग देवता, कश्यप और क्रतु ऋषि, महापद्म और कर्कटक नाग, गानविद्यामें निपुण चित्रसेन और पूर्णायु गन्धर्व, पूर्वचित्ति और उर्वशी अप्सरा, तक्षाव और अरिष्टनेमि नामक सेनापति एवं ग्रामणी,

विद्युत्सूर्यश्च तावुग्रौ यातुधानौ तु तौ स्मृतौ।
 सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे॥ २०
 ततस्तु शिशिरे चापि मासयोर्निवसन्ति ते।
 त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च॥ २१
 काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ।
 गन्धर्वां धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ॥ २२
 तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा।
 ग्रामणी ऋतजिच्छैव सत्यजिच्छ महाबलः॥ २३
 ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञोपेतस्तथैव च।
 इत्येते निवसन्ति स्म द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे॥ २४
 स्थानाभिमानिनो होते गणां द्वादश सप्तकाः।
 सूर्यमापादयन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम्॥ २५
 ग्रथितैस्तु वचोभिश्च स्तुवन्ति ऋषयो रविम्।
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते॥ २६
 विद्याग्रामणिनो यक्षाः कुर्वन्त्याभीषुसंग्रहम्।
 सर्पाः सर्पन्ति वै सूर्ये यातुधानानुयान्ति च॥ २७
 बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद् रविम्।
 एतेषामेव देवानां यथावीर्य यथातपः॥ २८
 यथायोगं यथाधर्मं यथातत्त्वं यथाबलम्।
 तपत्यसौ यथा सूर्यस्तेषां सिद्धिस्तु तेजसा॥ २९
 भूतानामशुभं सर्वं व्यपोहति स्वतेजसा।
 मानवानां शुभैर्हैतीर्हियते दुरितं तु वै॥ ३०
 दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्रचित् क्रचित्।
 एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति सानुगा दिवि॥ ३१
 तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः।
 गोपायन्ति स्म भूतानि ईहन्ते ह्यनुकम्पया॥ ३२
 स्थानाभिमानिनां होतस्थानं मन्वन्तरेषु वै।
 अतीतानां गतानां च वर्तन्ते साम्प्रतं च ये॥ ३३
 एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश।
 चतुर्दशेषु वर्तन्ते गणा मन्वन्तरेषु वै॥ ३४

विद्युत् और सूर्य नामक दो उग्र राक्षस—ये सभी सूर्यके निकट वास करते हैं। तत्पश्चात् शिशिर-ऋतुके माघ और फाल्गुनमासोंमें त्वष्टा और विष्णु देवता, जमदग्नि और विश्वमित्र ऋषि, कद्रूके पुत्र कम्बल और अश्वतर नाग, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा गन्धर्व, तिलोत्तमा और मनोहारिणी रम्भा देवी अप्सरा, महाबली ऋतजित् और सत्यजित् ग्रामणी, ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत राक्षस—ये सभी सूर्यके रथपर अधिरूढ़ होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दो मासके अन्तरसे ये सभी क्रमशः सूर्यके निकट निवास करते हैं॥ १३—२४॥

ये बारह सप्तक (देव, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी और राक्षस) गण अपने-अपने स्थानके अभिमानी देवता हैं। ये अपने तेजसे सूर्यके तेजको उत्कृष्ट कर देते हैं। वहाँ ऋषिगण स्वरचित वचनों—स्तोत्रोंद्वारा सूर्यका स्तवन करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सराएँ नाच-गानके द्वारा सूर्यकी उपासना करती हैं। सूत-विद्यामें निपुण यक्षगण (सूर्यके रथके अश्वोंकी) बागडोर सँभालते हैं। सर्प सूर्यमण्डलमें इधर-उधर दौड़ते तथा राक्षसगण सूर्यका अनुगमन करते हैं। बालखिल्य नामक ऋषि उदयकालसे ही सूर्यको धेरकर अस्ताचलको ले जाते हैं। इन देवताओंका जैसा पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व और शारीरिक बल होता है, उसीके अनुसार उनके तेजसे समृद्ध हुए सूर्य तपते हैं। वे अपने तेजसे प्राणियोंके सभी अमङ्गलको दूर कर देते हैं तथा इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंद्वारा मनुष्योंके पापका अपहरण करते हैं। ये सहायकगण अपनी ओर अभिमुख होनेवालोंके पापको नष्ट कर देते हैं और अपने अनुचरोंसहित आकाशमण्डलमें सूर्यके साथ ही भ्रमण करते हैं। ये जप-तप करके सभी प्रजाओंको प्रसन्न रखते हुए उनकी रक्षा करते हैं और दयावश सभी प्राणियोंकी शुभ-कामना करते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानकालके इन स्थानाभिमानियोंका वह स्थान प्रत्येक मन्वन्तरमें वर्तमान रहता है। इस प्रकार दो-दोके हिसाबसे उन सातों गणोंके चौदह देवता सूर्यके रथपर निवास करते हैं और चौदहों मन्वन्तरोंतक वर्तमान रहते हैं।

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्जमानो
घर्म हिमं च वर्ष च दिनं निशां च ।
गच्छत्यसावनुदिनं परिवृत्य रश्मीन्
देवान् पितृंश्च मनुजांश्च सुतर्पयन् वै ॥ ३५

शुक्ले तु पूर्णे तदहःक्रमेण
तं कृष्णपक्षे विवृथाः पिबन्ति ।
पीतं तु सोमं द्विकलावशिष्टं
सुवृष्ट्ये रश्मिषु रक्षितं तु ॥ ३६

स्वधामृतं तत्पितरः पिबन्ति
देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम् ।
सूर्येण गोभिर्हि विवर्धिताभि-
रद्धिः पुनश्चैव समुच्छ्रिताभिः ॥ ३७

वृष्ट्याभिवृष्टाभिरथौषधीभि-
र्मत्या अथान्नेन क्षुधं जयन्ति ।
तृप्तिशाप्यमृतेनार्थमासं सुराणां
मासं स्वाहाभिः स्वधया पितृणाम् ॥ ३८

अन्नेन जीवन्त्यनिशं मनुष्याः
सूर्यः श्रितं तद्धि बिभर्ति गोभिः ।
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं प्रसर्पति ।
तत्र तैरक्रमैरश्चैः सर्पतेऽसौ दिनक्षये ॥ ३९

हरिर्हरिद्धिर्हियते तुरङ्गमैः
पिबत्यथाऽपो हरिभिः सहस्रधा ।
ततः प्रमुञ्जत्यथ ताश्च यो हरिः
संमुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमैः ॥ ४०

अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन् ।
समद्वीपसमुद्रांश्च सप्तभिः सप्तभिर्द्वृतम् ॥ ४१

छन्दोरूपैश्च तैरश्वर्यतश्चक्रं ततः स्थितिः ।
कामरूपः सकृद्युक्तैः कामैस्तैर्मनोजवैः ॥ ४२

हरितैरव्यथैः पिङ्गलैश्चैर्ब्रह्मवादिभिः ।
बाह्यतोऽनन्तरं चैव मण्डलं दिवसः क्रमात् ॥ ४३

कल्पादौ सम्प्रयुक्ताश्च वहन्त्याभूतसम्प्लवम् ।
आवृतो वालखिल्यैश्च भ्रमते रात्र्यहानि तु ॥ ४४

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, हेमन्त और वर्षा-ऋतुओंमें क्रमशः अपनी किरणोंको परिवर्तित कर धूप, हिम और जलकी वर्षा करके देवताओं, पितरों और मानवोंको भलीभाँति तृप्त करते हुए प्रतिदिन रात-दिन चलते रहते हैं। जो शुद्ध अमृत उत्तम वृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोंमें सुरक्षित रहता है, उसे देवगण प्रत्येक मासमें चन्द्रमामें प्रविष्ट होनेपर शुक्ल एवं कृष्णपक्षमें दिनके क्रमसे काल-क्षयके अनुसार पीते हैं। सभी देवगण तथा पितर कव्यस्वरूप उस अमृत चन्द्रमाका पान करते हैं। मानवगण सूर्यकी किरणोंद्वारा पोषित, जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा सिंचित ओषधियों और अन्नसे अपनी क्षुधा शान्त करते हैं। उस स्वाहारूप अमृतसे देवताओंकी तृप्ति पंद्रह दिनतक तथा उस स्वधारूप अमृतसे पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है। मनुष्य अन्नरूप अमृतसे सर्वदा जीवन धारण करते हैं। वह अमृत सूर्यकी किरणोंमें स्थित है, अतः सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सबका पालन करते हैं ॥ २५—३८ ॥

इस प्रकार सूर्य अपने एक पहियेवाले रथसे शीघ्रतापूर्वक गमन करते हैं। दिनके व्यतीत हो जानेपर भी वे उन सात अश्वोंद्वारा चलते ही रहते हैं। हरे रंगवाले घोड़े सूर्यको वहन करते हैं। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा हजारों प्रकारसे जल खींचते हैं। पुनः हरे रंगवाले घोड़ोंद्वारा वहन किये जाते हुए वे ही सूर्य उस जलको बरसाते हैं। इस तरह सूर्य अपने एक पहियेवाले रथसे दिनके क्रमानुसार मण्डलके बाहर और भीतर होते हुए सात-सातके क्रमसे सातों समुद्रोंमें दिन-रात वेगपूर्वक धूमते रहते हैं। जहाँ वह चक्र पहुँचता है, वहीं उनकी स्थिति मानी जाती है। उनके रथके (समुद्रसे उत्पन्न श्यामकर्ण) अश्व छन्दःस्वरूप, स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, एक ही बार जुते हुए इच्छानुरूप गमन करनेवाले और मनके समान शीघ्रगामी हैं। उनके शरीरका रंग हरा और पीला है। उन्हें थकावट नहीं होती। वे शक्तिशाली और ब्रह्मवादी हैं। वे कल्पके आरम्भमें रथमें जोते जाते हैं और प्रलय-पर्यन्त उस रथको वहन करते हैं। इस प्रकार वालखिल्य ऋषियोंद्वारा समावृत सूर्य रात-दिन भ्रमण करते रहते हैं।

ग्रथितैः स्ववचोभिश्च स्तूयमानो महर्षिभिः ।
 सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥ ४५
 पतंगः पतगैरश्चैर्भार्म्यमाणो दिवस्पतिः ।
 वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ॥ ४६
 हासवृद्धी तथैवास्य रशमयः सूर्यवत् स्मृताः ।
 त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयः शशिनो रथः ॥ ४७
 अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः ।
 सहरैस्तैस्त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥ ४८
 दशभिस्तुरगैर्दिव्यैरसङ्गैस्तन्मनोजवैः ।
 सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्तस्त्वायुगक्षयम् ॥ ४९
 संगृहीता रथे तस्मिन्देवताशक्षुःश्रवाश्च वै ।
 अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसः ॥ ५०
 अजश्च त्रिपथश्चैव वृषो वाजी नरो हयः ।
 अंशुमान् समधातुश्च हंसो व्योममृगस्तथा ॥ ५१
 इत्येते नामभिश्चैव दश चन्द्रमसो हयाः ।
 एवं चन्द्रमसं देवं वहन्ति स्मायुगक्षयम् ॥ ५२
 देवैः परिवृतः सोमः पितृभिः सह गच्छति ।
 सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे परतः स्थिते ॥ ५३
 आपूर्यते परो भागः सोमस्य तु अहःक्रमात् ।
 ततः पीतक्षयं सोमं युगपद्म्यापयन् रविः ॥ ५४
 पीतं पञ्चदशाहं च रश्मिनैकेन भास्करः ।
 आपूरयन् ददौ तेन भागं भागमहःक्रमात् ॥ ५५
 सुषुम्पाप्यायमानस्य शुक्ले वर्धन्ति वै कलाः ।
 तस्मादध्यसन्ति वै कृष्णो शुक्ले ह्याप्याययन्ति च ॥ ५६
 इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायते तनुः ।
 पौर्णमास्यां प्रदृशयेत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ॥ ५७
 एवमाप्यायते सोमः शुक्लपक्षेष्वहःक्रमात् ।
 ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ॥ ५८
 अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च ।
 पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं तथामृतम् ॥ ५९
 सम्भृतं त्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा ।
 भक्षार्थमागताः सोमं पौर्णमास्यामुपासते ॥ ६०

उस समय महर्षिगण स्वरचित वचनोद्वारा सूर्यकी स्तुति करते हैं । गन्धर्वों और अप्सराओंका समुदाय नाच-गानद्वारा सूर्यकी सेवा करता है । दिनके स्वामी सूर्य पक्षियोंके समान वेगशाली अश्वोद्वारा सदा भ्रमण कराये जाते हुए नक्षत्रसम्बन्धिनी वीथियोंका आश्रय लेकर भ्रमण करते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा भी चक्कर लगाते हैं । इनकी भी हास-वृद्धि और किरणें सूर्यके समान ही बतलायी गयी हैं । चन्द्रमाका रथ तीन पहियेका है और उसमें दोनों ओर घोड़े जुते रहते हैं । घोड़े-सारथि और हारसे सुशोभित तथा तीन पहियोंसे युक्त रथके साथ चन्द्रदेव (समुद्र मन्थनके समय) जलके मध्यसे प्रकट हुए थे । उसमें श्वेत रंगबाले तथा दस उत्तम घोड़े जुते हुए थे । वे अश्व दिव्य, अनुपम और मनके समान वेगशाली हैं । वे एक बार उस रथमें जोत दिये जानेपर युगप्रलयपर्यन्त उस रथको वहन करते हैं । उस रथमें जुते हुए चक्षुःश्रवानामक घोड़े चन्द्रमाको वहन करते हैं, उनके नेत्र और कान भी श्वेत रंगके हैं । वे सभी शङ्खके समान उज्ज्वल एक ही रंगके हैं । चन्द्रमाके उन दस अश्वोंका नाम अज, त्रिपथ, वृष, वाजी, नर, हय, अंशुमान्, समधातु, हंस और व्योममृग हैं । इस प्रकार वे अश्व युगप्रलयपर्यन्त चन्द्रदेवको वहन करते हैं । चन्द्रमा पितरोंसहित देवताओंद्वारा धिरे हुए गमन करते हैं ॥ ३९—५२ ॥

शुक्लपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके परभागमें स्थित होनेपर चन्द्रमाका परभाग दिनके क्रमसे पूर्ण होता है । उस समय (देवताओंद्वारा अमृत) पी लेनेसे क्षीण हुए चन्द्रमाको सूर्य एक ही बारमें पूर्ण कर देते हैं । इस प्रकार पंद्रह दिनोंतक देवताओंद्वारा चूसे गये चन्द्रमाके एक-एक भागको सूर्य अपनी एक ही किरणद्वारा दिनके क्रमसे परिपूर्ण करते रहते हैं । सूर्यकी सुषुम्पा नामक किरणद्वारा परिवर्धित चन्द्रमाकी कलाएँ शुक्लपक्षमें वृद्धिको प्राप्त होती हैं तथा कृष्णपक्षमें क्षीण हो जाती हैं । पुनः शुक्लपक्षमें वे बढ़ती जाती हैं । इस प्रकार सूर्यके पराक्रमसे चन्द्रमाका शरीर वृद्धिगत होता है और धीरे-धीरे पूर्णिमा तिथिको पूर्ण होकर सम्पूर्ण मण्डल श्वेत वर्णका दिखायी पड़ता है । इस प्रकार शुक्लपक्षमें दिनके क्रमसे चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त होते हैं । तदनन्तर जलके सारभूत एवं रसमात्रात्मक चन्द्रमाके मधु-सदृश जलमय अमृतको देवगण कृष्णपक्षकी द्वितीयासे लेकर चतुर्दशी तिथिका पान करते हैं । पंद्रह दिनोंतक सूर्यके तेजसे सञ्चित किये हुए अमृतको खानेके लिये पूर्णिमा तिथिको चन्द्रमाके निकट आये हुए देवगण

एकरात्रं सुराः सार्थं पितृभिर्द्विषिभिश्च वै।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य वै॥ ६१
प्रक्षीयते परो ह्यात्मा पीयमानकलाक्रमात्।
त्रयश्च त्रिंशता सार्थं त्रीणि चैव शतानि तु॥ ६२
त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै।
इत्येवं पीयमानस्य कृष्णा वर्धन्ति ताः कलाः॥ ६३
क्षीयन्ते च ततः शुक्लाः कृष्णा ह्याप्याययन्ति च।
एवं दिनक्रमात् पीते देवैश्चापि निशाकरे॥ ६४
पीत्वार्थमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुराश्च ते।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति ह्यमावास्यां निशाकरम्॥ ६५
ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छेषे निशाकरे।
ततोऽपराह्ने पितरो यदन्यदिवसे पुनः॥ ६६
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टास्तस्य तु याः कलाः।
विनिः सृष्टं त्वमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्॥ ६७
अर्थमाससमासौ तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम्।
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये स्मृताः॥ ६८
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्वं एव ते।
संवत्सरास्तु वै काव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः॥ ६९
सौम्यास्तुऋतवो ज्ञेयाः मासा बर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्तास्तथा पक्षः पितृसर्गस्थिता द्विजाः॥ ७०
पितृभिः पीयमानायां पञ्चदशयां तु वै कलाम्।
यावच्च क्षीयते तस्माद् भागः पञ्चदशस्तु सः॥ ७१
अमावास्यां तथा तस्य अन्तरा पूर्यते परः।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ।
एवं सूर्यनिमित्ते ते क्षयवृद्धी निशाकरे॥ ७२

पितरों और ऋषियोंके साथ एक राततक चन्द्रमाकी उपासना करते हैं। कृष्णपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके सम्मुख उपस्थित चन्द्रमाका मन पान की जाती हुई कलाओंके क्रमसे अत्यन्त क्षीण हो जाता है। उस समय तीनों हजार तीन सौ तीनों देवता चन्द्रमाकी अमृतकलाओं पीते* हैं। इस प्रकार पान किये जाते हुए चन्द्रमाकी वे कृष्णपक्षीय कलाएँ (शुक्लपक्षमें) बढ़ती हैं और शुक्लपक्षीय कलाएँ (कृष्णपक्षमें) घटती हैं। पुनः कृष्णपक्षीय कलाएँ बढ़ती हैं। (यही शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें बढ़ने-घटनेका क्रम है।) ५३—६३ ३॥

इस प्रकार दिनके क्रमसे देवगण पंद्रह दिनतक चन्द्रमाके अमृतका पान करते हैं और अमावास्या तिथिको वे वहाँसे चले जाते हैं। तब पितृगण अमावास्या तिथिमें चन्द्रमाके पास आते हैं। तदनन्तर चन्द्रमाके पंद्रहवें भागके कुछ शेष रहनेपर वे पितर दूसरे दिन अपराह्नके समय उन सभी अवशिष्ट कलाओंको केवल दो कला समयतक ही पान करते हैं। अमावास्यातक पंद्रह दिन पर्यन्त चन्द्रमाकी किरणोंसे निकलते हुए स्वधारूपी अमृतका पानकर पितृगण अमर हो जाते हैं। वे सभी पितर सौम्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त और काव्य नामसे कहे गये हैं। पाँच वर्षके कार्यकालवाले जो पितर हैं, जिन्हें द्विजगण काव्य कहते हैं, वर्ष हैं। सौम्य नामक पितरोंको पक्ष ऋतु जानना चाहिये। दो बर्हिषद् और अग्निष्वात्तको मास—ये तीनों पितृलोकमें निवास करनेवाले द्विज हैं। पूर्णिमा तिथिको पितरोंद्वारा पान की जाती हुई कलाका जितना अंश क्षीण होता है, वह पंद्रहवाँ भाग है। चन्द्रमाकी वृद्धि और क्षय दोनों पक्षोंके प्रारम्भमें ही माना गया है, उसे सोलहवीं कला कहते हैं। इस प्रकार चन्द्रमाकी क्षय-वृद्धि सूर्यके निमित्तसे ही होती है॥ ६४—७२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सूर्यादिगमनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सूर्यादिगमन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२६॥

* देवताओंद्वारा चन्द्रकला-पानका वर्णन—कालिदासादिके रघुवंश (५। १६) के—‘पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः’ आदिमें बड़े सरस ढंगसे किया गया है। हेमाद्रि आदि व्याख्याताओंने इसकी—‘प्रथमां पिबते विहिर्द्वितीयां पिबते रविः’ आदिसे व्याख्या भी सुन्दर की है। पर वस्तुतः कालिदास तथा भर्तुहरि के ‘कल्पशेषशचन्द्रः’ आदिका मूलाधार मत्स्यपुराणका यह प्रकरण ही दीखता है।

एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

ग्रहोंके रथका वर्णन और ध्रुवकी प्रशंसा

सूत उवाच

ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोस्तु रथं पुनः ।
अथ तेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः ॥ १
युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु दशभिर्वातरंहसैः ।
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः ॥ २
कृष्णश्च हरितश्चैव पृष्ठतः पृष्ठिरेव च ।
दशभिस्तु महाभागैरुत्तमैर्वातिसम्भवैः ॥ ३
ततो भौमरथश्चापि हृष्टाङ्गः काञ्छनः स्मृतः ।
अष्टभिलोहितैरश्वैः सध्वजैरग्निसम्भवैः ।
सर्प तेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः ॥ ४
अतश्चाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः ।
शोणैरश्वैश्च रौक्मेण स्यन्दनेन विसर्पति ॥ ५
युक्तेनावाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातरंहसैः ।
अब्दं वसति यो राशौ सवर्णस्तेन गच्छति ॥ ६
युक्तेनाष्टाभिरश्वैश्च सध्वजैरग्निसंनिधैः ।
रथेन क्षिप्रवेगेन भार्गवस्तेन गच्छति ॥ ७
ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः सबलैर्वातरंहसैः ।
काष्णायिसं समारुद्ध्य स्यन्दनं यात्यसौ शनिः ॥ ८
स्वर्भानोस्तु यथाष्टाश्वाः कृष्णा वै वातरंहसः ।
रथं तमोमयं तस्य वहन्ति स्म सुदंशिताः ॥ ९
आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु ।
आदित्यमेति सोमाच्च तमसोऽन्तेषु पर्वसु ॥ १०
ततः केतुमतस्त्वश्वा अष्टौ ते वातरंहसः ।
पलालधूमवर्णभाः क्षमदेहाः सुदारुणाः ॥ ११
एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह ।
सर्वे ध्रुवे निबद्धास्ते निबद्धा वातरशिष्मधिः ॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं (ग्रहकक्षानुसार बुधादि) ग्रहों, नक्षत्रों और राहुके रथका वर्णन कर रहा हूँ। सोमपुत्र बुधका रथ उज्ज्वल एवं तेजोमय है। उसमें वायुके समान वेगशाली पीले रंगके दस घोड़े जोते जाते हैं। उनके नाम हैं—श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पृष्ठत और पृष्ठिं। इन्हीं महान् भाग्यशाली, अनुपम एवं वायुसे उत्पन्न दस घोड़ोंसे वह रथ युक्त है। इसके बाद मङ्गलका रथ सुवर्णनिर्मित बतलाया जाता है। वह रथके सम्पूर्ण आठों अङ्गोंसे संयुक्त है तथा लाल रंगवाले आठ घोड़ोंसे युक्त है। उसपर अग्निसे प्रकट हुआ ध्वज फहराता रहता है। उसपर सवार होकर किशोरावस्थाके मङ्गल कभी सीधी एवं कभी बक्र गतिसे विचरण करते हैं। अङ्गिराके पुत्र देवाचार्य विद्वान् बृहस्पति पीले रंगके तथा वायुके-से वेगशाली आठ दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथपर चलते हैं। वे एक राशिपर एक वर्षतक रहते हैं, इसलिये इस रथके द्वारा स्वाधिष्ठित राशिकी दिशाकी ओर (दोनों गतियों)-से अपने वर्गसहित जाते हैं। शुक्र भी अपने वेगशाली रथपर आरूढ़ होकर भ्रमण करते हैं। उनके रथमें अग्निके समान रंगवाले आठ घोड़े जुते रहते हैं और वह ध्वजाओंसे सुशोभित रहता है। शनैश्चर अपने लोहनिर्मित रथपर सवार होकर चलते हैं। उसमें वायुतुल्य वेगशाली एवं बलवान् घोड़े जुते रहते हैं। राहुका रथ तमोमय है। उसे कवच आदिसे सुसज्जित वायुके समान वेगवाले काले रंगके आठ घोड़े खींचते हैं। सूर्यके भवनमें निवास करनेवाला वह राहु पूर्णिमा आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पास चला जाता है और अमावास्या आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पाससे सूर्यके निकट लौट आता है। इसी प्रकार केतुके रथमें भी वायुके समान शीघ्रगामी आठ घोड़े जोते जाते हैं। उनके शरीरकी कान्ति पुआलके धुँएके सदृश है। वे दुबले-पतले शरीरवाले और बड़े भयंकर हैं। ये सभी वायुरूपी रस्सीसे ध्रुवके साथ सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मैंने ग्रहोंके रथोंके साथ-साथ घोड़ोंका वर्णन कर दिया ॥१—१२॥

एते वै भ्राम्यमाणास्ते यथायोगं वहन्ति वै ।
 वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥ १३

परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्नन्दसूर्यग्रहा दिवि ।
 यावत्तमनुपर्येति ध्रुवं वै ज्योतिषां गणः ॥ १४

यथा नद्युदके नौस्तु उदकेन सहोह्यते ।
 तथा देवगृहाणि स्युरुह्यन्ते वातरंहसा ।
 तस्माद्यानि प्रगृह्यन्ते व्योम्पि देवगृहा इति ॥ १५

यावन्त्यश्वैव ताराः स्युस्तावन्तोऽस्य मरीचयः ।
 सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति च ॥ १६

तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद् भ्रामयते यथा ।
 तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ॥ १७

अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
 यस्मात् प्रवहते तानि प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥ १८

एवं ध्रुवे नियुक्तोऽसौ भ्रमते ज्योतिषां गणः ।
 एष तारामयः प्रोक्तः शिशुमारे ध्रुवो दिवि ॥ १९

यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुञ्चति ।
 शिशुमारशरीरस्था यावत्यस्तारकास्तु ताः ॥ २०

वर्षाणि दृष्ट्वा जीवेत तावदेवाधिकानि तु ।
 शिशुमाराकृतिं ज्ञात्वा प्रविभागेन सर्वशः ॥ २१

उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयः सोक्तरा हनुः ।
 यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्धन्माश्रितः ॥ २२

हृदि नारायणः साध्या अश्विनौ पूर्वपादयोः ।
 वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्षिणी ॥ २३

शिश्रे संवत्सरो ज्ञेयो मित्रश्चापानमाश्रितः ।
 पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः ॥ २४

वायुरूपी अदृश्य रस्सियोंद्वारा बँधे हुए ये सभी अश्व भ्रमण करते हुए नियमानुसार उन रथोंको खींचते हैं । जिस प्रकार ध्रुवसे बँधे हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह गगनमण्डलमें परिभ्रमण करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिर्गण ध्रुवके पीछे-पीछे घूमता है । जिस प्रकार नदीके जलमें पड़ी हुई नौका जलके साथ बहती जाती है, उसी तरह देवताओंके गृह भी वायुके वेगसे वहन किये जाते हैं, इसीलिये वे आकाशमण्डलमें देव-गृह नामसे पुकारे जाते हैं । आकाशमण्डलमें जितनी तारकाएँ हैं, उतनी ही ध्रुवकी किरणें भी हैं । ये सभी तारकाएँ ध्रुवसे संलग्न हैं, इसलिये स्वयं घूमती हुई किरणें उन्हें भी घुमाती हैं । जैसे तेल पेरनेवाला चक्र (कोल्ह) स्वयं घूमता है और अपनेसे लगी हुई सभी वस्तुओंको घुमाता है, वैसे ही वायुरूपी रस्सीसे बँधी हुई ज्योतियाँ सब ओर भ्रमण करती हैं । वातचक्रसे प्रेरित होकर घूमती हुई वे ज्योतियाँ अलातचक्र (जलती हुई बनेठी)-की भाँति प्रतीत होती हैं । चूँकि वायु उन ज्योतियोंको वहन करता है, इसलिये वह 'प्रवह' नामसे प्रसिद्ध है । इस प्रकार ध्रुवसे बँधा हुआ यह ज्योतिश्चक्र भ्रमण करता है । इसी प्रकार गगनमण्डलमें स्थित शिशुमारचक्रमें ये ध्रुव तारामय अर्थात् ताराओंसे युक्त कहे जाते हैं । दिनमें जो पाप किया जाता है, वह रात्रिमें उस चक्रको देखनेसे नष्ट हो जाता है ॥ १३—१९ २४ ॥

शिशुमारचक्रके शरीरमें जितनी तारकाएँ स्थित हैं, उनका दर्शन कर तथा सर्वथा शिशुमारकी आकृतिको जानकर मनुष्य उतने ही अधिक वर्णोंतक जीवित रह सकता है । उत्तानपादको उस शिशुमारचक्रका ऊपरी जबड़ा तथा यज्ञको निचला जबड़ा समझना चाहिये । धर्म उसके मस्तकपर स्थित हैं । हृदयमें नारायण और साध्यगणोंको तथा अगले पैरोंमें अश्विनीकुमारोंको जानना चाहिये । वरुण और अर्यमा उसकी पिछली जाँघें हैं । शिश्र (जननेन्द्रिय)-के स्थानपर संवत्सरको समझिये और गुदास्थानपर मित्र स्थित हैं । उसकी पूँछमें अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप और ध्रुव स्थित हैं ।

एष तारामयः स्तम्भो नास्तमेति न वोदयम्।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥ २५
तमुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूता दिवि स्थिताः।
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ॥ २६
परियान्ति सुरश्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि।
आग्रीध्रकाश्यपानां तु तेषां स परमो ध्रुवः ॥ २७
एक एव भ्रमत्येष मेरोरन्तरमूर्धनि।
ज्योतिषां चक्रमादाय आकर्षस्तमधोमुखः ॥ २८
मेरुमालोकयन्नेव प्रतियाति प्रदक्षिणम् ॥ २९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ध्रुवप्रशंसा नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें ध्रुव-प्रशंसा नामक एक सौ सत्तार्इसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२७ ॥

ताराओंद्वारा निर्मित यह स्तम्भ नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और तारागणोंके साथ न अस्त होता है न उदय, अपितु ये सभी आकाशमें चक्रकी तरह उसके मुखकी ओर देखते हुए स्थित हैं। ये ध्रुवसे अधिकृत होकर आकाशस्थित मेढीभूत सुरश्रेष्ठ ध्रुवकी ही प्रदक्षिणा करते हैं। उन आग्रीध्र तथा कश्यपके वंशमें ध्रुव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। ये ध्रुव अकेले ही मेरुके अन्तर्वर्ती शिखरपर ज्योतिश्चक्रको साथ लेकर उसे खींचते हुए भ्रमण करते हैं। उस समय उनका मुख नीचेकी ओर रहता है। इस प्रकार वे मेरुको प्रकाशित करते हुए उसकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ २०—२९ ॥

एक सौ अद्वाईसवाँ अध्याय

देव-गृहों तथा सूर्य-चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

यदेतद् भवता प्रोक्तं श्रुतं सर्वमशेषतः।
कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ॥ १
सूत उवाच

एतत् सर्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्।
यथा देवगृहाणि स्युः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ २
अग्रेव्युष्टौ रजन्यां वै ब्रह्मणाव्यक्तयोनिना।
अव्याकृतमिदं त्वासीनैशेन तमसाऽऽवृतम् ॥ ३
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् ब्रह्मणा समधिष्ठिते।
स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र लोकतत्त्वार्थसाधकः ॥ ४
खद्योतरूपी विचरन्नाविर्भावं व्यचिन्तयत्।
ज्ञात्वाग्निं कल्पकालादावपः पृथ्वीं च संश्रिताः ॥ ५
स सम्भृत्य प्रकाशार्थं त्रिधा तुल्योऽभवत् पुनः।
पाचको यस्तु लोकेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते ॥ ६

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! आपने जो यह सारा विषय पूर्णरूपसे वर्णन किया है, उसे तो हमलोगोंने सुना, परंतु देव-गृह कैसे होते हैं ? (यह जाननेकी विशेष उत्कण्ठा हो रही है।) अतः आप पुनः (पूर्वकथित) ज्योतिश्चक्रका कुछ और विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं जिस प्रकार देव-गृह एवं सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके गृह होते हैं तथा जैसी सूर्य और चन्द्रमाकी गति होती है, वह सब बतला रहा हूँ। (ब्रह्माकी) रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल अव्यक्तयोनि ब्रह्माने देखा कि जगत् की कोई वस्तु दीख नहीं रही है। सारा जगत् रात्रिके अन्धकारसे आच्छन्न है। (कहीं प्रकाशका चिह्नमात्र भी अवशेष नहीं है।) ब्रह्माद्वारा अधिष्ठित इस जगत्में केवल चार पदार्थ अवशिष्ट थे, तब लोकोंके तत्त्वार्थको सिद्ध करनेवाले स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा खद्योत (जुगन्)-के रूपमें विचरण करते हुए प्रकाशको आविर्भूत करनेके लिये विचार करने लगे। (उस समय उन्हें स्मरण हुआ कि) कल्पकालके आदिमें अग्नि-तत्त्व जल और पृथ्वीमें सम्मिलित हो गया था। यह जानकर उन्होंने तीनोंको एकत्र कर प्रकाश करनेके लिये तीन भागोंमें विभक्त कर दिया। इस प्रकार इस लोकमें जो पाचक नामक अग्नि है,

यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निश्च स स्मृतः ।
वैद्युतो जाठरः सौम्यो वैद्युतश्चाप्यनिन्धनः ॥ ७
तेजोभिश्चाप्यते कश्चित् कश्चिदेवाप्यनिन्धनः ।
काष्ठेनस्तु निर्मथ्यः सोऽद्धिः शाम्यति पावकः ॥ ८
अर्चिष्यान् पचनोऽग्निस्तु निष्प्रभः सौम्यलक्षणः ।
यश्चासौ मण्डले शुक्ले निरूष्मा न प्रकाशते ॥ ९
प्रभा सौरी तु पादेन अस्तं याति दिवाकरे ।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्मादग्निः प्रकाशते ॥ १०
उदिते तु पुनः सूर्ये ऊष्माग्रेस्तु समाविशत् ।
पादेन तेजसश्चाग्नेस्तस्मात् संतपते दिवा ॥ ११
प्राकाशयं च तथौष्ययं च सौर्यग्रेये तु तेजसी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥ १२
उत्तरे चैव भूम्यर्थे तथा ह्यस्मिंस्तु दक्षिणे ।
उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते ह्यपः ॥ १३
तस्मात् ताप्त्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ।
अस्तं गते पुनः सूर्ये अहो वै प्रविशत्यपः ॥ १४
तस्मान्तरं पुनः शुक्ला ह्यापो दृश्यन्ति भासुराः ।
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्थे दक्षिणोत्तरे ॥ १५
उदयास्तमये चात्र ह्यहोरात्रं विशत्यपः ।
यश्चासौ तपते सूर्यः सोऽपः पिबति रश्मिभिः ॥ १६
सहस्रपादस्त्वेषोऽग्नी रक्तकुम्भनिभस्तु सः ।
आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः ॥ १७
अपो नदीसमुद्रेभ्यो हृदकूपेभ्य एव च ।
तस्य रश्मिसहस्रेण शीतवर्षोष्णानिःस्त्रवः ॥ १८
तासां चतुःशतं नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः ।

उसे पार्थिव अग्नि कहते हैं । जो अग्नि सूर्यमें स्थित होकर ताप पैदा करती है, वह शुचि अग्नि कहलाती है । उदरमें स्थित अग्नि वैद्युतसे उत्पन्न हुई मानी जाती है । उसे सौम्य कहते हैं । इस वैद्युताग्निका इन्धन जल है । कोई अग्नि अपने तेजसे ही बढ़ती है और कोई बिना इन्धनके भी उद्धीस होती है । काष्ठरूपी इन्धनसे जलनेवाली अग्निका नाम निर्मथ्य है । यह अग्नि जलके संयोगसे शान्त हो जाती है । पचमान अग्नि ज्वालाओंसे संयुक्त रहता है और प्रभाहीन रहना सौम्य अग्निका लक्षण है । जो श्वेत मण्डलमें स्थित रहकर ऊष्मारहित हो प्रकाशित नहीं होती, सूर्यकी वह कान्ति सूर्यके अस्त हो जानेपर अपने चतुर्थांशसे अग्निमें प्रवेश कर जाती है, इसी कारण रातमें अग्निका प्रकाश अधिक होता है ॥ २—१० ॥

पुनः सूर्योदय होनेपर अग्निकी ऊष्मा अपने तेजके चतुर्थांशसे सूर्यमें प्रविष्ट हो जाती है, इस कारण दिनमें सूर्य पूर्णरूपसे तपते हैं । प्रकाशता, उष्णता, सूर्य और अग्निका तेज—इन सबके परस्पर अनुप्रवेश करनेके कारण दिन-रातकी पूर्ति होती है । पृथ्वीके उत्तरवर्ती तथा दक्षिणवर्ती अर्धभागमें सूर्यके उदय होनेपर रात्रि पुनः जलमें प्रवेश करनेके कारण दिनमें जल लाल रंगका दीख पड़ता है । पुनः सूर्यके अस्त हो जानेपर दिन जलमें प्रवेश करता है । इसी कारण जल रातमें उज्ज्वल और चमकीला दिखायी पड़ता है । इसी क्रमसे भूमिके दक्षिणोत्तर अर्धभागमें सूर्यके उदय एवं अस्तके समय दिन और रात क्रमशः जलमें प्रवेश करते हैं । जो ये सूर्य तप रहे हैं, वे अपनी किरणोंद्वारा जलको सोखते हैं । सूर्यमें स्थित अग्निका रंग लाल रंगके घड़ेके समान है । उसमें हजारों किरणें हैं । वह अपनी सहस्रों नाडियोंसे नदी, समुद्र, हृद और कुएँसे जलको ग्रहण करता है । सूर्यकी उन्हीं हजारों किरणोंसे शीत, वर्षा और गरमीका प्रादुर्भाव होता है ॥ ११—१८ ॥

उन सहस्रों किरणोंमें विचित्र आकृतिवाली चार सौ नाडियाँ जलकी वर्षा करनेवाली हैं । उनमें

* प्रकाशान्तरसे इन अग्नियोंका बहुत कुछ उल्लेख अ० ५१ में भी हो चुका है । यहाँ १२६—२८तकके तीन अध्यायोंमें ग्रहोंके स्वरूप तथा उनके रथ, आयुध आदिका परिचय बहुत सुन्दर रूपमें कराया गया है । पहले १४वें अध्यायमें भी इन ग्रहोंका स्वरूपनिरूपण हुआ है ।

चन्दनाश्रैव मेध्याश्रु केतनाश्रेतनास्तथा ॥ १९
 अमृता जीवनाः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ।
 हिमोद्धवाश्रु ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिंशतः स्मृताः ।
 चन्द्रताराग्रहैः सर्वैः पीता भानोर्गभस्तयः ॥ २०
 एता मध्यास्तथान्याश्रु ह्वादिन्यो हिमसर्जनाः ।
 शुक्लाश्रु ककुभश्रैव गावो विश्वभृतश्रु याः ॥ २१
 शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिंशत्या घर्मसर्जनाः ।
 सम्बिभृति हि ताः सर्वा मनुष्यान् देवताः पितृन् ॥ २२
 मनुष्यानौषधीभिश्रु स्वधया च पितृनपि ।
 अमृतेन सुरान् सर्वान् सततं परितर्पयन् ॥ २३
 वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शनैः संतपते त्रिभिः ।
 वर्षासु च शरद्येवं चतुर्भिः सम्प्रवर्षति ॥ २४
 हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गस्त्रिभिः पुनः ।
 औषधीषु बलं धत्ते सुधां च स्वधया पुनः ॥ २५
 सूर्योऽमरत्वममृते त्रयस्त्रिषु नियच्छति ।
 एवं रश्मसहस्रं तु सौरं लोकार्थसाधकम् ॥ २६
 भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्ववम् ।
 इत्येवं मण्डलं शुक्लं भास्वरं लोकसंज्ञितम् ॥ २७
 नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च ।
 ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः ॥ २८
 सुषुम्ना सूर्यरश्मिर्या क्षीणं शशिनमेधते ।
 हरिकेशः पुरस्तान्तु यो वै नक्षत्रयोनिकृत् ॥ २९
 दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मराष्याययद् बुधम् ।
 विश्वावसुश्रु यः पश्चाच्छुक्रयोनिश्रु स स्मृतः ॥ ३०
 संवर्धनस्तु यो रश्मिः स योनिलोहितस्य च ।
 षष्ठस्तु ह्वश्वभू रश्मयोनिः सा हि बृहस्पतेः ॥ ३१
 शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मराष्यायते सुराद् ।
 न क्षीयन्ते यतस्तानि तस्मानक्षत्रता स्मृता ॥ ३२
 क्षेत्राण्येतानि वै सूर्यमापतन्ति गभस्तिभिः ।
 क्षेत्राणि तेषामादत्ते सूर्यो नक्षत्रता ततः ॥ ३३

चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता और जीवना—ये सभी किरणें विशेषरूपसे वृष्टि करनेवाली हैं। सूर्यकी तीन सौ किरणें हिमसे उत्पन्न हुई कही जाती हैं। उन्हें चन्द्रमा, तारा और सभी ग्रह पीते रहते हैं। ये मध्य नाडियाँ कहलाती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ह्वादिनी आदि नाडियाँ हिमकी सृष्टि करनेवाली हैं। शुक्ला, ककुभ, गौ और विश्वभृत् नामकी जो नाडियाँ हैं, वे सभी शुक्ला नामसे कही जाती हैं। इनकी भी संख्या तीन सौ हैं। ये धूपको उत्पन्न करनेवाली हैं। वे सभी मनुष्यों, देवताओं और पितरोंका भरण-पोषण करती हैं। ये किरणें ओषधियों (एवं अन्नों) द्वारा सभी मनुष्योंको, स्वधाद्वारा पितरोंको और अमृतके माध्यमसे देवताओंको सदा तृप्ति रहती हैं। सूर्य वसन्त और ग्रीष्म-ऋतुमें शनैः-शनैः: अपनी तीन सौ किरणोंसे ताप उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार वर्षा और शरद-ऋतुमें चार सौ किरणोंके माध्यमसे वर्षा करते हैं। पुनः हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें तीन सौ किरणोंद्वारा बर्फ गिराते हैं। यही सूर्य ओषधियोंमें बल, स्वधामें सुधा और अमृतमें अमरत्वका आधान करते हैं अर्थात् तीनों पदार्थोंमें तीन तरहके गुण उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार सूर्यकी ये हजारों किरणें लोगोंका प्रयोजन सिद्ध करनेवाली हैं। ऋतुओंके क्रमानुसार जलकी शीतलता और उष्णतामें परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार उद्दीप एवं श्वेत वर्णवाला वह लोकसंज्ञक मण्डल नक्षत्र, ग्रह और सोमकी प्रतिष्ठा एवं योनि है। इन सभी चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहोंको सूर्यसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥ १९—२८ ॥

सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, वह क्षीण हुए चन्द्रमाको पुनः बढ़ाती है। पूर्वदिशामें जो हरिकेश नामकी किरण है, वह नक्षत्रोंकी जननी है। दक्षिण दिशामें स्थित विश्वकर्मा नामकी किरण बुधको तृप्ति करती है। पश्चिम दिशामें जो विश्वावसु नामक किरण है, उसे शुक्रकी योनि (उत्पत्तिस्थान) कहा जाता है। जो संवर्धन किरण है, वह लोहित (मंगल)-की योनि है। छठी किरणको अश्वभू कहते हैं, वह बृहस्पतिकी योनि है। पुनः सुराद् नामक किरण शनैश्चरकी वृद्धि करती है। चूँकि ये (चन्द्र, नक्षत्र और ग्रह) कभी नष्ट नहीं होते, इसीलिये इनकी नक्षत्रता मानी गयी है। उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र सूर्यपर आकर गिरते हैं और सूर्य अपनी किरणोंद्वारा उन क्षेत्रोंको ग्रहण करते हैं, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती

अस्माल्लोकादमुं लोकं तीर्णां सुकृतात्मनाम् ।
तारणात्तारका होता: शुक्लत्वाच्चैव शुक्लिकाः ॥ ३४

दिव्यानां पार्थिवानां च वंशानां चैव सर्वशः ।
तपनस्तेजसो योगादादित्य इति गद्यते ॥ ३५

सुवतिः स्पन्दनार्थे च धातुरेष निगद्यते ।
सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता स्मृतः ॥ ३६

बहूर्थश्नन्द्र इत्येष हादने धातुरुच्यते ।
शुक्लत्वे ह्यमृतत्वे च शीतत्वेऽपि विमान्यते ॥ ३७
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ।
जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥ ३८
वसन्ति कर्मदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋषिसूर्यग्रहादयः ॥ ३९
तानि देवगृहाणि स्युः स्थानाख्यानि भवन्ति हि ।
सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥ ४०
शौक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशारं प्रभास्वरम् ।
बृहस्पतिर्बृहत्त्वं च लोहितं चापि लोहितः ॥ ४१
शनैश्चरोऽविशत् स्थानमेवं शानैश्चरं तथा ।
बुधोऽपि वै बुधस्थानं भानुं स्वर्भानुरेव च ॥ ४२
नक्षत्राणि च सर्वाणि नाक्षत्राण्याविशन्ति च ।
ज्योतीषि सुकृतामेते ज्ञेया देवगृहास्तु वै ॥ ४३
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै ॥ ४४
अभिमाने न तिष्ठन्ति तानि देवाः पुनः पुनः ।
अतीतास्तु सहातीतैर्भाव्या भाव्यैः सूरैः सह ॥ ४५
वर्तन्ते वर्तमानैश्च सूरैः सार्थं तु स्थानिनः ।

सूर्यो देवो विवस्वांश्च अष्टमस्त्वदितेः सुतः ॥ ४६

द्युतिमान् धर्मयुक्तश्च सोमो देवो वसुः स्मृतः ।
शुक्रो दैत्यस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः ॥ ४७

है । इस लोकसे परलोकमें जानेवाले पुण्यात्माओंका उद्घार करनेके कारण ये किरणें तारका नामसे प्रसिद्ध हैं तथा शुक्ल-वर्णकी होनेके कारण शुक्ला भी कही जाती हैं ।

दिव्य (स्वर्गीय) एवं पार्थिव (भौमिक) सभी प्रकारके वंशोंके तेजके संयोगसे सम्पन्न होनेके कारण सूर्यको 'तपन' कहा जाता है । 'सवति (सूते) अर्थात् 'सु' धातु 'उत्पत्ति अथवा चेतनाभाव' के अर्थमें प्रयुक्त होती है ।

* इसलिये (भूमि-) जल-तेजके उत्पादक होनेके कारण सूर्य सविता कहलाते हैं । इसी प्रकार 'चदि आहादने' यह बहुर्थक धातु आहादित करनेके अर्थमें भी प्रयुक्त होती है । इसका शुक्लत्व, अमृतत्व और शीतत्व आदि अन्य अनेकों अर्थोंमें प्रयोग किया जाता है । (इसी धातुसे चन्द्र या चन्द्रमा शब्द निष्पत्त हुआ है ।) २९—३७ ॥

सूर्य और चन्द्रमाके दिव्य मण्डल गगनतलमें उद्घासित होते हैं । वे सुन्दर श्वेत रंगवाले, जल और तेजसे सम्पन्न एवं कुम्भ-सदृश गोलाकार हैं । उनमें सभी मन्वन्तरोंके ऋषि एवं सूर्यादि ग्रह कर्मदेवताके रूपसे निवास करते हैं । ये ही उनके स्थान हैं, इसीसे उन्हें देव-गृह कहा जाता है । वे देव-गृह उन्हीं देवोंके नामसे प्रसिद्ध होते हैं । सूर्य सौर नामक स्थानमें तथा चन्द्रमा सौम्य स्थानमें प्रवेश करते हैं । शुक्र शौक्र स्थानमें प्रवेश करते हैं, जो सोलह अरोंसे युक्त और अत्यन्त कान्तिमान् है । इसी प्रकार बृहस्पति बृहत्त्व स्थानमें, मंगल लोहित स्थानमें, शनैश्चर शनैश्चर स्थानमें, बुध बुधस्थानमें और राहु भानुस्थानमें प्रवेश करते हैं । सभी नक्षत्र नाक्षत्र स्थानमें प्रवेश करते हैं । इस प्रकार इन सभी ज्योतियोंको उन पुण्यात्माओंके देव-गृह जानने चाहिये । ये सभी स्थान प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं । सभी मन्वन्तरोंमें वे ही देवस्थान होते हैं । सभी देवता पुनः-पुनः उन्हीं अपने-अपने स्थानोंमें निवास करते हैं । अतीतकालीन स्थानीय देवता अतीतोंके साथ, भविष्यत्कालीन स्थानीय देवता भावी देवताओंके साथ और वर्तमानकालीन स्थानीय देवता वर्तमान देवताओंके साथ वर्तमान रहते हैं ॥ ३८—४५ ३ ॥

अदितिके आठवें पुत्र विवस्वान् सूर्य देवता माने गये हैं । प्रभाशाली एवं धर्मात्मा चन्द्रदेव वसु कहे गये हैं । भृगुनन्दन शुक्रको, जो असुरोंके पुरोहित हैं, कर्मानुसार दैत्य समझना चाहिये ।

* निरुक्त, अमरटीका, धातुवृत्ति, उणादिकोश आदिके अनुसार भी 'यूद्ध प्राणि-प्रसवे' धातुसे 'सविता' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—जगत्को उत्पन्न करनेवाला ।

बृहस्पतिर्बृहत्तेजा देवाचार्योऽङ्गिरः सुतः ।
 बुधो मनोहरश्चैव शशिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥ ४८
 शनैश्चरो विरूपश्च संज्ञापुत्रो विवस्वतः ।
 अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवासौ लोहिताधिपः ॥ ४९
 नक्षत्रनाम्यः क्षेत्रेषु दाक्षायण्याः सुताः स्मृताः ।
 स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंतापनोऽसुरः ॥ ५०
 चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रेष्वभिमानी प्रकीर्तिः ।
 स्थानान्येतानि चोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ॥ ५१
 शुक्लमग्निसमं दिव्यं सहस्रांशोर्विवस्वतः ।
 सहस्रांशुत्विषः स्थानमम्यं तैजसं तथा ॥ ५२
 आप्यस्थानं मनोज्ञस्य रविरशिमगृहे स्थितम् ।
 शुक्रः षोडशरशिमस्तु यस्तु देवो ह्यपोमयः ॥ ५३
 लोहितो नवरशिमस्तु स्थानमाप्य तु तस्य वै ।
 बृहदद्वादशरशमीकं हरिद्राभं तु वेधसः ॥ ५४
 अष्टरशिमः शनेस्तत्तु कृष्णं वृद्धमयस्मयम् ।
 स्वर्भानोस्त्वायसं स्थानं भूतसंतापनालयम् ॥ ५५
 सुकृतामाश्रयास्तारा रशमयस्तु हिरण्मयाः ।
 तारणात्तारकाः ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥ ५६
 नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ।
 मण्डलं त्रिगुणं चास्य विस्तारो भास्करस्य तु ॥ ५७
 द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
 त्रिगुणं मण्डलं चास्य वैपुल्याच्छशिनः स्मृतम् ॥ ५८
 सर्वोपरि निसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः ।
 योजनार्धप्रमाणानि ताभ्योऽन्यानि गणानि तु ॥ ५९
 तुल्यो भूत्वा तु स्वर्भानुस्तदधस्तात् प्रसर्पति ।
 उद्धृत्य पार्थिवीं छायां निर्मितं मण्डलाकृतिम् ॥ ६०
 ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तृतीयं तु तमोमयम् ।
 आदित्यात् स तु निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु ॥ ६१
 आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु ।
 स्वभासा तुदते यस्मात्त्वर्भानुरिति स स्मृतः ॥ ६२

महर्षि अङ्गिरके पुत्र परम तेजस्वी बृहस्पति देवोंके आचार्य हैं। मनोहर रूपवाले बुध चन्द्रमाके पुत्र हैं। शनैश्चर कुरुप कहे गये हैं। ये सूर्यके संयोगसे उत्पन्न हुए संज्ञाके पुत्र हैं। लाल रंगके अधिपति मंगल नवयुवक (माने गये) हैं। स्वयं अग्निदेव ही रूपमें विकेशी (भूमि) के* गर्भसे उत्पन्न हुए थे। नक्षत्र नामवाली सत्ताईस नक्षत्राभिमानी देवियाँ दाक्षायणीकी कन्या मानी गयी हैं। राहु सिंहिकाका पुत्र है। यह सभी प्राणियोंको कष्ट देनेवाला राक्षस है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रोंके अभिमानी देवताओंका वर्णन किया गया। साथ ही उनके स्थान तथा स्थानी देवता भी बतलाये गये। सहस्र किरणधारी सूर्यका स्थान दिव्य, श्वेत वर्णवाला तथा अग्निके समान तेजस्वी है। चन्द्रमाका स्थान तैजस एवं जलमय है। बुधका स्थान जलमय है और वह सूर्यकी किरणरूपी गृहमें स्थित है। शुक्रदेवका स्थान सोलह किरणोंसे युक्त एवं जलमय है। मंगल नौ किरणोंसे युक्त हैं, उनका स्थान जलमय है। बृहस्पतिका स्थान बारह किरणोंसे युक्त है और उसकी कान्ति हल्दीके समान पीली है। शनैश्चरका स्थान आठ किरणोंसे युक्त, प्राचीन, लौहमय एवं काले रंगका है। राहुका स्थान लोहेका बना है, वह प्राणियोंको कष्ट देनेवाला है। ताराएँ सुकृतीजनोंका आश्रय स्थान हैं। इनकी किरणें स्वर्णमयी हैं। जीवोंका निस्तार करनेके कारण ये तारका कहलाती हैं और शुक्लवर्ण होनेके कारण इनका शुक्ला भी नाम है ॥ ४६—५६ ॥

सूर्यके व्यासका विस्तार नौ हजार योजन है और इनका सम्पूर्ण मण्डल इस (व्यास) से तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। चन्द्रमाका विस्तार सूर्यके विस्तारसे दुगुना बतलाया जाता है। चन्द्रमाका सम्पूर्ण मण्डल विपुलतामें सूर्य-मण्डलसे तिगुना है। सबके ऊपर तारकाओंके मण्डल हैं। उनका विस्तार आधे योजनका बतलाया जाता है। उनसे नीचे अन्य गणोंके स्थान हैं। राहु उनकी तुलनामें समान होते हुए भी उनके नीचेसे भ्रमण करता है। ब्रह्मद्वारा निर्मित वह तीसरा स्थान तमोमय है। उसे पृथ्वीकी छायाको ऊपर उठाकर मण्डलाकार बनाया गया है। राहु पूर्णिमा आदि पर्वोंमें सूर्यमण्डलसे निकलकर चन्द्रमण्डलमें चला जाता है और सूर्य-सम्बन्धी अमावास्या आदि पर्वोंमें पुनः चन्द्रमण्डलसे निकलकर सूर्यमण्डलमें चला आता है। वह अपनी कान्तिसे प्राणियोंको कष्ट पहुँचाता है, इसीलिये उसे स्वर्भानु कहते हैं।

* सभी पुराणों तथा मूर्त्युष्टक शिवव्याख्यानोंमें विकेशीको भूमि कहा गया है। उनके पुत्र होनेसे ही मङ्गलको भौम कहा जाता है।

चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ।
 विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनानां तु स स्मृतः ॥ ६३
 भार्गवात्पादहीनश्च विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ।
 बृहस्पतेः पादहीनौ कुंजसौरावुभौ स्मृतौ ॥ ६४
 विस्तारमण्डलाभ्यां तु पादहीनस्तथोर्बुधः ।
 तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै ॥ ६५
 बुधेन समरूपाणि विस्तारान्मण्डलात् वै ।
 तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥ ६६
 शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव च ।
 सर्वोपरि विसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः ॥ ६७
 योजनार्थप्रमाणानि तेभ्यो हस्वं न विद्यते ।
 उपरिष्टात् ये तेषां ग्रहा ये क्रूरसात्त्विकाः ॥ ६८
 सौरश्चाङ्गिरसो वक्रो विज्ञेया मन्दचारिणः ।
 तेभ्योऽधस्तात् चत्वारः पुनश्चान्ये महाग्रहाः ॥ ६९
 सोमः सूर्यो बुधश्चैव भार्गवश्चेति शीघ्रगाः ।
 यावन्ति चैव ऋक्षाणि कोट्यस्तावन्ति तारकाः ॥ ७०
 सर्वेषां तु ग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति ।
 विस्तीर्ण मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी ॥ ७१
 नक्षत्रमण्डलं चापि सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति ।
 नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधाच्चोर्ध्वं तु भार्गवः ॥ ७२
 वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः ।
 तस्माच्छैश्वरश्चोर्ध्वं देवाचार्योपरि स्थितः ॥ ७३
 शनैश्चरात्तथा चोर्ध्वं ज्येयं सप्तर्षिमण्डलम् ।
 सप्तर्षिभ्यो ध्रुवश्चोर्ध्वं समस्तं त्रिदिवं ध्रुवे ॥ ७४
 द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ।
 ग्रहान्तरमथैककमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥ ७५
 ताराग्रहान्तराणि स्युरुपर्युपर्यधिष्ठितम् ।
 ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यो च दिवि दिव्येन तेजसा ॥ ७६
 नक्षत्रेषु च युज्यन्ते गच्छन्तो नियतक्रमात् ।
 चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रा नीचोच्चगृहमाश्रिताः ॥ ७७
 समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः ।
 परस्परं स्थिता होवं युज्यन्ते च परस्परम् ॥ ७८

व्यास और बाह्यवृत्त—दोनोंके योजन-परिमाणमें शुक्रका परिमाण चन्द्रमाके सोलहवें भागके बराबर बतलाया जाता है। बृहस्पतिका परिमाण शुक्रके परिमाणसे एक चतुर्थांश कम जानना चाहिये। शनि और मंगल—ये दोनों प्रमाणमें बृहस्पतिसे चतुर्थांश कम बतलाये गये हैं। बुध इन दोनों ग्रहोंसे विस्तार और मण्डलमें चौथाई कम हैं। आकाशमण्डलमें तारा, नक्षत्र आदि जितने शरीरधारी हैं, वे सभी विस्तार और मण्डलके हिसाबसे बुधके समकक्ष हैं। तारा और नक्षत्र परस्पर एक-दूसरेसे कम हैं ॥ ५७—६६ ॥

इस प्रकार उन सभी ज्योतिर्गणोंका मण्डल पाँच, चार, तीन, दो अथवा एक योजनमें विस्तृत है। तारकाओंके मण्डल सबसे ऊपर हैं। उनका प्रमाण आधा योजन है। इनसे कम विस्तारवाला अन्य कोई नहीं है। इनके ऊपर जो क्रूर और सात्त्विक ग्रह स्थित हैं, उन्हें शनैश्चर, बृहस्पति और मंगल समझना चाहिये। ये सभी मन्द गतिवाले हैं। इनके नीचे चन्द्र, सूर्य, बुध और शुक्र—ये चार अन्य महान् ग्रह विचरण करते हैं। ये सभी शीघ्रगामी हैं। जितने नक्षत्र हैं, उतने ही करोड़ तारकाएँ हैं। सूर्य सभी ग्रहोंके निचले भागमें गमन करते हैं। सूर्यके ऊपरी भागमें चन्द्रमा अपने मण्डलको विस्तृत करके चलते हैं। नक्षत्रमण्डल चन्द्रमासे ऊपर भ्रमण करता है। इसी प्रकार नक्षत्रोंसे ऊपर बुध, बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल, मंगलसे ऊपर बृहस्पति और देवाचार्य बृहस्पतिके ऊपर शनैश्चर स्थित हैं। शनैश्चरसे ऊपर सप्तर्षि-मण्डलको जानना चाहिये। सप्तर्षियोंसे ऊपर ध्रुव हैं और ध्रुवसे ऊपर सारा आकाशमण्डल है। नक्षत्रमण्डलसे ऊपर प्रत्येक ग्रह दो लाख योजनोंके अन्तरपर स्थित है। ताराओं और ग्रहोंके अन्तर परस्पर एक-दूसरेके ऊपर स्थित हैं। आकाशमण्डलमें सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहगण दिव्य तेजसे युक्त हो निश्चित क्रमानुसार चलते हुए नक्षत्रोंसे मिलते हैं ॥ ६७—७६ ॥

चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र अपने-अपने नीचे-ऊँचे ग्रहोंमें स्थित होते हैं। इसी क्रमसे इनका समागम और वियोग भी होता है। उस अवसरपर सभी प्राणी इन्हें एक साथ देखते हैं। इस प्रकार स्थित रहकर ये

असंकरेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः।
 इत्येवं संनिवेशो वै पृथिव्या ज्योतिषां च यः ॥ ७९
 द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च।
 वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै ॥ ८०
 इत्येषोऽर्कवशेनैव संनिवेशस्तु ज्योतिषाम्।
 आवर्तः सान्तरो मध्ये संक्षिप्तश्च ध्रुवात्तु सः ॥ ८१
 सर्वतस्तेषु विस्तीर्णो वृत्ताकार इवोच्छ्रितः।
 लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः ॥ ८२
 कल्पादौ बुद्धिपूर्वं तु स्थापितोऽसौ स्वयम्भुवा।
 इत्येष संनिवेशो वै सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ॥ ८३
 विश्वरूपं प्रधानस्य परिणाहोऽस्य यः स्मृतः।
 तेषां शक्यं न संख्यातुं याथातथ्येन केनचित्।
 गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा ॥ ८४

परस्पर संयुक्त होते हैं। विद्वान्‌लोग इनके इस सम्बन्धको अमिश्रित ही मानते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी, ज्योतिर्गणों, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष, नदी तथा उनमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी स्थिति है। ज्योतिर्गणोंका यह स्थितिक्रम सूर्यके कारण ही है। (मण्डलाकार घूमते समय) उन गणोंके मध्यमें आवर्त-सा दीख पड़ता है। वह बीचमें ध्रुवके आ जानेसे संक्षिप्त हो जाता है। वह चारों ओर ऊँचाईपर गोलाकार फैला रहता है। परमेश्वरने लोकोंकी प्रयोजन-सिद्धिके लिये उसे बनाया है। ब्रह्माने कल्पके आदिमें बहुत सोच-विचारकर इसे स्थापित किया है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डलकी स्थिति है। प्रधान (प्रकृति)-का यह विश्वरूप परिणाम अत्यन्त अद्भुत है। कोई भी इसकी यथार्थ गणना नहीं कर सकता। मनुष्य अपने चर्मचक्षुओंसे इन ज्योतिर्गणोंके गमनागमनको नहीं देख सकता ॥ ७७—८४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे देवगृहवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें देवगृहवर्णन नामक एक सौ अद्वाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२८ ॥

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय

त्रिपुर-निर्माणका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं जगाम भगवान् पुरारित्वं महेश्वरः।
 ददाह च कथं देवस्तन्नो विस्तरतो वद ॥ १
 पृच्छामस्त्वां वयं सर्वे बहुमानात् पुनः पुनः।
 त्रिपुरं तद् यथा दुर्गं मयमायाविनिर्मितम्।
 देवेनैकेषुणा दग्धं तथा नो वद मानद ॥ २

ऋषियोंने पूछा—सबको मान देनेवाले सूतजी! भगवान् महेश्वर पुरारि (त्रिपुरके शत्रु) किस कारण हो गये तथा उन देवाधिदेवने उसे कैसे दग्ध किया? यह आप हमलोगोंको विस्तारपूर्वक बतलाइये। हम सब लोग परम सम्मानपूर्वक आपसे बारंबार पूछ रहे हैं कि मयदानवकी मायाद्वारा विनिर्मित उस त्रिपुर दुर्गको भगवान् शंकरने एक ही बाणसे जिस प्रकार जला दिया था, हमलोगोंसे उस प्रसङ्गका विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वं त्रिपुरं* देवो यथा दारितवान् भवः ।
मयो नाम महामायो मायानां जनकोऽसुरः ॥ ३

निर्जितः स तु संग्रामे तताप परमं तपः ।
तपस्यन्तं तु तं विप्रा दैत्यावन्यावनुग्रहात् ॥ ४

तस्यैव कृत्यमुद्दिश्य तेपतुः परमं तपः ।
विद्युन्माली च बलवांस्तारकाख्यश्च वीर्यवान् ॥ ५

मयतेजः समाक्रान्तौ तेपतुर्मर्यपार्श्वगौ ।
लोका इव यथा मूर्तास्त्रयस्त्रय इवाग्रयः ॥ ६

लोकत्रयं तापयन्तस्ते तेपुर्दानिवास्तपः ।
हेमन्ते जलशस्यासु ग्रीष्मे पञ्चतपे तथा ॥ ७

वर्षासु च तथाऽऽकाशे क्षपयन्तस्तनूः प्रियाः ।
सेवानाः फलमूलानि पुष्पाणि च जलानि च ॥ ८

अन्यथाचरिताहाराः पङ्केनाचितवल्कलाः ।
मग्नाः शैवालपङ्केषु विमलाविमलेषु च ॥ ९

निर्मासाश्च ततो जाताः कृशा धमनिसंतताः ।
तेषां तपः प्रभावेण प्रभावविधुतं यथा ॥ १०

निष्प्रभं तु जगत् सर्वं मन्दमेवाभिभाषितम् ।
दह्यमानेषु लोकेषु तैस्त्रिभिर्दानिवाग्निभिः ॥ ११

तेषामग्रे जगद्वन्धुः प्रादुर्भूतः पितामहः ।
ततः साहसकर्तारः प्राहुस्ते सहसागतम् ॥ १२

स्वकं पितामहं दैत्यास्तं वै तुष्टुवुरेव च ।

अथ तान् दानवान् ब्रह्मा तपसा तपनप्रभान् ॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवान् शंकरने जिस प्रकार त्रिपुरको विदीर्ण किया था (उसका वर्णन कर रहा हूँ), सुनिये । मय नामक एक महान् मायावी असुर था । वह विभिन्न प्रकारकी मायाओंका उत्पादक था । वह संग्राममें देवताओंद्वारा पराजित हो गया था, इसलिये घोर तपस्यामें संलग्न हो गया । द्विजवरो ! उसे तपस्या करते देख दो अन्य दैत्य भी अनुग्रहवश उसीके कार्यके उद्देश्यसे उग्र तपस्यामें जुट गये । उनमें एक महाबली विद्युन्माली और दूसरा महापराक्रमी तारक था । ये दोनों मयके तेजसे आकृष्ट होकर उसीके पार्श्वभागमें बैठकर तपस्या कर रहे थे । उस समय तपस्यासे उद्धासित होते हुए वे तीनों ऐसा प्रतीत हो रहे थे, मानो लौकिक रूपमें मूर्तिमान् तीनों अग्नियाँ हों । वे तीनों दानव त्रिलोकीको संतप्त करते हुए तपस्यामें संलग्न थे । वे हेमन्त-ऋतुमें जलमें शयन करते, ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्नि तापते और वर्षा-ऋतुमें आकाशके नीचे खुले मैदानमें खड़े रहते थे । इस प्रकार वे सबको परम प्रिय लगनेवाले अपने शरीरको सुखा रहे थे और मात्र फल, मूल, फूल और जलके आहारपर जीवन व्यतीत कर रहे थे अथवा वे कभी-कभी निराहार भी रह जाते थे । उनके वल्कलांपर कीचड़ जम गया था और वे स्वयं विमल देहधारी होकर भी गंदे सेवारके कीचड़ोंमें निमग्न रहते थे । इस कारण उनके शरीरका मांस गल गया था । वे इतने दुर्बल हो गये थे कि उनके शरीरकी नसें बाहर उभड़ आयी थीं । उनकी तपस्याके प्रभावसे सारा जगत् निष्प्रभ हो गया—काँप उठा । सर्वत्र उदासी छा गयी । सभीके स्वर मन्द पड़ गये । इस प्रकार उन तीनों दानवरूपी अग्नियोंसे त्रिलोकीको जलते देखकर जगद्वन्धु पितामह ब्रह्मा उनके समक्ष प्रकट हुए ॥ ३—११ ३ ॥

तब वे दैत्य अपने पितामहको सहसा सम्मुख उपस्थित देखकर अत्यन्त साहस करके बोले और उनकी स्तुति करने लगे । उस समय ब्रह्माके नेत्र और मुख हृष्टसे खिल उठे थे । तब उन्होंने तपस्याके प्रभावसे सूर्यके समान प्रभावशाली उन दानवोंसे

* यह महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग बहुत कुछ स्कन्द ५ । ४३, शिव, सौरप० २९-३० लिङ्गप० ७३-४, आदि पुराणोंसे मिलता है । वैसे यह अपेक्षाकृत सर्वाधिक विस्तृत है तथा आगे के नर्मदा-माहात्म्यमें इसी ग्रन्थमें पुनः आया है । इसका बीज तै० सं० ६ । ३ । २ । १, शतप० ६ । ३ । ३ । २५ आदिमें प्राप्त होता है और पुष्टदन्तने भी 'शिवमहिमःस्तव' १८-१९ आदिके 'रथः क्षोणी यन्ता' 'त्रिपुरतुण', 'त्रिपुरहर' आदिमें इसकी खूब उत्तेज्ञा की है ।

उवाच हर्षपूर्णक्षो हर्षपूर्णमुखस्तदा।
 वरदोऽहं हि वो वत्सास्तपस्तोषित आगतः ॥ १४
 विद्यतामीप्सितं यच्च साभिलाषं तदुच्यताम्।
 इत्येवमुच्यमानं तु प्रतिपन्नं पितामहम् ॥ १५
 विश्वकर्मा मयः प्राह प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः।
 देव दैत्याः पुरा देवैः संग्रामे तारकामये ॥ १६
 निर्जितास्ताडिताश्वैव हताश्चाप्यायुधैरपि।
 देवैर्वैरानुबन्धाच्च धावन्तो भयवेषिताः ॥ १७
 शरणं नैव जानीमः शर्म वा शरणार्थिनः।
 सोऽहं तपःप्रभावेण तव भक्त्या तथैव च ॥ १८
 इच्छामि कर्तुं तद् दुर्गं यद् देवैरपि दुस्तरम्।
 तस्मिंश्च त्रिपुरे दुर्गं मत्कृते कृतिनां वर ॥ १९
 भूम्यग्निजलदुर्गाणां शापानां मुनितेजसाम्।
 देवप्रहरणानां च देवानां च प्रजापते ॥ २०
 अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम्।
 विश्वकर्मा इतीवोक्तः स तदा विश्वकर्मणा ॥ २१
 उवाच प्रहसन् वाक्यं मयं दैत्यगणाधिपम्।
 सर्वामरत्वं नैवास्ति असद्वृत्तस्य दानव ॥ २२
 तस्माद् दुर्गविधानं हि तृणादपि विधीयताम्।
 पितामहवचः श्रुत्वा तदैव दानवो मयः ॥ २३
 प्राञ्जलिः पुनरप्याह ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्।
 यस्तदेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत् ॥ २४
 समं संस्युगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत्।
 एवमस्त्विति चाप्युक्त्वा मयं देवः पितामहः ॥ २५
 स्वप्ने लब्धो यथार्थो वै तत्रैवादर्शनं ययौ।
 गते पितामहे दैत्या गता मयरविप्रभाः ॥ २६
 वरदानाद् विरेजुस्ते तपसा च महाबलाः।
 स मयस्तु महाबुद्धिर्दानवो वृषसत्तमः ॥ २७

कहा—‘बच्चो ! मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे संतुष्ट होकर तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। तुमलोगोंकी जो अभिलाषा हो, उसे कहो और अपना अभीष्ट वर माँग लो।’ वर देनेके लिये उत्सुक पितामहको इस प्रकार कहते हुए देखकर असुरोंके शिल्पी मयके नेत्र अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो उठे। तब उसने कहा—‘देव ! प्राचीनकालमें घटित हुए तारकामय संग्राममें देवताओंने दैत्योंको पराजित कर दिया था। उन्होंने अस्त्रोंके प्रहारसे कुछको तो मौतके घाट उतार दिया था और कुछको बुरी तरहसे घायल कर दिया था। उस समय देवताओंके साथ वैर बँध जानेके कारण हमलोग भयसे कम्पित होकर चारों दिशाओंमें भागते फिरे, परंतु हम शरणार्थियोंको यह ज्ञात न हुआ कि हमारे लिये शरणदाता कौन है तथा हमारा कल्याण कैसे होगा। इसलिये मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे तथा आपकी भक्तिके बलपर एक ऐसे दुर्गका निर्माण करना चाहता हूँ जिसका पार करना देवताओंके लिये भी कठिन हो। सुकृती पुरुषोंमें श्रेष्ठ पितामह ! मेरे द्वारा निर्मित उस त्रिपुरमें पृथ्वी, जल एवं अग्निसे निर्मित तथा सुरक्षित दुर्गोंका और मुनियोंके प्रभावसे दिये गये शापों, देवताओंके अस्त्रों और देवोंका प्रवेश न हो सके। प्रजापते ! यदि आपको अच्छा लगे तो वह त्रिपुर सभीके लिये अलङ्घनीय हो जाय ॥ १२—२० ॐ ॥

तब असुरोंके विश्वकर्मा (महाशिल्पी) मयद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर विश्व-स्थान ब्रह्मा दैत्यगणोंके अधीश्वर मयसे हँसते हुए बोले—‘दानव ! (तुझ-जैसे) असदाचारीके लिये सर्वामरत्वका विधान नहीं है, अतः तुम तृणसे ही अपने दुर्गका निर्माण करो।’ उस समय पितामहकी ऐसी बात सुनकर मयदानवने हाथ जोड़कर पुनः पद्मयोनि ब्रह्मासे कहा—‘जो एक ही बारके छोड़े गये एक ही बाणसे उस दुर्गको जला दे, वही युद्धस्थलमें हम सबको मार सके, शेष प्राणियोंसे हमलोग अवध्य हो जायँ।’ तदनन्तर मयसे ‘एवमस्तु—ऐसा ही हो’ कहकर भगवान् ब्रह्मा स्वप्रमें प्राप्त हुए धनकी तरह वहीं अन्तर्हित हो गये। पितामहके चले जानेपर सूर्यके समान प्रभावशाली मय आदि दानव भी अपने स्थानको चले गये। वे महाबली दानव तपस्या तथा वरदानके प्रभावसे अत्यन्त शोभित हो रहे थे। कुछ समयके बाद दानवश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् मय-

दुर्ग व्यवसितः कर्तुमिति चाचिन्तयत् तदा ।
कथं नाम भवेद् दुर्गं तन्मया त्रिपुरं कृतम् ॥ २८
वत्स्यते तत्पुरं दिव्यं मत्तो नान्यैर्न संशयः ।
यथा चैकेषुणा तेन तत्पुरं न हि हन्यते ॥ २९
देवैस्तथा विधातव्यं मया मतिविचारणम् ।
विस्तारो योजनशतमेकैकस्य पुरस्य तु ॥ ३०
कार्यस्तेषां च विष्कम्भशैकैकशतयोजनम् ।
पुष्ययोगेण निर्माणं पुराणां च भविष्यति ॥ ३१
पुष्ययोगेण च दिवि समेष्यन्ति परस्परम् ।
पुष्ययोगेण युक्तानि यस्तान्यासादयिष्यति ॥ ३२
पुराण्येकप्रहारेण स तानि निहनिष्यति ।
आयसं तु क्षितितले राजतं तु नभस्तले ॥ ३३
राजतस्योपरिष्टात् तु सौवर्णं भविता पुरम् ।
एवं त्रिभिः पुरैर्युक्तं त्रिपुरं तद् भविष्यति ।
शतयोजनविष्कम्भैरन्तरैस्तद् दुरासदम् ॥ ३४
अद्वालकैर्यन्त्रशतद्विभिश्च

सचक्रशूलोपलकम्पनैश्च ।

द्वारैर्महामन्दरमेरुकल्पैः ग्राकार-

शृङ्गैः सुविराजमानम् ॥ ३५

सतारकाख्येन मयेन गुम्

स्वस्थं च गुम् तडिमालिनापि ।

को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो

मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम् ॥ ३६

दानव दुर्गकी रचना करनेके लिये उद्यत हो विचार करने लगा । मेरे द्वारा निर्मित होनेवाला यह त्रिपुर दुर्ग कैसा बनाया जाय, जिससे उस दिव्य पुरमें निस्संदेह मेरे अतिरिक्त अन्य कोई निवास न कर सके तथा उसके द्वारा छोड़े गये एक बाणसे यह पुर बोंधा न जा सके । देवगण उसे नष्ट करनेकी चेष्टा करेंगे ही, किंतु मुझे तो अपनी बुद्धिसे विचार कर लेना चाहिये । उनमें एक-एक पुरका विस्तार सौ योजनका करना है तथा उनके विष्कम्भ (स्तम्भ या शहतीर) भी एक-एक सौ योजनके बनाने हैं ॥ २१—३६ ॥

इन पुरोंका निर्माण पुष्य नक्षत्रके योगमें होगा । इसी पुष्य नक्षत्रके योगमें ये तीनों पुर आकाशमण्डलमें परस्पर मिल जायँगे । जो मनुष्य पुष्य नक्षत्रके योगमें इन तीनों पुरोंको परस्पर मिला हुआ पा लेगा, वही एक बाणके प्रहारसे इन्हें नष्ट कर सकेगा । उनमेंसे एक पुर भूतलपर लौहमय, दूसरा गगनतलमें रजतमय और तीसरा रजतमय पुरसे ऊपर सुवर्णमय होगा । इस प्रकार तीनों पुरोंसे युक्त होनेके कारण वह त्रिपुर नामसे विख्यात होगा । इनके अन्तर्भागमें सौ योजन विस्तारवाले विष्कम्भ (बाधक स्तम्भ) रहेंगे, जिससे यह दूसरोंद्वारा दुष्प्राप्य होगा । वह त्रिपुर अद्वालिकाओं, एक ही बारमें सौ मनुष्योंका वध करनेवाले यन्त्रों, चक्र, त्रिशूल, उपल और ध्वजाओं, मन्दराचल और सुमेरु गिरि-सरीखे द्वारों और शिखर-सदृश परकोटोंसे सुशोभित होगा । उनमें तारक लौहमय पुरकी और मय सुवर्णमय पुरकी रक्षा करेंगे तथा आकाशस्थित रजतमय पुरकी रक्षामें विद्युन्माली नियुक्त रहेगा । ऐसी दशामें एकमात्र भगवान् शंकरको छोड़कर दूसरा कौन इस त्रिपुरका विनाश करनेमें समर्थ हो सकेगा ॥ ३१—३६ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२९ ॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय

दानवश्रेष्ठ मयद्वारा त्रिपुरकी रचना

सूत उवाच

इति चिन्तायुतो दैत्यो दिव्योपायप्रभावजम्।
चकार त्रिपुरं दुर्गं मनःसंचारचारितम्॥ १
प्राकारोऽनेन मार्गेण इह वामुत्र गोपुरम्।
इह चाह्वालकद्वारमिह चाह्वालगोपुरम्॥ २
राजमार्ग इतश्चापि विपुलो भवतामिति।
रथ्योपरथ्याः सदृशा इह चत्वर एव च॥ ३
इदमन्तःपुरस्थानं रुद्रायतनमत्र च।
सवटानि तडागानि ह्यत्र वाप्यः सरांसि च॥ ४
आरामाश्च सभाश्चात्र उद्यानान्यत्र वा तथा।
उपनिर्गमो दानवानां भवत्यत्र मनोहरः॥ ५
इत्येवं मानसं तत्राकल्पयत् पुरकल्पवित्।
मयेन तत्पुरं सृष्टं त्रिपुरं त्विति नः श्रुतम्॥ ६
काष्णायसमयं यत्तु मयेन विहितं पुरम्।
तारकाख्योऽधिपस्तत्र कृतस्थानाधिपोऽवसत्॥ ७
यत्तु पूर्णेन्दुसंकाशं राजतं निर्मितं पुरम्।
विद्युन्माली प्रभुस्तत्र विद्युन्माली त्विवाम्बुदः॥ ८
सुवर्णाधिकृतं यच्च मयेन विहितं पुरम्।
स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः॥ ९
तारकस्य पुरं तत्र शतयोजनमन्तरम्।
विद्युन्मालिपुरं चापि शतयोजनकेऽन्तरे॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार सोच-विचारकर (महाशिल्पी) मयदानव दिव्य उपायोंके प्रभावसे बननेवाले तथा मनके संकल्पानुसार चलनेवाले त्रिपुर नामक दुर्गकी रचना करनेको उद्यत हुआ। उसने सोचा कि इस मार्गमें परकोटा बनेगा, यहाँ अथवा वहाँ गोपुर (नगरका फाटक) रहेगा, यहाँ अद्वालिकाका दरवाजा तथा यहाँ महलका मुख्य द्वार रखना उचित है। इधर विशाल राजमार्ग होना चाहिये, यहाँ दोनों ओर पगड़ंडियोंसे युक्त सड़कें और गलियाँ होनी चाहिये, यहाँ चबूतरा रखना ठीक है, यह स्थान अन्तःपुरके योग्य है, यहाँ शिव-मन्दिर रखना अच्छा होगा, यहाँ वट-वृक्षसहित तड़ागों, बावलियों और सरोवरोंका निर्माण उचित होगा। यहाँ बगीचे, सभाभवन और वाटिकाएँ रहेंगी तथा यहाँ दानवोंके निकलनेके लिये मनोहर मार्ग रहेगा। इस प्रकार नगर-रचनामें निपुण मयने केवल मनःसंकल्पमात्रसे उस दिव्य त्रिपुर नगरकी रचना कर डाली थी, ऐसा हमने सुना है। मयने जो काले लोहेका पुर निर्मित किया था, उसका अधिपति तारकासुर हुआ। वह उसपर अपना आधिपत्य जमाकर वहाँ निवास करने लगा। दूसरा जो पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् रजतमय पुर निर्मित हुआ, उसका स्वामी विद्युन्माली हुआ। यह विद्युत्समूहोंसे युक्त बादलकी तरह जान पड़ता था। मयद्वारा जिस तीसरे स्वर्णमय पुरकी रचना हुई, उसमें सामर्थ्यशाली मय स्वयं गया और उसका अधिपति हुआ। जिस प्रकार तारकासुरके पुरसे विद्युन्मालीका पुर सौ योजनकी दूरीपर था, उसी प्रकार विद्युन्माली और मयके पुरोंमें भी सौ योजनका अन्तर था। मयदानवका विशाल पुर मेरुपर्वतके समान दीख पड़ता था॥ १—१० ३॥

मेरुपर्वतसंकाशं मयस्यापि पुरं महत्।
पुष्ट्यसंयोगमात्रेण कालेन स मयः पुरा॥ ११
कृतवांस्त्रिपुरं दैत्यस्त्रिनेत्रः पुष्टकं यथा।
येन येन मयो याति प्रकुर्वीणः पुरं पुरात्॥ १२
प्रशस्तास्तत्र तत्रैव वारुण्या मालया स्वयम्।
रुक्मस्त्र्यायसानां च शतशोऽथ सहस्रशः॥ १३
रत्नाचितानि शोभन्ते पुराण्यमरविद्विषाम्।
प्रासादशतजुष्टानि कूटागारोत्कटानि च॥ १४
सर्वेषां कामगानि स्युः सर्वलोकातिगानि च।
सोद्यानवापीकूपानि सपद्मसरवन्ति च॥ १५
अशोकवनभूतानि कोकिलारुतवन्ति च।
चित्रशालविशालानि चतुःशालोत्तमानि च॥ १६
सप्ताष्टदशभौमानि सत्कृतानि मयेन च।
बहुध्वजपताकानि स्त्रगदामालङ्घतानि च॥ १७
किङ्किणीजालशब्दानि गन्धवन्ति महान्ति च।
सुसंयुक्तोपलिसानि पुष्टनैवेद्यवन्ति च॥ १८
यज्ञधूमान्धकाराणि सम्पूर्णकलशानि च।
गगनावरणाभानि हंसपद्मिनिभानि च॥ १९
पद्मकीकृतानि राजन्ते गृहाणि त्रिपुरे पुरे।
मुक्ताकलापैर्लम्बद्विर्हसन्तीव शशिश्रियम्॥ २०
मल्लिकाजातिपुष्ट्याद्यैर्गन्धधूपाधिवासितैः ।
पञ्चेन्द्रियसुखैर्नित्यं समैः सत्पुरुषैरिव॥ २१
हैमराजतलौहाद्यमणिरत्नाङ्गनाङ्किताः ।
प्राकारास्त्रिपुरे तस्मिन् गिरिप्राकारासंनिभाः॥ २२

जिस प्रकार पूर्वकालमें त्रिलोचन भगवान् शंकरने पुष्टककी रचना की थी, उसी प्रकार मयदानवने केवल पुष्टनक्षत्रके संयोगसे कालकी व्यवस्था करके त्रिपुरका निर्माण किया। पुरकी रचना करता हुआ मय जिस-जिस मार्गसे एक पुरसे दूसरे पुरमें जाता था, वहाँ-वहाँ वरुणकी दी हुई मालाद्वारा उत्पन्न चमत्कारसे सोने, चाँदी और लोहेके सैकड़ों-हजारों भवन स्वयं ही बनते जाते थे। उन देव-शत्रुओंके पुर रत्नखचित होनेके कारण विशेष शोभा पा रहे थे। वे सैकड़ों महलोंसे युक्त थे। उनमें ऊँचे-ऊँचे कूटागार (छतके ऊपरकी कोठरियाँ) बने थे। उनमें सभी लोग स्वच्छन्द विचरण करते थे। वे (सुन्दरतामें) सभी लोकोंका अतिक्रमण करनेवाले थे। उनमें उद्यान, बावली, कुआँ और कमलोंसे युक्त सरोवर शोभा पा रहे थे। उनमें अशोक वृक्षके बहुतेरे वन थे, जिनमें कोयलें कूजती रहती थीं। उनमें बड़ी-बड़ी चित्रशालाएँ और उत्तम अटारियाँ बनी थीं। मयने क्रमशः सात, आठ और दस तल्लेवाले भवनोंका बड़ी सुन्दरताके साथ निर्माण किया था। उनपर बहुसंख्यक ध्वज और पताकाएँ फहरा रही थीं। वे मालाकी लड़ियोंसे अलंकृत थे। उनमें लगी हुई क्षुद्र घण्टिकाओंके शब्द हो रहे थे। वे उत्कृष्ट गन्धयुक्त पदार्थोंसे सुवासित थे। उन्हें समुचितरूपसे उपलिस किया गया था। उनमें पुष्ट, नैवेद्य आदि पूजन-सामग्री सँजोयी गयी थी और जलपूर्ण कलश स्थापित थे। वे यज्ञजन्य धुएँसे अन्धकारित हो रहे थे। उस त्रिपुर नामक पुरमें आकाशसरीखे नीले तथा हंसोंकी पद्मिके समान उज्ज्वल भवन कतारोंमें सुशोभित हो रहे थे। उनमें लटकती हुई मोतियोंकी झालरें ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो चन्द्रमाकी शोभाका उपहास कर रही हैं॥ ११—२०॥

वे नित्य मल्लिका, चमेली आदि सुगन्धित पुष्टों तथा गन्ध, धूप आदिसे अधिवासित होनेसे पाँचों इन्द्रियोंके सुखोंसे समन्वित सत्पुरुषोंकी तरह सुशोभित हो रहे थे। उस त्रिपुरमें सोने, चाँदी और लोहेके प्राचीर बने हुए थे, जिनमें मणि, रत्न और अंजन (काले पत्थर) जड़े हुए

एकैकस्मिन् पुरे तस्मिन् गोपुराणां शतं शतम्।
 सपताकाध्वजवतां दृश्यन्ते गिरिशृङ्घवत्॥ २३
 नूपुरारावरम्याणि त्रिपुरे तत्पुराण्यथि।
 स्वर्गातिरिक्तश्रीकाणि तत्र कन्यापुराणि च॥ २४
 आरामैश्च विहारैश्च तडागवटचत्वरैः।
 सरोभिश्च सरिद्विश्च वनैश्चोपवनैरपि॥ २५
 दिव्यभोगोपभोगानि नानारत्नयुतानि च।
 पुष्पोत्करैश्च सुभगस्त्रिपुरस्योपनिर्गमाः।
 परिखाशतगम्भीराः कृता मायानिवारणैः॥ २६
 निशम्य तददुर्गविधानमुत्तमं
 कृतं मयेनाद्भुतवीर्यकर्मणा।
 दितेः सुता दैवतराजवैरिणः
 सहस्रशः प्रापुरनन्तविक्रमाः॥ २७
 तदा सुरैर्दर्पितवैरिमर्दनै-
 र्जनार्दनैः शैलकरीन्द्रसंनिभैः।
 बभूव पूर्णं त्रिपुरं तथा पुरा
 यथाम्बरं भूरिजलैर्जलप्रदैः॥ २८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने त्रिशंदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३०॥
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें एक सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३०॥

थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो पर्वतोंकी चहारदीवारी हो। उस एक-एक पुरमें सैकड़ों गोपुर बने थे, जिनपर ध्वजा और पताकाएँ फहरा रही थीं। वे पर्वत-शिखरके समान दीख रहे थे। उस त्रिपुरमें नूपुरोंकी झनकार होती थी, जिससे वे अत्यन्त रमणीय लग रहे थे। उन पुरोंका सौन्दर्य स्वर्गसे भी बढ़कर था। उनमें कन्यापुर भी बने हुए थे। वे बगीचों, विहारस्थलों, तड़गों, वटवृक्षके नीचे बने चबूतरों, सरोवरों, नदियों, बनों और उपवनोंसे सम्पन्न थे। वे दिव्य भोगकी सामग्रियों और नाना प्रकारके रसोंसे परिपूर्ण थे। उस त्रिपुरके बाहर निकलनेवाले मार्गोंपर पुष्प बिखेरे गये थे, जिससे वे बड़े सुन्दर लग रहे थे। उनमें मायाको निवारण करनेवाले उपकरणोंद्वारा सैकड़ों गहरी खाइयाँ बनायी गयी थीं। अद्भुत पराक्रमयुक्त कर्म करनेवाले मयके द्वारा निर्मित उस उत्तम दुर्गकी रचनाका वृत्तान्त सुनकर देवराज इन्द्रके शत्रु अनन्त पराक्रमी हजारों दैत्य वहाँ आ पहुँचे। उस समय वह त्रिपुर गर्वाले शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाले, जनताके लिये कष्टदायक तथा पर्वतीय गजेन्द्रोंके समान विशालकाय असुरोंसे उसी प्रकार खचाखच भर गया, जैसे अधिक जलवाले बादलोंसे आकाश आच्छादित हो जाता है॥ २१—२८॥

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

त्रिपुरमें दैत्योंका सुखपूर्वक निवास, मयका स्वप्न-दर्शन और दैत्योंका अत्याचार

सूत उवाच

निर्मिते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना।
 तद् दुर्ग दुर्गतां प्राप बद्धवैरैः सुरासुरैः॥ १
 सकलत्राः सपुत्राश्च शस्त्रवन्तोऽन्तकोपमाः।
 मयादिष्टानि विविशुर्गृहाणि हृषिताश्च ते॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार असुरशिल्पी मयने त्रिपुर नामक दुर्गका निर्माण किया, परंतु अन्ततोगत्वा परस्पर बँधे हुए वैरवाले देवताओं और असुरोंके लिये वह दुर्ग दुर्गम हो गया। उस समय वे सभी शस्त्रधारी दैत्य जो यमराजके समान भयंकर थे, मयके आदेशसे अपनी स्त्रियों और पुत्रोंके साथ हर्षपूर्वक उन गृहोंमें

सिंहा वनमिवानेके मकरा इव सागरम्।
रोषैश्चैवातिपारुष्यैः शरीरमिव संहतैः ॥ ३
तद्वद् बलिभिरध्यस्तं तत्पुरं देवतारिभिः ।
त्रिपुरं संकुलं जातं दैत्यकोटिशताकुलम् ॥ ४
सुतलादपि निष्पत्य पातालाद् दानवालयात् ।
उपतस्थुः पयोदाभा ये च गिर्युपजीविनः ॥ ५
यो यं प्रार्थयते कामं सम्प्रासस्त्रिपुराश्रयात् ।
तस्य तस्य मयस्तत्र मायया विदधाति सः ॥ ६
सचन्द्रेषु प्रदोषेषु साम्बुजेषु सरःसु च ।
आरामेषु सचूतेषु तपोधनवनेषु च ॥ ७
स्वङ्गाश्रन्दनदिग्धाङ्गा मातङ्गाः समदा इव ।
मृष्टभरणवस्त्राश्च मृष्टस्त्रगनुलेपनाः ॥ ८
प्रियाभिः प्रियकामाभिर्हावभावप्रसूतिभिः ।
नारीभिः सततं रेमुर्दिताश्चैव दानवाः ॥ ९
मयेन निर्मिते स्थाने मोदमाना महासुराः ।
अर्थे धर्मे च कामे च निदधुस्ते मतीः स्वयम् ॥ १०
तेषां त्रिपुरयुक्तानां त्रिपुरे त्रिदशारिणाम् ।
ब्रजति स्म सुखं कालः स्वर्गस्थानां यथा तथा ॥ ११
शुश्रूषन्ते पितृन् पुत्राः पत्न्यश्चापि पतींस्तथा ।
विमुक्तकलहाश्चापि प्रीतयः प्रचुराभवन् ॥ १२
नाधर्मस्त्रिपुरस्थानां बाधते वीर्यवानपि ।
अर्चयन्तो दितेः पुत्रास्त्रिपुरायतने हरम् ॥ १३
पुण्याहशब्दानुच्चेरुराशीर्वादांश्च वेदगान् ।
स्वनूपरवोन्मिश्रान् वेणुवीणारवानपि ॥ १४
हासश्च वरनारीणां चित्तव्याकुलकारकः ।
त्रिपुरे दानवेन्द्राणां रमतां श्रूयते सदा ॥ १५

प्रविष्ट हुए। जैसे अनेकों सिंह बनको, अनेकों मगरमच्छ सागरको और क्रोध एवं अत्यन्त कठोरता परस्पर सम्मिलित होकर शरीरको अपने अधिकारमें कर लेते हैं, वैसे ही उन महाबली देव-शत्रुओंद्वारा वह पुर व्यास हो गया। इस प्रकार वह त्रिपुर असंख्य (अरबों) दैत्योंसे भर गया। उस समय सुतल और पाताल (दानवोंके निवासस्थान)-से निकलकर आये हुए दानव तथा (देवताओंके भयसे छिपकर) पर्वतोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले दैत्य भी, जो काले बादलकी-सी कान्तिवाले थे, (शरणार्थीके रूपमें) वहाँ उपस्थित हुए। त्रिपुरमें आश्रय लेनेके कारण जो असुर जिस वस्तुकी कामना करता था, उसकी उस कामनाको मयदानव मायद्वारा पूर्ण कर देता था। जिनके सुडौल शरीरपर चन्दनका अनुलेप लगा था, जो निर्मल आभूषण, वस्त्र, माला और अङ्गरागसे अलंकृत थे तथा मतवाले गजेन्द्रसरीखे दीख रहे थे, ऐसे दानव चाँदनी रातोंमें एवं सायंकालके समय कमलसे सुशोभित सरोवरोंके तटपर, आमके बगीचों और तपोवनोंमें अपनी पत्नियोंके साथ निरन्तर हर्षपूर्वक विहार करते थे ॥ १—९ ॥

इस प्रकार मयद्वारा निर्मित उस स्थानपर निवास करते हुए वे महासुर आनन्दका उपभोग कर रहे थे। उन्होंने स्वयं ही धर्म, अर्थ और कामके सम्पादनमें अपनी बुद्धि लगायी। त्रिपुरमें निवास करनेवाले उन देव-शत्रुओंका समय ऐसा सुखमय व्यतीत हो रहा था, जैसे स्वर्गवासियोंका व्यतीत होता है। वहाँ पुत्र पितृगणोंकी तथा पत्नियाँ पतियोंकी सेवा करती थीं। वे परस्पर कलह नहीं करते थे। उनमें परम प्रेम था। किसी प्रकारका अर्धम प्रबल होनेपर भी त्रिपुर-निवासियोंको बाधा नहीं पहुँचाता था। वे दैत्य शिव-मन्दिरमें शङ्करजीकी अर्चना करते हुए वेदोक्त माङ्गलिक शब्दों एवं आशीर्वादोंका उच्चारण करते थे। त्रिपुरमें आनन्द मनानेवाले दानवेन्द्रोंके अपने नूपुरकी झनकारसे मिश्रित वेणु एवं वीणाके शब्द तथा सुन्दरी नारियोंके चित्तको व्याकुल कर देनेवाले हास सदा सुनायी पड़ते थे।

तेषामर्चयतां देवान् ब्राह्मणांश्च नमस्यताम्।
धर्मार्थकामतन्त्राणां महान् कालोऽभ्यवर्तत ॥ १६

अथालक्ष्मीरसूया च तृइबुभुक्षे तथैव च।
कलिश्च कलहश्चैव त्रिपुरं विविशुः सह ॥ १७

संध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरं च भयावहाः।
समध्यासुः समं घोराः शरीराणि यथाऽऽमयाः ॥ १८

सर्वं एते विशन्तस्तु मयेन त्रिपुरान्तरम्।
स्वप्ने भयावहा दृष्टा आविशन्तस्तु दानवान् ॥ १९

उदिते च सहस्रांशौ शुभभासाकरे रवौ।
मयः सभामाविवेश भास्कराभ्यामिवाम्बुदः ॥ २०

मेरुकूटनिभे रम्य आसने स्वर्णमण्डिते।
आसीनाः काञ्छनगिरेः शृङ्गे तोयमुचो यथा ॥ २१

पार्श्वयोस्तारकाख्यश्च विद्युन्माली च दानवः।
उपविष्टौ मयस्यान्ते हस्तिनः कलभाविव ॥ २२

ततः सुरारयः सर्वेऽशेषकोपा रणाजिरे।
उपविष्टा दृढं विद्वा दानवा देवशत्रवः ॥ २३

तेष्वासीनेषु सर्वेषु सुखासनगतेषु च।
मयो मायाविजनक इत्युवाच स दानवान् ॥ २४

खेचराः खेचरारावा भो भो दाक्षायणीसुताः*।
निशामयध्वं स्वप्नोऽयं मया दृष्टो भयावहः ॥ २५

चतस्रः प्रमदास्तत्र त्रयो मर्त्या भयावहाः।
कोपानलादीसमुखाः प्रविष्टस्त्रिपुरार्दिनः ॥ २६

इस प्रकार देवताओंकी अर्चना और ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेवाले तथा धर्म, अर्थ एवं कामके साधक उन दैत्योंका महान् समय व्यतीत होता गया। तदनन्तर अलक्ष्मी (दरिद्रता), असूया (गुणोंमें दोष निकालना), तृष्णा, बुभुक्षा (भूख), कलि और कलह—ये सब एक साथ मिलकर त्रिपुरमें प्रविष्ट हुए। इन भयदायक दुर्गाओंने सायंकाल त्रिपुरमें प्रवेश किया था। इन्होंने राक्षसोंपर ऐसा अधिकार जनाया, जैसे भयंकर व्याधियाँ शरीरोंको काबूमें कर लेती हैं। त्रिपुरके भीतर प्रवेश करते हुए इन दुर्गाओंको मयने स्वप्रमें दानवोंके शरीरमें भयानक रूपसे प्रविष्ट होते हुए देख लिया। तब सहस्र किरणधारी एवं उज्ज्वल प्रकाश करनेवाले सूर्यके उदय होनेपर मयने (तारक और विद्युन्मालीके साथ) दो सूर्योंसे युक्त बादलकी तरह सभाभवनमें प्रवेश किया। वहाँ वे मेरुगिरिके शिखरके समान सुन्दर स्वर्णमण्डित रमणीय आसनपर आसीन हो गये। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सुमेरुगिरिके शिखरपर बादल उमड़ आये हों। मयदानवके निकट एक ओर तारकासुर और दूसरी ओर दानवश्रेष्ठ विद्युन्माली बैठे हुए थे, जो हाथीके बच्चेकी तरह दीख रहे थे ॥ १०—२२ ॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अत्यन्त घायल होनेके कारण जिनके क्रोध शेष रह गये थे, वे सभी देवशत्रु दानव वहाँ आकर यथास्थान बैठ गये। इस प्रकार उन सबके सुखपूर्वक आसनपर बैठ जानेके पश्चात् मायाके उत्पादक मयने उन दानवोंसे इस प्रकार कहा—‘अरे दाक्षायणीके पुत्रो! तुमलोग आकाशमें विचरण करनेवाले तथा आकाशचारियोंमें विशेषरूपसे गर्जना करनेवाले हो। मैंने यह एक भयानक स्वप्र देखा है, उसे तुमलोग ध्यानपूर्वक सुनो। मैंने स्वप्रमें चार स्त्रियों और तीन पुरुषोंको पुरमें प्रवेश करते हुए देखा है। उनके रूप भयानक थे तथा

* दक्षकी कन्या दनुको ही यहाँ दाक्षायणी कहा गया है। सभी दानव कश्यपजीके द्वारा उत्पन्न इन्हीं दनुके पुत्र थे। दैत्यगण दितिके पुत्र थे।

प्रविश्य रुषितास्ते च पुराण्यतुलविक्रमाः ।
 प्रविष्टाः स्म शरीराणि भूत्वा बहुशरीरिणः ॥ २७
 नगरं त्रिपुरं चेदं तमसा समवस्थितम् ।
 सगृहं सह युष्माभिः सागराभ्यसि मज्जितम् ॥ २८
 उलूकं रुचिरा नारी नग्नाऽरुद्धा खरं तथा ।
 पुरुषः सिन्दुतिलकश्चतुरङ्गिस्त्रिलोचनः ॥ २९
 येन सा प्रमदा नुन्ना अहं चैव विबोधितः ।
 ईदृशी प्रमदा दृष्टा मया चातिभयावहा ॥ ३०
 एष ईदृशिकः स्वप्नो दृष्टो वै दितिनन्दनाः ।
 दृष्टः कथं हि कष्टाय असुराणां भविष्यति ॥ ३१
 यदि वोऽहं क्षमो राजा यदिदं वेत्थ चेद्विद्धितम् ।
 निबोधध्वं सुमनसो न चासूयितुमर्हथ ॥ ३२
 कामं चेष्ट्या च कोपं च असूयां संविहाय च ।
 सत्ये दमे च धर्मे च मुनिवादे च तिष्ठत ॥ ३३
 शान्तयश्च प्रयुज्यन्तां पूज्यतां च महेश्वरः ।
 यदि नामास्य स्वप्रस्य ह्रोवं चोपरमो भवेत् ॥ ३४
 कुप्यते नो ध्रुवं रुद्रो देवदेवस्त्रिलोचनः ।
 भविष्याणि च दृश्यन्ते यतो नस्त्रिपुरेऽसुराः ॥ ३५
 कलहं वर्जयन्तश्च अर्जयन्तस्तथाऽर्जवम् ।
 स्वप्नोदयं प्रतीक्षध्वं कालोदयमथापि च ॥ ३६
 श्रुत्वा दाक्षायणीपुत्रा इत्येवं मयभाषितम् ।
 क्रोधेष्ट्यावस्थया युक्ता दृश्यन्ते च विनाशगाः ॥ ३७
 विनाशमुपपश्यन्तो ह्यलक्ष्म्याध्यापितासुराः ।
 तत्रैव दृष्टा तेऽन्योन्यं संक्रोधापूरितेक्षणाः ॥ ३८

मुख क्रोधाग्रिसे उद्दीप हो रहे थे, जिससे ऐसा लगता था मानो वे त्रिपुरके विनाशक हैं। वे अतुल पराक्रमशाली प्राणी क्रोधसे भरे हुए थे और पुरोंमें प्रवेश करके अनेकों शरीर धारणकर दानवोंके शरीरोंमें भी घुस गये हैं। यह त्रिपुर नगर अन्धकारसे आच्छन्न हो गया है और गृह तथा तुमलोगोंके साथ ही सागरके जलमें डूब गया है। एक सुन्दरी स्त्री नंगी होकर उलूकपर सवार थी तथा उसके साथ एक पुरुष था, जिसके ललाटमें लाल तिलक लगा था। उसके चार पैर और तीन नेत्र थे। वह गधेपर चढ़ा हुआ था। उसने उस स्त्रीको प्रेरित किया, तब उसने मुझे नींदसे जगा दिया। इस प्रकारकी अत्यन्त भयावनी नारीको मैंने स्वप्रमें देखा है। दितिपुत्रो! मैंने इस प्रकारका स्वप्र देखा है और यह भी देखा है कि यह स्वप्र असुरोंके लिये किस प्रकार कष्टदायक होगा। इसलिये यदि तुमलोग हमें अपना उचितरूपसे राजा मानते हो और यह समझते हो कि इनका कथन हितकारक होगा तो मन लगाकर मेरी बात सुनो। तुमलोग किसीकी असूया (झूठी निन्दा) मत करो। काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया आदि दुर्गुणोंको एकदम छोड़कर सत्य, दम, धर्म और मुनिमार्गका आश्रय लो। शान्तिदायक अनुष्ठानोंका प्रयोग करो और महेश्वरकी पूजा करो। सम्भवतः ऐसा करनेसे स्वप्रकी शान्ति हो जाय। असुरो! (ऐसा प्रतीत हो रहा है कि) त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव भगवान् रुद्र निश्चय ही हमलोगोंपर कुपित हो गये हैं; क्योंकि हमारे त्रिपुरमें भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाएँ अभीसे दीख पड़ रही हैं। अतः तुमलोग कलहका परित्याग तथा सरलताका आश्रय लेकर इस दुःस्वप्रके परिणामस्वरूप आनेवाले कालकी प्रतीक्षा करो'॥ २३—३६॥

इस प्रकार मयदानवका भाषण सुनकर सभी दानव क्रोध और ईर्ष्याके वशीभूत हो गये तथा विनाशकी ओर जाते हुए-से दीखने लगे। अलक्ष्मीद्वारा प्रभावित हुए वे असुर अपने भावी विनाशको संनिकट देखते हुए भी परस्पर एक-दूसरेकी ओर देखकर वहाँ क्रोधसे भर गये।

अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालयाः।
हित्वा सत्यं च धर्मं च अकार्याण्युपचक्रमुः॥ ३९

द्विषन्ति ब्राह्मणान् पुण्यान् न चार्चन्ति हि देवताः।
गुरुं चैव न मन्यन्ते ह्यन्योन्यं चापि चुक्रुधुः॥ ४०

कलहेषु च सज्जन्ते स्वधर्मेषु हसन्ति च।
परस्परं च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः॥ ४१

उच्चैर्गुरुर्न् प्रभाषन्ते नाभिभाषन्ति पूजिताः।
अकस्मात् साश्रुनयना जायन्ते च समुत्सुकाः॥ ४२

दधिसक्तून् पयश्चैव कपित्थानि च रात्रिषु।
भक्षयन्ति च शेरन्त उच्छिष्टाः संवृतास्तथा॥ ४३

मूत्रं कृत्वोपस्पृशन्ति चाकृत्वा पादधावनम्।
संविशन्ति च शव्यासु शौचाचारविवर्जिताः॥ ४४

संकुचन्ति भयाच्चैव मार्जराणां यथाऽऽखुकः।
भार्या गत्वा न शुद्ध्यन्ति रहोवृत्तिषु निस्त्रपाः॥ ४५

पुरा सुशीला भूत्वा च दुःशीलत्वमुपागताः।
देवांस्तपोधनांश्चैव बाधन्ते त्रिपुरालयाः॥ ४६

मयेन वार्यमाणापि ते विनाशमुपस्थिताः।
विप्रियाण्येव विप्राणां कुर्वाणाः कलहैषिणः॥ ४७

वैभ्राजं नन्दनं चैव तथा चैत्ररथं वनम्।
अशोकं च वराशोकं सर्वर्तुकमथापि च॥ ४८

स्वर्गं च देवतावासं पूर्वदेववशानुगाः।
विध्वंसयन्ति संकुद्धास्तपोधनवनानि च॥ ४९

उनकी आँखें लाल हो गयीं। तदनन्तर दैव (भाग्य)-से परिच्युत हुए त्रिपुरनिवासी दानव सत्य और धर्मका परित्याग कर निन्द्य कर्मोंमें प्रवृत्त हो गये। वे पवित्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करने लगे। उन्होंने देवताओंकी अर्चना छोड़ दी। वे गुरुजनोंका मान नहीं करते थे और परस्पर क्रोधपूर्ण व्यवहार करने लगे। वे कलहमें प्रवृत्त होकर अपने धर्मका उपहास करने लगे और 'मैं ही सब कुछ हूँ' ऐसा कहते हुए परस्पर एक-दूसरेकी निन्दा करने लगे। वे गुरुजनोंसे कड़े शब्दोंमें बोलते थे। स्वयं सत्कृत होनेपर भी उन्होंने अपनेसे नीची कोटिवालोंसे बोलना भी छोड़ दिया। उनकी आँखोंमें अकस्मात् आँसू उमड़ आते थे और वे उत्कण्ठित-से जो जाते थे। वे रातमें दही, सत्तू, दूध और कैथका फल खाने लगे। जूँठे मुँह रहकर घिरे हुए स्थानमें शयन करने लगे। उनका शौचाचार ऐसा विनष्ट हो गया कि वे मूत्र-त्यागकर जलका स्पर्श तो करते, परंतु बिना पैर धोये ही बिछौनोंपर शयन करने लगे। वे अकस्मात् भयसे इस प्रकार संकुचित हो जाते थे, जैसे बिलावको देखकर चूहे हो जाते हैं। उन्होंने स्त्री-सहवासके बाद शरीरकी शुद्धि करना छोड़ दिया और गोपनीय कार्योंमें भी निर्लज्ज हो गये। वे त्रिपुरनिवासी दैत्य पहले सुशील थे, पर अब बड़े कूर हो गये तथा देवताओं और तपस्वियोंको कष्ट देने लगे। मयके मना करनेपर भी वे विनाशकी ओर बढ़ने लगे। उनके मनमें कलहकी इच्छा जाग उठी, जिससे वे ब्राह्मणोंका अपकार ही करते थे। इस प्रकार जो पहले देवताओंके वशीभूत थे, वे दानवगण सम्प्रति त्रिपुरका आश्रय पानेसे संकुद्ध होकर वैभ्राजके नन्दन, चैत्ररथ, अशोक, वराशोक, सर्वर्तुक आदि वनों, देवताओंके निवास-स्थान स्वर्ग तथा तपस्वियोंके वनोंका विध्वंस करने लगे। उस समय देव-मन्दिर और आश्रम नष्ट कर दिये गये। देवताओं और ब्राह्मणोंके उपासक मार

विध्वस्तदेवायतनाश्रमं च
सम्भग्रदेवद्विजपूजकं तु।
जगद्भूवामरराजदुष्टे-

रभिद्रुतं सस्यमिवालिवृन्दैः ॥ ५०

डाले गये। इस प्रकार देवराज इन्द्रके शत्रुओंद्वारा विध्वस्त किया हुआ जगत् ऐसा लगने लगा, जैसे टिड्डीदलोंद्वारा नष्ट की हुई अन्नकी फसल हो ॥ ३७—५० ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने दुःस्वप्नदर्शनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें दुःस्वप्न-दर्शन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३१ ॥

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

त्रिपुरवासी दैत्योंका अत्याचार, देवताओंका ब्रह्माकी शरणमें जाना और
ब्रह्मासहित शिवजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना

सूत उवाच

अशीलेषु प्रदुष्टेषु दानवेषु दुरात्मसु ।
लोकेषूत्साद्यमानेषु तपोधनवनेषु च ॥ १ ॥
सिंहनादे व्योमगानां तेषु भीतेषु जन्तुषु ।
त्रैलोक्ये भयसम्मूढे तमोऽन्धत्वमुपागते ॥ २ ॥
आदित्या वसवः साध्याः पितरो मरुतां गणाः ।
भीताः शरणमाजग्मुर्ब्रह्माणं प्रपितामहम् ॥ ३ ॥
ते तं स्वर्णोत्पलासीनं ब्रह्माणं समुपागताः ।
नेमुरुचुश्च सहिताः पञ्चास्यं चतुराननम् ॥ ४ ॥
वरगुप्तास्तवैवेह दानवास्त्रिपुरालयाः ।
बाधन्तेऽस्मान् यथा प्रेष्याननुशाधि ततोऽनघ ॥ ५ ॥
मेघागमे यथा हंसा मृगाः सिंहभयादिव ।
दानवानां भयात् तद्वद् भ्रमामो हि पितामह ॥ ६ ॥
पुत्राणां नामधेयानि कलत्राणां तथैव च ।
दानवैभ्राम्यमाणानां विस्मृतानि ततोऽनघ ॥ ७ ॥
देववेशमप्रभङ्गाश्च आश्रमभ्रंशनानि च ।
दानवैर्लोभमोहान्धैः क्रियन्ते च भ्रमन्ति च ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! त्रिपुरनिवासी दानवोंका शील तो भ्रष्ट ही हो गया था, उनमें दुष्टता भी कूट-कूटकर भर गयी थी। उन दुरात्माओंने लोकों एवं तपोवनोंका विनाश करना आरम्भ किया। वे आकाशमें जाकर सिंहनाद करते, जिसे सुनकर सारे जीव-जन्म भयभीत हो जाते थे। इस प्रकार जब सारी त्रिलोकी भयके कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी और सर्वत्र अन्धकार-सा छा गया, तब भयसे डेरे हुए आदित्य, वसु, साध्य, पितृ-गण और मरुदण्ड—ये सभी संगठित होकर प्रपितामह ब्रह्माकी शरणमें पहुँचे। वहाँ पञ्चमुख ब्रह्मा स्वर्णमय कमलासनपर आसीन थे। ये देवगण उनके निकट जाकर उन्हें नमस्कार कर (दानवोंके अत्याचारका) वर्णन करने लगे—‘निष्पाप पितामह ! त्रिपुरनिवासी दानव आपके ही वरदानसे सुरक्षित होकर हमलोगोंको सेवकोंकी तरह कष्ट दे रहे हैं, अतः आप उन्हें मना कीजिये। पितामह ! जैसे बादलोंके उमड़नेपर हंस और सिंहकी दहाड़से मृग भयभीत होकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार दानवोंके भयसे हमलोग इधर-उधर लुक-छिप रहे हैं। पापरहित ब्रह्मन् ! यहाँतक कि दानवोंद्वारा खदेड़े जानेके कारण हमलोगोंको अपने पुत्रों तथा पत्नियोंके नामतक भूल गये हैं। लोभ एवं मोहसे अंधे हुए दानवगण देवताओंके निवासस्थानोंको तोड़ते-फोड़ते तथा ऋषियोंके आश्रमोंको विध्वस्त करते हुए

यदि न त्रायसे लोकं दानवैर्विद्रुतं द्रुतम्।
 धर्षेणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत्॥९
 इत्येवं त्रिदशौरुक्तः पद्मयोनिः पितामहः।
 प्रत्याह त्रिदशान् सेन्द्रानिन्दुतुल्याननः प्रभुः॥१०
 मयस्य यो वरो दत्तो मया मतिमतां वराः।
 तस्यान्त एष सम्प्राप्तो यः पुरोक्तो मया सुराः॥११
 तच्च तेषामधिष्ठानं त्रिपुरं त्रिदर्शभाः।
 एकेषुपातमोक्षेण हन्तव्यं नेषुवृष्टिभिः॥१२
 भवतां च न पश्यामि कमप्यत्र सुर्षभाः।
 यस्तु चैकप्रहारेण पुरं हन्यात् सदानवम्॥१३
 त्रिपुरं नाल्पवीर्येण शक्यं हन्तुं शरेण तु।
 एकं मुक्त्वा महादेवं महेशानं प्रजापतिम्॥१४
 ते यूयं यदि अन्ये च क्रतुविध्वंसकं हरम्।
 याचामः सहिता देवं त्रिपुरं स हनिष्यति॥१५
 कृतः पुराणां विष्कम्भो योजनानां शतं शतम्।
 यथा चैकप्रहारेण हन्यते वै भवेन तु।
 पुष्ययोगेन युक्तानि तानि चैकक्षणेन तु॥१६
 ततो देवैश्च सम्प्रोक्तो यास्याम इति दुःखितैः।
 पितामहश्च तैः सार्थं भवसंसदमागतः॥१७
 तं भवं भूतभव्येणं गिरिशं शूलपाणिनम्।
 पश्यन्ति चोमया सार्थं नन्दिना च महात्मना॥१८
 अग्निवर्णमजं देवमग्निकुण्डनिभेक्षणम्।
 अग्न्यादित्यसहस्राभमग्निवर्णविभूषितम्॥१९
 चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रसौम्यतराननम्।
 आगम्य तमजं देवमथं तं नीललोहितम्॥२०
 स्तुवन्तो वरदं शाम्भुं गोपतिं पार्वतीपतिम्॥२१

घूम रहे हैं। यदि आप शीघ्र ही दानवोंद्वारा विध्वंस किये जाते हुए लोककी रक्षा नहीं करेंगे तो सारा जगत् देवता, मनुष्य और आश्रमसे रहित हो जायगा'॥१—९॥

जब देवताओंने पद्मयोनि ब्रह्मासे इस प्रकार निवेदन किया, तब चन्द्रमाके समान गौरवर्ण मुखवाले सामर्थ्यशाली ब्रह्माने इन्द्रादि देवताओंसे कहा— 'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ देवगण! मैंने मयको जो वर दिया था, उसका यह अन्त समय आ पहुँचा है, जिसे मैंने पहले ही उन लोगोंसे कह दिया था। श्रेष्ठ देवताओ! उनका निवासस्थान वह त्रिपुर तो एक ही बाणके प्रहारसे नष्ट हो जानेवाला है। उसपर बाण-वृष्टिकी आवश्यकता नहीं है, किंतु श्रेष्ठ देवगण! मैं यहाँ तुमलोगोंमेंसे किसीको भी ऐसा नहीं देख रहा हूँ, जो एक ही बाणके आघातसे दानवोंसहित त्रिपुरको नष्ट कर सके। देवाधिदेव प्रजापति शङ्करके अतिरिक्त अन्य कोई अल्प पराक्रमी वीर एक ही बाणसे त्रिपुरका विनाश नहीं कर सकता। इसलिये यदि तुमलोग तथा अन्यान्य देवगण भी एक साथ होकर दक्ष-यज्ञके विध्वंसक भगवान् शङ्करके पास चलकर उनसे याचना करें तो वे त्रिपुरका विनाश कर देंगे। इन पुरोंका विष्कम्भ सौ-सौ योजनाओंका बना हुआ है, अतः पुष्य नक्षत्रके योगमें जब ये तीनों एक साथ सम्मिलित होंगे, उसी क्षण भगवान् शङ्कर एक ही बाणके आघातसे इसका विध्वंस कर सकते हैं।' यह सुनकर दुःखित देवताओंने कहा कि 'हमलोग चलेंगे।' तब ब्रह्मा उन्हें साथ लेकर शङ्करजीकी सभामें आये। वहाँ उन्होंने देखा कि भूत एवं भविष्यके स्वामी तथा गिरिपर शयन करनेवाले त्रिशूलपाणि शङ्कर पार्वतीदेवी तथा महात्मा नन्दीके साथ विराजमान हैं। उन अजन्मा महादेवके शरीरका वर्ण अग्निके समान उद्दीप्त था। उनके नेत्र अग्निकुण्डके सदृश लाल थे। उनके शरीरसे सहस्रों अग्नियों और सूर्योंके समान प्रभा छिटक रही थी। वे अग्निके-से रंगवाली विभूतिसे विभूषित थे। उनके ललाटपर बालचन्द्र शोभा पा रहा था और मुख (पूर्णिमाके) चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर दीख रहा था। तब देवगण उन अजन्मा नीललोहित महादेवके निकट गये और पशुपति, पार्वती-प्राणवल्लभ, वरदायक शम्भुकी इस प्रकार स्तुति करने लगे— ॥१०—२१॥

देवा ऊचुः

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने॥ २२

महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये।
ईशानाय भयघाय नमस्त्वन्धकघातिने॥ २३

नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसा स्तुते।
कुमारशत्रुनिघाय कुमारजनकाय च॥ २४

विलोहिताय धूम्राय वराय क्रथनाय च।
नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने॥ २५

उरगाय त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे।
अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च॥ २६

वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च॥ २७

विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते।
नमोऽस्तु दिव्यरूपाय प्रभवे दिव्यशम्भवे॥ २८

अभिगम्याय काम्याय स्तुत्यायाच्चाय सर्वदा।
भक्तानुकम्पिने नित्यं दिशते यन्मनोगतम्॥ २९

देवताओंने कहा— भगवन्! आप भव—सृष्टि के उत्पादक और पालक, शर्व—प्रलयकालमें सबके संहारक, रुद्र—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, वरद—वरप्रदाता, पशुपति * —समस्त जीवोंके स्वामी, उग्र—बहुत ऊँचे, एकादश रुद्रोंमेंसे एक और कपर्दी—जटाजूटधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप महादेव—देवताओंके भी पूज्य, भीम—भयंकर, त्र्यम्बक—त्रिनेत्रधारी, एकादश रुद्रोंमें अन्यतम, शान्त—शान्तस्वरूप, ईशान—नियन्ता, भयघ—भयके विनाशक और अन्धकघाती—अन्धकासुरके वधकर्ताको प्रणाम है। नीलग्रीव—ग्रीवामें नील चिह्न धारण करनेवाले, भीम—भयदायक, वेधा:—ब्रह्मस्वरूप, वेधसा स्तुतः—ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत, कुमारशत्रुनिघ—कुमार कर्तिकेयके शत्रुओंको मारनेवाले, कुमारजनक—स्वामी कर्तिकके पिता, विलोहित—लाल रंगवाले, धूम्र—धूम्रवर्ण, वर—जगत्को ढकनेवाले, क्रथन—प्रलयकारी, नीलशिखण्ड—नीली जटावाले, शूली—त्रिशूलधारी, दिव्यशायी—दिव्य समाधिमें लीन रहनेवाले, उरग—सर्पधारी, त्रिनेत्र—तीन नेत्रोंवाले, हिरण्यवसुरेता—सुवर्ण आदि धनके उद्गम-स्थान, अचिन्त्य—अतर्क्य, अम्बिकाभर्ता—पार्वतीपति, सर्वदेवस्तुत—सम्पूर्ण देवोंद्वारा स्तुत, वृषध्वज—बैल-चिह्नसे युक्त ध्वजावाले, मुण्ड—मुण्डधारी, जटी—जटाधारी, ब्रह्मचारी—ब्रह्मचर्यसम्पत्र, सलिले तप्यमान—जलमें तपस्या करनेवाले, ब्रह्मण्य—ब्राह्मण-भक्त, अजित—अजेय, विश्वात्मा—विश्वके आत्मस्वरूप, विश्वसृक—विश्वके स्थान, विश्वमावृत्य तिष्ठते—संसारमें व्याप्त रहनेवाले, दिव्यरूप—दिव्यरूपवाले, प्रभु—सामर्थ्यशाली, दिव्यशम्भु—अत्यन्त मङ्गलमय, अभिगम्य—शरण लेने योग्य, काम्य—अत्यन्त सुन्दर, स्तुत्य—स्तवन करनेयोग्य, सर्वदा अर्च—सदा पूजनीय, भक्तानुकम्पी—भक्तोंपर दया करनेवाले और यन्मनोगतं नित्यं दिशते—मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालेको अभिवादन है॥ २२—२९॥

इति श्रीमात्म्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे ब्रह्मादिसर्वदेवकृतमहेश्वरस्तवो नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें ब्रह्मादि-सर्वदेवकृत महेश्वरस्तव नामक एक सौ वर्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३२ ॥



* पाशुपत—शैवागमानुसार जीवमात्र पाशबद्ध होनेसे पशु और पाशयुक्त शिव पशुपति कहे गये हैं।

एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय

त्रिपुर-विध्वंसार्थ शिवजीके विचित्र रथका निर्माण और
देवताओंके साथ उनका युद्धके लिये प्रस्थान

सूत उवाच

ब्रह्माद्यैः स्तूयमानस्तु देवैर्देवो महेश्वरः ।
 प्रजापतिमुवाचेदं देवानां क्व भयं महत् ॥ १
 भो देवाः स्वागतं वोऽस्तु ब्रूत यद् वो मनोगतम् ।
 तावदेव प्रयच्छामि नास्त्यदेयं मया हि वः ॥ २
 युष्माकं नितरां शं वै कर्ताहं विबुधर्षभाः ।
 चरामि महदत्युग्रं यच्चापि परमं तपः ॥ ३
 विद्विष्टा वो मम द्विष्टाः कष्टाः कष्टपराक्रमाः ।
 तेषामभावः सम्पाद्यो युष्माकं भव एव च ॥ ४
 एवमुक्तास्तु देवेन प्रेम्णा सब्रह्मकाः सुराः ।
 रुद्रमाहुर्महाभागं भागार्हाः सर्वं एव ते ॥ ५
 भगवंस्तैस्तपस्तसं रौद्रं रौद्रपराक्रमैः ।
 असुरैर्वध्यमानाः स्म वयं त्वां शरणं गताः ॥ ६
 मयो नाम दितेः पुत्रस्त्रिनेत्र कलहप्रियः ।
 त्रिपुरं येन तददुर्गं कृतं पाण्डुरगोपुरम् ॥ ७
 तदाश्रित्य पुरं दुर्गं दानवा वरनिर्भयाः ।
 बाधन्तेऽस्मान् महादेव प्रेष्यमस्वामिनं यथा ॥ ८
 उद्यानानि च भग्नानि नन्दनादीनि यानि च ।
 वराश्वाप्सरसः सर्वा रम्भाद्या दनुजैर्हताः ॥ ९
 इन्द्रस्य वाह्याश्च गजाः कुमुदाञ्जनवामनाः ।
 ऐरावताद्यापहृता देवतानां महेश्वर ॥ १०
 ये चेन्द्ररथमुख्याश्च हरयोऽपहृतासुरैः ।
 जाताश्च दानवानां ते रथयोग्यास्तुरङ्गमाः ॥ ११

सूतजी कहते हैं— ऋषियो ! ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर देवाधिदेव महेश्वरने प्रजापति ब्रह्मासे यह कहा—‘अरे ! आप देवताओंको यह महान् भय कहाँसे आया ? देवगण ! आपलोगोंका स्वागत है । आपलोगोंके मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहिये । मैं उसे अवश्य प्रदान करूँगा; क्योंकि आपलोगोंके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है । श्रेष्ठ देवगण ! मैं सदा आपलोगोंका कल्याण ही करता रहता हूँ । यहाँतक कि जो महान्, अत्यन्त उग्र एवं घोर तप करता हूँ, वह भी आपलोगोंके लिये ही करता हूँ । जो आपलोगोंसे विद्वेष करते हैं, वे मेरे भी घोर शत्रु हैं । इसलिये जो आपलोगोंको कष्ट देनेवाले हैं, वे कितने ही घोर पराक्रमी क्यों न हों, मुझे उनका अन्त और आपका श्रेयःसम्पादन करना है ।’ महादेवजीद्वारा प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहे जानेपर ब्रह्मासहित समस्त भाग्यशाली देवताओंने महाभाग शङ्करजीसे कहा—‘भगवन् ! भयंकर पराक्रमी उन असुरोंने अत्यन्त भीषण तप किया है, जिसके प्रभावसे वे हमें कष्ट दे रहे हैं । इसलिये हमलोग आपकी शरणमें आये हैं । त्रिलोचन ! (आप तो जानते ही हैं) दितिका पुत्र मय स्वभावतः कलहप्रिय है । उसने ही पीले रंगके फाटकवाले उस त्रिपुर नामक दुर्गका निर्माण किया है । उस त्रिपुरदुर्गका आश्रय लेकर दानव वरदानके प्रभावसे निर्भय हो गये हैं । महादेव ! वे हमलोगोंको इस प्रकार कष्ट दे रहे हैं, मानो अनाथ नौकर हों । उन दानवोंने नन्दन आदि जितने उद्यान थे, उन सबको विनष्ट कर दिया तथा रम्भा आदि सभी श्रेष्ठ अप्सराओंका अपहरण कर लिया । महेश्वर ! वे इन्द्रके वाहन तथा दिशागज कुमुद, अञ्जन, वामन और ऐरावत आदि गजेन्द्रोंको भी छीन ले गये । इन्द्रके रथमें जुतनेवाले जो मुख्य अश्व थे, उन्हें भी वे असुर हरण कर ले गये और अब वे घोड़े दानवोंके रथमें जोते जाते हैं ।

ये रथा ये गजाश्वैव याः स्त्रियो वसु यच्च नः ।
तन्नो व्यपहृतं दैत्यैः संशयो जीविते पुनः ॥ १२
त्रिनेत्र एवमुक्तस्तु देवैः शक्रपुरोगमैः ।
उवाच देवान् देवेशो वरदो वृषवाहनः ॥ १३
व्यपगच्छतु वो देवा महद् दानवजं भयम् ।
तदहं त्रिपुरं धक्ष्ये क्रियतां यद् ब्रवीमि तत् ॥ १४
यदीच्छथ मया दग्धुं तत्पुरं सहदानवम् ।
रथमौपयिकं महां सज्जयध्वं किमास्यते ॥ १५
दिग्वाससा तथोक्तास्ते सपितामहकाः सुराः ।
तथेत्युक्त्वा महादेवं चक्रुस्ते रथमुक्तमम् ॥ १६
धरां कूबरकौ द्वौ तु रुद्रपार्श्वचरावुभौ ।
अधिष्ठानं शिरो मेरोरक्षो मन्दर एव च ॥ १७
चक्रश्चन्द्रं च सूर्यं च चक्रं काञ्चनराजते ।
कृष्णपक्षं शुक्लपक्षं पक्षद्वयमपीश्वराः ॥ १८
रथनेमिद्वयं चकुर्देवा ब्रह्मपुरःसराः ।
आदिद्वयं पक्षयन्त्रं यन्त्रमेताश्च देवताः ॥ १९
कम्बलाश्वतराभ्यां च नागाभ्यां समवेष्टितम् ।
भार्गवश्चाङ्गिराश्वैव बुधोऽङ्गारक एव च ॥ २०
शैश्वरस्तथा चात्र सर्वे ते देवसत्तमाः ।
वस्थं गगनं चक्रश्चारुरूपं रथस्य ते ॥ २१
कृतं द्विजिह्ननयनं त्रिवेणुं शातकौभिकम् ।
मणिमुक्तेन्द्रनीलैश्च वृतं ह्यष्टमुखैः सुरैः ॥ २२
गङ्गा सिन्धुः शतद्रुश्च चन्द्रभागा इरावती ।
वितस्ता च विपाशा च यमुना गण्डकी तथा ॥ २३
सरस्वती देविका च तथा च सरयूरपि ।
एताः सरिद्विराः सर्वा वेणुसंज्ञा कृता रथे ॥ २४
धृतराष्ट्राश्च ये नागास्ते च रश्म्यात्मकाः कृताः ।
वासुकेः कुलजा ये च ये च रैवतवंशजाः ॥ २५
ते सर्पा दर्पसम्पूर्णश्चापतूणेष्वनूनगाः ।
अवतस्थुः शरा भूत्वा नानाजातिशुभाननाः ॥ २६

(कहाँतक कहें) हमलोगोंके पास जितने रथ, जितने हाथी, जितनी स्त्रियाँ और जो कुछ भी धन था, हमारा वह सब दैत्योंने अपहरण कर लिया है और अब हमलोगोंके जीवनमें भी सन्देह उत्पन्न हो गया हैं' ॥ १—१२ ॥

इन्द्र आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर त्रिनेत्रधारी, वरदायक, वृषवाहन, देवेश्वर शङ्करने देवताओंसे कहा—‘देवगण ! अब आपलोगोंका दानवोंसे उत्पन्न हुआ महान् भय दूर हो जाना चाहिये । मैं उस त्रिपुरको जला डालूँगा, किंतु मैं जो कह रहा हूँ, वैसा उपाय कीजिये । यदि आपलोग मेरे द्वारा दानवोंसहित उस त्रिपुरको जला देनेकी इच्छा रखते हैं तो मेरे लिये समस्त साधनोंसे सम्पन्न एक रथ सुसज्जित कीजिये । अब देर मत कीजिये ।’ दिग्वासा शङ्करजीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ब्रह्मासहित उन देवताओंने महादेवजीसे ‘बहुत अच्छा’ कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली । फिर तो वे एक उत्तम रथका निर्माण करनेमें लग गये । उन्होंने पृथ्वीको रथ, रुद्रके दो पार्श्वचरोंको, दोनों कूबर मेरुको रथका शिरः—स्थान और मन्दरको धुरा बनाया । सूर्य और चन्द्रमा रथके सोने-चाँदीके दोनों पहिये बनाये गये । ब्रह्मा आदि ऐश्वर्यशाली देवोंने शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष—दोनोंसे रथकी दोनों नेमियाँ बनायीं । देवताओंने कम्बल और अश्वतर नामक नागोंसे परिवेष्टित कर दोनों बगलके पक्ष-यन्त्र बनाये । शुक्र, बृहस्पति, बुध, मङ्गल तथा शैश्वर ये—सभी देवत्रेष्ठ उसपर विराजित हुए । उन देवताओंने गगन-मण्डलको रथका सौन्दर्यशाली वरूप बनाया । सर्पोंके नेत्रोंसे उसका त्रिवेणु बनाया गया, जो सुवर्ण-सा चमक रहा था । वह मणि, मुक्ता और इन्द्रनील मणिके समान आठ प्रधान देवताओंसे घिरा था ॥ १३—२२ ॥

गङ्गा, सिन्धु, शतद्रु, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, विपाशा, यमुना, गण्डकी, सरस्वती, देविका तथा सरयू—इन सभी श्रेष्ठ नदियोंको उस रथमें वेणुस्थानपर नियुक्त किया गया । धृतराष्ट्रके वंशमें उत्पन्न होनेवाले जो नाग थे, वे बाँधनेके लिये रस्सी बने हुए थे । जो वासुकि और रैवतके वंशमें उत्पन्न होनेवाले नाग थे, वे सभी दर्पसे पूर्ण और शीघ्रगामी होनेके कारण नाना प्रकारके सुन्दर मुखवाले बाण बनकर धनुषके तरकसोंमें अवस्थित हुए ।

सुरसा सरमा कद्रूर्विनता शुचिरेव च।
 तृष्णा बुभुक्षा सर्वोग्रा मृत्युः सर्वशमस्तथा ॥ २७
 ब्रह्मवध्या च गोवध्या बालवध्या प्रजाभयाः।
 गदा भूत्वा शक्तयश्च तदा देवरथेऽभ्ययुः ॥ २८
 युगं कृतयुगं चात्र चातुर्होत्रप्रयोजकाः।
 चतुर्वर्णाः सलीलाश्च बभूतुः स्वर्णकुण्डलाः ॥ २९
 तद्युगं युगसंकाशं रथशीर्षे प्रतिष्ठितम्।
 धृतराष्ट्रेण नागेन बद्धं बलवता महत् ॥ ३०
 ऋषवेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथापरः।
 वेदाश्वत्वार एवैते चत्वारस्तुरगाऽभवन् ॥ ३१
 अन्नदानपुरोगाणि यानि दानानि कानिचित्।
 तान्यासन् वाजिनां तेषां भूषणानि सहस्रशः ॥ ३२
 पद्मद्वयं तक्षकश्च कर्कोटककथनञ्जयौ।
 नागा बभूत्वेते हयानां वालबन्धनाः ॥ ३३
 ओङ्कारप्रभवास्ता वा मन्त्रयज्ञक्रतुक्रियाः।
 उपद्रवाः प्रतीकाराः पशुबन्धेष्ट्यस्तथा ॥ ३४
 यज्ञोपवाहान्येतानि तस्मिल्लोकरथे शुभे।
 मणिमुक्ताप्रवालैस्तु भूषितानि सहस्रशः ॥ ३५
 प्रतोदोङ्कार एवासीत्तदग्रं च वषट्कृतम्।
 सिनीवाली कुहू राका तथा चानुमतिः शुभा ॥ ३६
 योक्त्राण्यासंस्तुरङ्गाणामपसर्पणविग्रहाः ॥ ३७
 कृष्णान्यथ च पीतानि श्वेतमाङ्गिष्ठकानि च।
 अवदाताः पताकास्तु बभूतुः पवनेरिताः ॥ ३८
 ऋतुभिश्च कृतः षड्भिर्धनुः संवत्सरोऽभवत्।
 अजरा ज्याभवच्चापि साम्बिका धनुषो दृढा ॥ ३९
 कालो हि भगवान् रुद्रस्तं च संवत्सरं विदुः।
 तस्मादुमा कालरात्रिर्धनुषो ज्याजराभवत् ॥ ४०
 सगर्भं त्रिपुरं येन दग्धवान् स त्रिलोचनः।
 स इषुर्विष्णुसोमाग्नित्रिदैवतमयोऽभवत् ॥ ४१
 आननं ह्यग्निरभवच्छल्यं सोमस्तमोनुदः।
 तेजसः समवायोऽथ चेषोस्तेजो रथाङ्गधृक् ॥ ४२
 तस्मिंश्च वीर्यवृद्धर्थं वासुकिर्नांगपार्थिवः।
 तेजः संवसनार्थं वै मुमोचातिविषो विषम् ॥ ४३

सबसे उग्र स्वभाववाली सुरसा, देवशुनी, सरमा, कद्रू विनता, शुचि, तृष्णा, बुभुक्षा तथा सबका शमन करनेवाली मृत्यु, ब्रह्महत्या, गोहत्या, बालहत्या और प्रजाभय—ये सभी उस समय गदा और शक्तिका रूप धारण कर उस देवरथमें उपस्थित हुईं। कृतयुगका जूआ बनाया गया। चातुर्होत्र यज्ञके प्रयोजक लीलासहित चारों वर्ण स्वर्णमय कुण्डल हुए। उस युग-सदृश जूएको रथके शीर्षस्थानपर रखा गया और उसे बलवान् धृतराष्ट्र नागद्वारा कसकर बाँध दिया गया। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद—ये चारों वेद चार घोड़े हुए। अन्नदान आदि जितने प्रमुख दान हैं, वे सभी उन घोड़ोंके हजारों प्रकारके आभूषण बने। पद्मद्वय, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय—ये नाग उन घोड़ोंके बाल बाँधनेके लिये रससी हुए। औंकारसे उत्पन्न होनेवाली मन्त्र, यज्ञ और क्रतुरूप क्रियाएँ, उपद्रव, उनकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त, पशुबन्ध आदि इष्टियाँ, यज्ञोपवीत आदि संस्कार—ये सभी उस सुन्दर लोकरथमें शोभा-वृद्धिके लिये मणि, मुक्ता और मूँगोंके रूपमें उपस्थित हुए। औंकारका चाबुक बना और वषट्कार उसका अग्रभाग हुआ। सिनीवाली (चतुर्दशीय अमा), कुहू (अमावास्याकी अधिष्ठात्री देवी), राका (शुद्ध पूर्णिमा तिथि) तथा शुभदायिनी अनुमति (प्रतिपदयुक्ता पूर्णिमा)—ये सभी घोड़ोंको रथमें जोतनेके लिये रस्सियाँ और बागडोर बनीं। उसमें काले, पीले, श्वेत और लाल रंगकी निर्मल पताकाएँ लगी थीं, जो वायुके वेगसे फहरा रही थीं। छहों ऋतुओंसहित संवत्सरका धनुष बनाया गया। अम्बिकादेवी उस धनुषकी कभी जीर्ण न होनेवाली सुदृढ़ प्रत्यञ्चा हुई। भगवान् रुद्र कालस्वरूप हैं। उन्होंको संवत्सर कहा जाता है, इसी कारण अम्बिकादेवी कालरात्रिरूपसे उस धनुषकी कभी न कटनेवाली प्रत्यञ्चा बनीं। त्रिलोचन भगवान् शङ्कर जिस बाणसे अन्तर्भागसहित त्रिपुरको जलानेवाले थे, वह श्रेष्ठ बाण विष्णु सोम, अग्नि—इन तीनों देवताओंके संयुक्त तेजसे निर्मित हुआ था। उस बाणका मुख अग्नि और फाल अन्धकारविनाशक चन्द्रमा थे। चक्रधारी विष्णुका तेज समूचे बाणमें व्यास था। इस प्रकार वह बाण तेजका समन्वित रूप था। उस बाणपर नागराज वासुकिने उसके पराक्रमकी वृद्धि एवं तेजकी स्थिरताके लिये अत्यन्त उग्र विष उगल दिया था ॥ २३—४३ ॥

कृत्वा देवा रथं चापि दिव्यं दिव्यप्रभावतः ।
 लोकाधिपतिमभ्येत्य इदं वचनमब्रुवन् ॥ ४४
 संस्कृतोऽयं रथोऽस्माभिस्तव दानवशत्रुजित् ।
 इदमापत्यरित्राणं देवान् सेन्द्रपुरोगमान् ॥ ४५
 तं मेरुशिखराकारं त्रैलोक्यरथमुत्तमम् ।
 प्रशस्य देवान् साधिति रथं पश्यति शङ्करः ॥ ४६
 मुहुर्द्विष्टा रथं साधु साधित्युक्त्वा मुहुर्मुहुः ।
 उवाच सेन्द्रानमरानमराधिपतिः स्वयम् ॥ ४७
 यादृशोऽयं रथः क्लृप्तो युष्माभिर्मम सत्तमाः ।
 ईदृशो रथसम्पत्या यन्ता शीघ्रं विधीयताम् ॥ ४८
 इत्युक्ता देवदेवेन देवा विद्वा इवेषुभिः ।
 अवापुर्महतीं चिन्तां कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥ ४९
 महादेवस्य देवोऽन्यः को नाम सदृशो भवेत् ।
 मुक्त्वा चक्रायुधं देवं सोऽप्यस्येषु समाप्तिः ॥ ५०
 धुरि युक्ता इवोक्षाणो घटन्त इव पर्वतैः ।
 निःश्वसन्तः सुराः सर्वे कथमेतदिति ब्रुवन् ॥ ५१
 देवेष्वाह देवदेवो लोकनाथस्य धूर्गतान् ।
 अहं सारथिरित्युक्त्वा जग्राहाश्वास्तोऽग्रजः ॥ ५२
 ततो देवैः सगन्ध्वैः सिंहनादो महान् कृतः ।
 प्रतोदहस्तं सम्प्रेक्ष्य ब्रह्माणं सूततां गतम् ॥ ५३
 भगवानपि विश्वेशो रथस्थे वै पितामहे ।
 सदृशः सूत इत्युक्त्वा चारुरोह रथं हरः ॥ ५४
 आरोहति रथं देवे ह्यश्चा हरभरातुराः ।
 जानुभिः पतिता भूमौ रजोग्रासश्च ग्रासितः ॥ ५५
 देवो दृष्ट्वा वेदांस्तानभीरुग्रहयान् भयात् ।
 उज्जहार पितृनार्तान् सुपुत्र इव दुःखितान् ॥ ५६
 ततः सिंहरवो भूयो बभूव रथभैरवः ।
 जयशब्दश्च देवानां सम्भूवार्णवोपमः ॥ ५७

इस प्रकार देवगण दिव्य प्रभावसे उस दिव्य रथका निर्माण कर लोकाधिपति शङ्करके निकट जाकर इस प्रकार बोले—‘दानवरूप शत्रुओंके विजेता भगवन्! हमलोगोंने आपके लिये इस रथकी रचना की है। यह इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंकी आपत्तिसे रक्षा करेगा। सुमेरुगिरिके शिखरके समान उस उत्तम त्रैलोक्यरथको देखकर भगवान् शङ्करने उसकी प्रशंसा करके देवताओंकी प्रशंसा की और पुनः उस रथका निरीक्षण करने लगे। वे बार-बार रथके प्रत्येक भागको देखते और बार-बार उसकी प्रशंसा करते थे। तत्पश्चात् देवताओंके अधीश्वर स्वयं भगवान् शङ्करने इन्द्रसहित देवताओंसे कहा—‘देवगण! आपलोगोंने जिस प्रकार मेरे लिये रथकी सारी सामग्रियोंसे युक्त इस रथका निर्माण किया है, इसीकी मर्यादाके अनुकूल शोध्र ही किसी सारथिका भी विधान कीजिये।’ देवाधिदेव शङ्करके ऐसा कहनेपर देवगण ऐसे व्याकुल हो गये, मानो वे बाणोंसे बींध दिये गये हों। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे कहने लगे कि अब क्या किया जाय। भला, चक्रधारी भगवान् विष्णुके अतिरिक्त दूसरा कौन देवता महादेवजीके सदृश हो सकता है, किंतु वे तो उनके बाणपर स्थित हो चुके हैं। यह सोचकर जैसे गाढ़ीमें जुते हुए बैल पर्वतोंसे टकरा जानेपर हाँफने लगते हैं, वैसे ही सभी देवता लम्बी साँस लेने लगे और कहने लगे कि यह कार्य कैसे सिद्ध होगा? इन्हें ही उन देवताओंके बीच देवदेव अग्रज ब्रह्मा बोल उठे—‘सारथि मैं होऊँगा’ ऐसा कहकर उन्होंने लोकनाथ शङ्करके रथमें जुते हुए घोड़ोंकी बागड़ोर पकड़ ली। उस समय ब्रह्माको हाथमें चाबुक लिये हुए सारथिके स्थानपर स्थित देखकर गन्धवौंसहित देवताओंने महान् सिंहनाद किया। तदनन्तर पितामह ब्रह्माको रथपर स्थित देखकर विश्वेश्वर भगवान् शङ्कर ‘उपयुक्त सारथि मिला’ ऐसा कहकर रथपर आरूढ़ हुए। भगवान् शंकरके रथपर चढ़ते ही घोड़े उनके भारसे व्याकुल हो गये। वे घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े और उनके मुखमें धूल भर गयी। इस प्रकार जब शङ्करजीने देखा कि अश्वरूपधारी वेद भयवश भूमिपर गिर पड़े हैं, तब उन्होंने उन्हें उसी प्रकार उठाया, जैसे सुपुत्र आर्त एवं दुःखी पितरोंका उद्धार करता है। तत्पश्चात् रथकी भयंकर घरघराहटके साथ सिंहनाद होने लगा। देवगण समुद्रकी गर्जनाके समान जय-जयकार करने लगे ॥ ४८—५७ ॥

तदोङ्कारमयं गृह्य प्रतोदं वरदः प्रभुः।
 स्वयम्भूः प्रययौ वाहाननुमन्त्र्य यथाजवम्॥५८
 ग्रसमाना इवाकाशं मुष्णन्त इव मेदिनीम्
 मुखेभ्यः ससृजुः श्वासानुच्छ्वसन्त इवोरगाः॥५९
 स्वयम्भुवा चोद्यमानाश्वोदितेन कपर्दिना।
 व्रजन्ति तेऽश्वा जवनाः क्षयकाल इवानिलाः॥६०
 ध्वजोच्छ्रयविनिर्माणे ध्वजयष्टिमनुत्तमाम्।
 आक्रम्य नन्दीवृषभस्तस्थौ तस्मिञ्छिवेच्छया॥६१
 भार्गवाङ्गिरसौ देवौ दण्डहस्तौ रविप्रभौ।
 रथचक्रे तु रक्षेते रुद्रस्य प्रियकाङ्क्षिणौ॥६२
 शेषश्व भगवान् नागोऽनन्तोऽनन्तकरोऽरिणाम्।
 शरहस्तो रथं पाति शयनं ब्रह्मणस्तदा॥६३
 यमस्तूर्णं समास्थाय महिषं चातिदारुणम्।
 द्रविणाधिपतिव्यालं सुराणामधिपो द्विपम्॥६४
 मयूरं शतचन्द्रं च कूजन्तं किन्नरं यथा।
 गुह आस्थाय वरदो जुगोप तं रथं पितुः॥६५
 नन्दीश्वरश्व भगवाञ्शूलमादाय दीसिमान्।
 पृष्ठतश्वापि पार्श्वाभ्यां लोकस्य क्षयकृद् यथा॥६६
 प्रमथाश्वाग्निवर्णाभाः साग्निज्वाला इवाचलाः।
 अनुजग्मू रथं शार्वं नक्रा इव महार्णवम्॥६७
 भृगुर्भरद्वाजवसिष्ठगौतमाः

क्रतुः पुलस्त्यः पुलहस्तपोथनाः।

मरीचिरत्रिर्भगवानथाङ्गिराः

पराशरागस्त्यमुखा महर्षयः॥६८

हरमजितमजं प्रतुष्टवुर्वचन-

विशेषैर्विचित्रभूषणैः।

रथस्त्रिपुरे

सकाञ्चनाचलो

व्रजति सपक्ष इवाद्रिष्ट्वे॥६९

करिगिरिरविमेघसंनिभाः

सजलपयोदनिनादनादिनः।

प्रमथगणाः परिवार्य देवगुमं

रथमधितः प्रययुः स्वदर्पयुक्ताः॥७०

तदनन्तर सामर्थ्यशाली वरदायक ब्रह्मा ओंकारमय चाबुकको हाथमें लेकर घोड़ोंको पुचकारते हुए पूर्ण वेगसे आगे बढ़े। फिर तो वे घोड़े पृथ्वीको अपने साथ समेटते तथा आकाशको ग्रसते हुएकी तरह बढ़े वेगसे दौड़ने लगे। उनके मुखोंसे ऐसे दीर्घ निःश्वास निकल रहे थे, मानो फुफकारते हुए सर्प हों। शङ्करजीकी प्रेरणासे ब्रह्माद्वारा हाँके जाते हुए वे घोड़े प्रलयकालिक वायुकी तरह अत्यन्त वेगसे दौड़ रहे थे। शिवजीकी इच्छासे उस रथमें ध्वजको ऊँचा उठानेमें निपुण नन्दी वृषभ उस अनुपम ध्वजयष्टिके ऊपर स्थित हुए। सूर्यके समान प्रभावशाली शुक्र और बृहस्पति—ये दोनों देवता हाथमें दण्ड धारण करके रुद्रका प्रिय करनेकी इच्छासे रथके पहियोंकी रक्षा कर रहे थे। उस समय शत्रुओंका समूल विनाश करनेवाले अनन्त भगवान् शेषनाग हाथमें बाण धारण कर रथकी तथा ब्रह्माके आसनकी रक्षामें जुटे हुए थे। यमराज तुरंत अपने अत्यन्त भयंकर भैंसेपर, कुबेर साँपपर और देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़कर आगे बढ़े। वरदायक गुह कार्तिकेय सैकड़ों चन्द्रवाले तथा किंनरकी भाँति कूजते हुए अपने मयूरपर सवार होकर पिताके उस रथकी रक्षा कर रहे थे। तेजस्वी भगवान् नन्दीश्वर शूल लेकर रथके पीछेसे दोनों पार्श्वभागोंकी रक्षा करते थे। उस समय वे ऐसा प्रतीत होते थे, मानो लोकका विनाश कर देना चाहते हों। अग्निके समान कान्तिमान् प्रमथगण, जो अग्निके लपटोंसे युक्त पर्वत-सदृश दीख रहे थे, शङ्करजीके रथके पीछे चलते हुए ऐसे लगते थे जैसे महासागरमें नाकगण तैर रहे हों। भृगु, भरद्वाज, वसिष्ठ, गौतम, क्रतु, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पराशर, अगस्त्य—ये सभी तपस्वी एवं ऐश्वर्यशाली महर्षि विचित्र छन्दालंकारोंसे विभूषित उत्कृष्ट वचनोंद्वारा अजन्मा एवं अजेय शङ्करकी स्तुति कर रहे थे। सुमेरुगिरिके सहयोगसे सम्पन्न हुआ वह रथ आकाशमें विचरनेवाले पंखधारी पर्वतकी तरह त्रिपुरकी ओर बढ़ रहा था। हाथी, पर्वत, सूर्य और मेघके समान कान्तिवाले प्रमथगण जलधर बादलकी भाँति गर्जना करते हुए बढ़े गर्वके साथ देवताओंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित उस रथके पीछे-पीछे चल रहे थे।

मकरतिमितिर्मिंगिलावृतः

प्रलय इवातिसमुद्धतोऽर्णवः ।

व्रजति

रथवरोऽतिभास्वरो

ह्यशनिनिपातपयोदनिःस्वनः ॥ ७१

वह अत्यन्त उद्दीप श्रेष्ठ रथ प्रलयकालमें मकर, तिमि (एक प्रकारके महामत्स्य) और तिमिंगिलों (उसे निगलनेवाले महामत्स्य)-से व्यास भयंकर रूपसे उमड़े हुए समुद्रकी तरह आगे बढ़ रहा था। उससे वज्रपातकी तरह गड़गड़ाहट और बादलकी गर्जनाके सदृश शब्द हो रहा था ॥ ५८—७१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे रथप्रयाणं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें रथप्रयाण नामक एक सौ तीनीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३३ ॥

एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय

देवताओंसहित शङ्करजीका त्रिपुरपर आक्रमण, त्रिपुरमें देवर्षि नारदका आगमन तथा युद्धार्थ असुरोंकी तैयारी

सूत उवाच

पूज्यमाने रथे तस्मैल्लोकैर्देवे रथे स्थिते ।
प्रमथेषु नदत्सूयं प्रवदत्सु च साध्विति ॥ १ ॥
ईश्वरस्वरघोषेण नर्दमाने महावृषे ।
जयत्सु विप्रेषु तथा गर्जत्सु तुरगेषु च ॥ २ ॥
रणाङ्गणात् समुत्पत्य देवर्षिनारदः प्रभुः ।
कान्त्या चन्द्रोपमस्तूर्णं त्रिपुरं पुरमागतः ॥ ३ ॥
औत्पातिकं तु दैत्यानां त्रिपुरे वर्तते ध्रुवम् ।
नारदश्शात्र भगवान् प्रादुर्भूतस्तपोधनः ॥ ४ ॥
आगतं जलदाभासं समेताः सर्वदानवाः ।
उत्तस्थुर्नारदं दृष्ट्वा अभिवादनवादिनः ॥ ५ ॥
तमध्येण च पाद्येन मधुपक्षेण चेश्वराः ।
नारदं पूजयामासुर्ब्रह्माणमिव वासवः ॥ ६ ॥
तेषां स पूजां पूजार्हः प्रतिगृह्य तपोधनः ।
नारदः सुखमासीनः काञ्छने परमासने ॥ ७ ॥
मयस्तु सुखमासीने नारदे नारदोद्भवे ।
यथार्ह दानवैः सार्थमासीनो दानवाधिपः ॥ ८ ॥
आसीनं नारदं प्रेक्ष्य मयस्त्वथ महासुरः ।
अब्रवीद् वचनं तुष्टो हृष्टरोमाननेक्षणः ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार उस लोकपूजित रथपर आरूढ़ होकर जब महादेवजी त्रिपुरपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थित हुए, उस समय प्रमथगण 'ठीक है, ठीक है' ऐसा कहते हुए उच्च स्वरसे सिंहनाद करने लगे। महान् वृषभ नन्दी भी शङ्करजीके सदृश स्वरमें गर्जना करने लगा। यूथ-के-यूथ विप्र जय-जयकार बोलने लगे तथा घोड़े हींसने लगे। इसी समय चन्द्रतुल्य कान्तिवाले सामर्थ्यशाली देवर्षि नारद युद्धस्थलसे उछलकर तुरंत त्रिपुर नामक नगरमें जा पहुँचे। दैत्योंके उस त्रिपुरमें निश्चितरूपसे उत्पात हो रहे थे। वहाँ तपस्वी भगवान् नारद सहसा प्रकट हो गये। श्वेत मेघकी-सी प्रभावाले नारदजीको आया हुआ देखकर सभी दानव एक साथ अभिवादन करते हुए उठ खड़े हुए। तत्पश्चात् उन ऐश्वर्यशाली दानवोंने पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्कद्वारा नारदजीकी उसी प्रकार पूजा की, जैसे इन्द्र ब्रह्माकी अर्चना करते हैं। तब पूजनीय तपस्वी नारदजी उनकी पूजा स्वीकार कर स्वर्णनिर्मित श्रेष्ठ आसनपर सुखपूर्वक विराजमान हुए। इस प्रकार ब्रह्मपुत्र नारदके सुखपूर्वक बैठ जानेपर दानवराज मय भी सभी दानवोंके साथ यथायोग्य आसनपर बैठ गया। इस तरह नारदजीको वहाँ सुखपूर्वक बैठे देखकर महासुर मयको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह हर्षसे रोमाञ्चित हो उठा, उसके मुख एवं नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे, उसने नारदजीसे ये बातें कहीं ॥ १—९ ॥

औत्पातिकं पुरेऽस्माकं यथा नान्यत्र कुत्रचित्।
वर्तते वर्तमानज्ञ वद त्वं हि च नारद ॥ १०
दृश्यन्ते भयदाः स्वजा भन्यन्ते च ध्वजाः परम्।
विना च वायुना केतुः पतते च तथा भुवि ॥ ११
अद्वालकाश्च नृत्यन्ते सप्ताकाः सगोपुराः।
हिंस हिंसेति श्रूयन्ते गिरश्च भयदाः पुरे ॥ १२
नाहं बिभेमि देवानां सेन्द्राणामपि नारद ।
मुक्त्वैकं वरदं स्थाणुं भक्ताभयकरं हरम् ॥ १३
भगवन् नास्त्यविदितमुत्पातेषु तवानघ ।
अनागतमतीतं च भवाञ्चानाति तत्त्वतः ॥ १४
तदेतत्रो भयस्थानमुत्पाताभिनिवेदितम्।
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ प्रपन्नस्य तु नारद ॥ १५
इत्युक्तो नारदस्तेन मयेनामयवर्जितः ॥ १६

नारद उवाच

शृणु दानव तत्त्वेन भवन्त्यौत्पातिका यथा ।
धर्मेति धारणे धातुर्माहात्म्ये चैव पञ्चते ।
धारणाच्च महत्त्वेन धर्म एष निरुच्यते ॥ १७
स इष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते ।
इतरश्चानिष्टफलं आचार्यैर्नोपदिश्यते ॥ १८
उत्पथान्मार्गमागच्छेन्मार्गच्चैव विमार्गताम्।
विनाशस्तस्य निर्देश्य इति वेदविदो विदुः ॥ १९
स स्वधर्म रथारूढः सहैभिर्मत्तदानवैः।
अपकारिषु देवानां कुरुषे त्वं सहायताम् ॥ २०
तदेतान्येवमादीनि उत्पातावेदितानि च ।
वैनाशिकानि दृश्यन्ते दानवानां तथैव च ॥ २१
एष रुद्रः समास्थाय महालोकमयं रथम्।
आयाति त्रिपुरं हन्तुं मय त्वामसुरानपि ॥ २२

मयने नारदजीसे कहा—‘नारदजी ! आप तो (भूत-भव्य और) वर्तमानकी सारी बातोंके ज्ञाता हैं, अतः आप यह बतलाइये कि हमारे पुरमें जैसा उत्पात हो रहा है, वैसा सम्भवतः अन्यत्र कहीं भी नहीं होता होगा । (ऐसा क्यों हो रहा है ?) यहाँ भयदायक स्वप्न दीख पड़ते हैं । ध्वजाएँ अकस्मात् टूटकर गिर रही हैं । वायुका स्पर्श न होनेपर भी पताकाएँ पृथ्वीपर गिर रही हैं । पताकाओं और फाटकोंसहित अद्वालिकाएँ नाचती-सी (काँपती-सी) दीखती हैं । नगरमें ‘मार डालो, मार डालो’ ऐसे भयावने शब्द सुननेमें आ रहे हैं । (इतना होनेपर भी) नारदजी ! भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले स्थाणुस्वरूप वरदायक एकमात्र शङ्खरजीको छोड़कर मुझे इन्द्रसहित समस्त देवताओंसे भी कुछ भय नहीं है । निष्पाप भगवन् ! इन उपद्रवोंके विषयमें आपसे कुछ छिपा तो है नहीं; क्योंकि आप तो (पूर्वोक्त वर्तमानके अतिरिक्त) भूत और भविष्यके भी यथार्थ ज्ञाता हैं । मुनिश्रेष्ठ ! ये उत्पात हमलोगोंके लिये भयके स्थान बन गये हैं, जिन्हें मैंने आपसे निवेदित कर दिया है । नारदजी ! मैं आपके शरणागत हूँ, कृपया इसका कारण बतलाइये ।’ इस प्रकार मयदानवने अविनाशी नारदजीसे प्रार्थना की ॥ १०—१६ ॥

(तब) नारदजी बोले—दानवराज ! जिस कारण ये उत्पात हो रहे हैं, उन्हें यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ सुनो ! ‘धृ’ धातु धारण-पोषण और महत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त होती है । इसी धातुसे धर्म शब्द निष्पत्र हुआ है, अतः महत्त्वपूर्वक धारण करनेसे यह शब्द धर्म कहलाता है । आचार्याण इष्टकी प्राप्ति करनेवाले इसी धर्मका उपदेश करते हैं । इसके विपरीत अर्धम अनिष्ट फल देनेवाला है, अतः आचार्याण उसे ग्रहण करनेका आदेश नहीं देते । वेदज्ञोंका कथन है कि मनुष्यको उन्मार्गसे सुमार्गपर आना चाहिये; क्योंकि जो सुमार्गसे उन्मार्गपर चलते हैं, उनका विनाश तो निश्चित ही है । तुम इन उन्मत्त दानवोंके साथ महान् अधमकि रथपर आरूढ़ होकर देवताओंका अपकार करनेवालोंकी सहायता करते हो । इसलिये इन सभी उत्पातोंद्वारा सूचित अपशकुन दानवोंके विनाशके सूचक हैं । मय ! भगवान् रुद्र महालोकमय रथपर सवार होकर त्रिपुरका, तुम्हारा और समस्त असुरोंका भी विनाश करनेके लिये आ रहे हैं ।

स त्वं महौजसं नित्यं प्रपद्यस्व महेश्वरम्।
यास्यसे सह पुत्रेण दानवैः सह मानद ॥ २३
इत्येवमावेद्य भयं दानवोपस्थितं महत्।
दानवानां पुनर्देवो देवेशपदमागतः ॥ २४
नारदे तु मुनौ याते मयो दानवनायकः।
शूरसम्पत्मित्येवं दानवानाह दानवः ॥ २५
शूराः स्थ जातपुत्राः स्थ कृतकृत्याः स्थ दानवाः।
युध्यध्वं दैवतैः सार्थं कर्तव्यं चापि नो भयम् ॥ २६
जित्वा वयं भविष्यामः सर्वेऽमरसभासदः।
देवांश्च सेन्द्रकान् हत्वा लोकान् भोक्ष्यामहेऽसुराः ॥ २७
अद्वालकेषु च तथा तिष्ठध्वं शस्त्रपाणायः।
दंशिता युद्धसज्जाश्च तिष्ठध्वं प्रोद्यतायुधाः ॥ २८
पुराणि त्रीणि चैतानि यथास्थानेषु दानवाः।
तिष्ठध्वं लङ्घनीयानि भविष्यन्ति पुराणि च ॥ २९
नभोगतास्तथा शूरा देवता विदिता हि वः।
ताः प्रयत्नेन वार्याश्च विदार्याश्चैव सायकैः ॥ ३०
इति दनुतनयान्मयस्तथोक्त्वा
सुरगणवारणवारणे वचांसि।
युवतिजनविष्णुमानसं तत्-
त्रिपुरपुरं सहसा विवेश राजा ॥ ३१
अथ रजतविशुद्धभावभावो
भवमभिपूज्य दिगम्बरं सुगीर्भिः।
शरणमुपजगाम देवदेवं
मदनार्यन्धकयज्ञदेहधातम् ॥ ३२
मयमभयपदैषिणं प्रपन्नं
न किल बुबोध तृतीयदीप्तेनेत्रः।
तदभिमतमदात् ततः शशाङ्की
स च किल निर्भय एव दानवोऽभूत् ॥ ३३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे नारदागमनं नाम चतुर्स्त्रिंशतदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें नारदागमन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३४ ॥

इसलिये मानद! (तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि) तुम महान् ओजस्वी एवं अविनाशी महेश्वरकी शरण ग्रहण कर लो, अन्यथा तुम पुत्रों और दानवोंके साथ यमलोकके पथिक बन जाओगे। इस प्रकार देवर्षि नारद दानवोंको उनके ऊपर आये हुए महान् भयकी सूचना देकर पुनः देवेश्वर शङ्करजीके पास लौट आये ॥ १७—२४ ॥

इधर नारद मुनिके चले जानेपर दानवराज मयदानवने (वहाँ उपस्थित) सभी दानवोंसे इस प्रकार शूरसम्मत वचन कहना आरम्भ किया—‘दानवो! तुमलोग शूर-वीर हो, पुत्रवान् हो और (जीवनमें सुखका उपभोग करके) कृतकृत्य हो चुके हो, अतः देवताओंके साथ डटकर युद्ध करो। इसमें तुमलोगोंको किसी प्रकारका भय नहीं मानना चाहिये। असुरो! देवताओंको जीतकर हमलोग देवसभाके सभासद हो जायेंगे, अर्थात् देवसभा अपने अधिकारमें आ जायगी। तब इन्द्रसहित देवताओंका वध करके हमलोग लोकोंका उपभोग करेंगे। तुमलोग युद्धकी साज-सज्जासे विभूषित हो कवच धारण कर लो और हथियार लेकर तैयार हो जाओ तथा हाथमें शस्त्र धारण कर अद्वालिकाओंपर चढ़ जाओ। दानवो! तुमलोग इन तीनों पुरोंपर यथास्थान (सज्ज छोकर) बैठ जाओ; क्योंकि देवगण इन तीनों पुरोंपर आक्रमण करेंगे। शूरवीरो! यदि देवता आकाशमार्गसे धावा करें तो तुमलोग तो उन्हें पहचानते ही हो, तुरंत उन्हें प्रयत्नपूर्वक रोक दो और बाणोंके प्रहारसे विदीर्ण कर दो।’ इस प्रकार दानवराज मय दनु-पुत्रोंसे सुरगणरूपी हाथियोंको रोकनेके लिये बातें बताकर सहसा उस त्रिपुर-पुरमें प्रविष्ट हुआ, जहाँकी स्त्रियोंका मन भयके कारण उद्विग्न हो उठा था। तदनन्तर वह चाँदीके समान निर्मल भावसे भावित होकर सुन्दर वाणीद्वारा दिगम्बर भगवान् शङ्करकी पूजा कर उन कामदेवके शत्रु तथा अन्धक और दक्ष-यज्ञके विनाशक देवदेवेशवरकी शरणमें गया। यद्यपि शङ्करजीके तृतीय नेत्रमें उद्वीप अग्निका वास है, तथापि उन चन्द्रशेखरके ध्यानमें यह बात न आयी कि यह मयदानव शरणागत होकर अभयपद प्राप्त करना चाहता है, अतः उन्होंने उसे अभीष्ट वरदान दे दिया, जिससे वह दानव निर्भय हो गया और आगसे भी सुरक्षित रहकर जीवित बच गया ॥ २५—३३ ॥

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय

शङ्करजीकी आज्ञासे इन्द्रका त्रिपुरपर आक्रमण, दोनों सेनाओंमें भीषण संग्राम, विद्युन्मालीका वध, देवताओंकी विजय और दानवोंका युद्ध-विमुख होकर त्रिपुरमें प्रवेश

सूत उवाच

ततो रणे देवबलं नारदोऽभ्यगमत् पुनः।	१
आगत्य चैव त्रिपुरात् सभायामास्थितः स्वयम्॥	
इलावृतमिति ख्यातं तद्वर्षं विस्तृतायतम्।	
यत्र यज्ञो बलेर्वृत्तो बलिर्यत्र च संयतः॥	२
देवानां जन्मभूमिर्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता।	
विवाहाः क्रतवश्वैव जातकर्मादिकाः क्रियाः॥	३
देवानां यत्र वृत्तानि कन्यादानानि यानि च।	
रेमे नित्यं भवो यत्र सहायैः पार्षदैर्गणैः॥	४
लोकपालाः सदा यत्र तस्थुर्मेरुगिरौ यथा।	
मधुपिङ्गलनेत्रस्तु चन्द्रावयवभूषणः।	
देवानामधिपं प्राह गणपांशु महेश्वरः॥	५
वासवैतदरीणां ते त्रिपुरं परिदृश्यते।	
विमानैश्च पताकाभिर्धर्जैश्च समलङ्घतम्॥	६
इदं वृत्तमिदं ख्यातं वह्निवद् भृशतापनम्।	
एते जना गिरिप्रिख्याः सकुण्डलकिरीटिनः॥	७
प्राकारगोपुराद्वेषु कक्षान्ते दानवाः स्थिताः।	
इमे च तोयदाभासा दनुजा विकृताननाः॥	८
निर्गच्छन्ति पुरो दैत्याः सायुधा विजयैषिणः॥	९
स त्वं सुरशतैः सार्धं ससहायो वरायुधः।	
सुहृद्दिर्मामकैर्भृत्यैर्व्यापादय महासुरान्॥	१०
अहं च रथवर्येण निश्चलाचलवत्स्थितः।	
पुरः पुरस्य रन्धार्थी स्थास्यामि विजयाय वः॥	११
यदा तु पुष्ययोगेने एकत्वं स्थास्यते परम्।	
तदेतन्निर्दहिष्यामि शरेणकेन वासव॥	१२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर नारदजी त्रिपुरसे लौटकर पुनः युद्धस्थलमें देवताओंकी सेनामें सम्मिलित हो गये। वे स्वयं देव-सभामें उपस्थित हुए। इलावृत नामसे विख्यात विस्तृत वर्ष, जहाँ बलिका यज्ञ सम्पन्न हुआ था तथा जहाँ बलि बाँधे गये थे, तीनों लोकोंमें देवताओंकी जन्मभूमिके रूपमें प्रसिद्ध है। उसी इलावृतमें देवताओंके जातकर्म आदि संस्कार तथा यज्ञ और कन्यादान आदि कर्म सम्पन्न हुए हैं। यहाँ भगवान् शङ्कर अपने पार्षदगणोंको साथ लेकर नित्य विहार करते हैं। यहाँ लोकपालगण मेरुगिरिकी तरह सदा निवास करते हैं। इसी स्थानपर जिनके नेत्र मधुके समान पीले रंगके हैं तथा जो द्वितीयाके चन्द्रमाको भूषणरूपमें धारण करते हैं, उन्हीं भगवान् महेश्वरने देवराज इन्द्र और अपने गणेश्वरोंसे इस प्रकार कहा—‘इन्द्र! तुम्हारे शत्रुओंका यह त्रिपुर दिखायी पड़ रहा है। यह विमानों, पताकाओं और ध्वजोंसे सुशोभित है। यह सुदृढ़ है तथा इसके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि यह अग्निकी तरह अत्यन्त तापदायक है। इसके निवासी दानव किरीट-कुण्डल धारण किये उन्हीं पर्वतके समान दीख रहे हैं। इन दानवोंकी अङ्ग-कान्ति बादलकी-सी है और इनके मुख टेढ़े-मेढ़े हैं। ये सभी परकोटों, फाटकों और अद्वालिकाओंपर तथा कक्षान्तमें स्थित हैं। (वह देखो) वे सभी दैत्य विजयकी अभिलाषासे हथियारोंसे सुसज्जित हो नगरसे बाहर निकल रहे हैं। इसलिये तुम सहायकोंसहित अपना श्रेष्ठ अस्त्र वज्र लेकर सैकड़ों देवताओं तथा मेरे भृत्योंके साथ आगे बढ़कर इन महासुरोंका संहार करो। मैं इस श्रेष्ठ रथपर निश्चल पर्वतकी तरह स्थित रहकर तुमलोगोंकी विजयके लिये त्रिपुरके सम्मुख उसके छिद्रकी खोजमें खड़ा रहूँगा। वासव! जब पुष्य-नक्षत्रके योगके साथ ये तीनों पुर एक स्थानपर स्थित होंगे, तब मैं एक ही बाणसे इन्हें दग्ध कर डालूँगा’॥१—१२॥

इत्युक्तो वै भगवता रुद्रेणोह सुरेश्वरः ।
 ययौ तत्त्विपुं जेतुं तेन सैन्येन संवृतः ॥ १३
 प्रक्रान्तरथभीमैस्तैः सदेवैः पार्षदां गणैः ।
 कृतसिंहरवोपेतैरुद्गच्छद्विरिवाम्बुदैः ॥ १४
 तेन नादेन त्रिपुराद् दानवा युद्धलालसाः ।
 उत्पत्य दुद्वुश्चेलुः सायुधाः खे गणेश्वरान् ॥ १५
 अन्ये पयोधरारावाः पयोधरसमा बभुः ।
 ससिंहनादं वादित्रं वादयामासुरुद्धताः ॥ १६
 देवानां सिंहनादश्च सर्वतूर्यरवो महान् ।
 ग्रस्तोऽभूद् दैत्यनादैश्च चन्द्रस्तोयथरैरिव ॥ १७
 चन्द्रोदयात् समुद्भूतः पौर्णमास इवार्णवः ।
 त्रिपुरं प्रभवत् तद्वद् भीमरूपमहासुरैः ॥ १८
 प्राकारेषु पुरे तत्र गोपुरेष्वपि चापरे ।
 अद्वालकान् समारुद्ध्य केचिच्चलितवादिनः ॥ १९
 स्वर्णमालाधराः शूराः प्रभासितवराम्बराः ।
 केचिन्नदन्ति दनुजास्तोयमत्ता इवाम्बुदाः ॥ २०
 इतश्चेतश्च धावन्तः केचिदुद्धूतवाससः ।
 किमेतदिति पप्रच्छुरन्योऽन्यं गृहमाश्रिताः ॥ २१
 किमेतन्नैनं जानामि ज्ञानमन्तर्हितं हि मे ।
 ज्ञास्यसेऽनन्तरेणेति कालो विस्तारतो महान् ॥ २२
 सोऽप्यसौ पृथ्वीसारं सिंहश्च रथमास्थितः ।
 तिष्ठते त्रिपुरं पीड्य देहव्याधिरिवोच्छ्रुतः ॥ २३
 य एषोऽस्ति स एषोऽस्तु का चिन्ता सम्भवे सति ।
 एहि ह्यायुधमादाय क्व मे पृच्छा भविष्यति ॥ २४
 इति तेऽन्योन्यमाविद्वा उत्तरोत्तरभाषिणः ।
 आसाद्य पृच्छन्ति तदा दानवास्त्रिपुरालयाः ॥ २५
 तारकाख्यपुरे दैत्यास्तारकाख्यपुरःसराः ।
 निर्गताः कुपितास्तूर्ण बिलादिव महोरगाः ॥ २६

भगवान् रुद्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर देवराज इन्द्र उस विशाल सेनाके साथ उस त्रिपुरको जीतनेके लिये आगे बढ़े । चलते समय देवताओं और पार्षदगणोंके रथोंसे भीषण शब्द हो रहा था और वे सभी मेघकी गर्जनाके समान सिंहनाद कर रहे थे । उस शब्दको सुनकर दानवगण युद्धकी लालसासे अस्त्र लेकर त्रिपुरसे बाहर निकले और आकाशमें छलाँग मारते हुए गणेश्वरोंपर टूट पड़े । उनमें कुछ अन्य उद्धण्ड दानव, जो काले मेघके समान शोभा पा रहे थे, मेघकी तरह गर्जना कर रहे थे और सिंहनाद करते हुए बाजा बजा रहे थे । उस समय दैत्योंके सिंहनादसे देवताओंका सिंहनाद और सभी प्रकारके तुरही आदि बाजोंका महान् शब्द उसी प्रकार अभिभूत हो गया, जैसे बादलोंके बीच चन्द्रमा छिप जाते हैं । जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर पूर्णिमा तिथिको समुद्र वृद्धिगत हो जाता है, वैसे ही उन भयंकर रूपवाले महान् असुरोंसे त्रिपुर उद्धीस हो उठा । उस पुरमें कुछ दानव परकोटोंपर तथा कुछ फाटकों और अद्वालिकाओंपर चढ़कर 'चलो, निकलो' ऐसा कहकर ललकार रहे थे । कुछ शूर-वीर दानव सुन्दर एवं श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये हुए थे, उनके गलमें स्वर्णकी जंजीर शोभा पा रही थी और वे जलसे भरे हुए बादलकी भाँति सिंहनाद कर रहे थे । कुछ वस्त्र फहराते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे और घरपर आकर परस्पर एक-दूसरेसे पूछ रहे थे—'यह क्या हो रहा है?' (दूसरा उत्तर देता था कि) 'क्या हो रहा है, यह तो मैं नहीं जानता; क्योंकि उसकी जानकारी मुझसे छिपी हुई है । कुछ समयके बाद तुम्हें भी ज्ञात हो जायगा । अभी तो बहुत समय शेष है । (देखो न) वहाँ पृथ्वीके सारभूत रथपर बैठा हुआ वह जो सिंह खड़ा है, वह त्रिपुरको उसी प्रकार पीड़ा दे रहा है, जैसे बढ़ी हुई व्याधि शरीरको कष्ट देती है । वह जो हो, सो रहे; ऐसे हलचलके उपस्थित होनेपर चिन्ता करना व्यर्थ है । अब हथियार लेकर मैदानमें आ जाओ, फिर मुझसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं रह जायगी ।' उसी समय त्रिपुरनिवासी दानव परस्पर एक-दूसरेको पकड़कर इसी प्रकार पूछते थे और परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर देते थे ॥ १३—२५ ॥

इधर तारकाक्षपुरके निवासी दैत्य क्रोधसे भरे हुए तारकाक्षको आगे करके तुरंत नगरसे उसी प्रकार बाहर निकले, मानो बिलसे विषधर सर्प निकल रहे हों ।

निर्धावन्तस्तु ते दैत्याः प्रमथाधिपयूथैः ।
 निरुद्धा गजराजानो यथा केसरियूथैः ॥ २७
 दर्पितानां ततश्चैषां दर्पितानामिवाग्निनाम् ।
 रूपाणि जञ्चलुस्तेषामग्नीनामिव धम्यताम् ॥ २८
 ततो बृहन्ति चापानि भीमनादानि सर्वशः ।
 निकृष्टं जघ्नुरन्योऽन्यमिषुभिः प्राणभोजनैः ॥ २९
 मार्जारमृगभीमास्यान् पार्षदान् विकृताननान् ।
 दृष्टा दृष्टा हसन्नुच्छैर्दानवा रूपसम्पदाः ॥ ३०
 ब्राहुभिः परिघाकारैः कृष्टतां धनुषां शराः ।
 भट्टवर्मेषु विविशुस्तडागानीव पक्षिणः ॥ ३१
 मृताः स्थक्नु यास्यध्वं हनिष्यामो निर्वर्तताम् ।
 इत्येवं परुषाण्युक्त्वा दानवाः पार्षदर्घभान् ॥ ३२
 बिभिदुः सायकैस्तीक्ष्णैः सूर्यपादा इवाम्बुदान् ।
 प्रमथा अपि सिंहाक्षाः सिंहविक्रान्तविक्रमाः ।
 खण्डशैलशिलावृक्षैर्बिभिदुर्देत्यदानवान् ॥ ३३
 अम्बुदैराकुलमिव हंसाकुलमिवाम्बरम् ।
 दानवाकुलमत्यर्थं तत्पुरं सकलं बभौ ॥ ३४
 विकृष्टचापा दैत्येन्नाः सृजन्ति शरदुर्दिनम् ।
 इन्द्रचापाङ्गितोरस्का जलदा इव दुर्दिनम् ॥ ३५
 इषुभिस्ताङ्गमानास्ते भूयो भूयो गणेश्वराः ।
 चक्रुस्ते देहनिर्यासं स्वर्णधातुमिवाचलाः ॥ ३६
 तेऽथ वृक्षशिलावज्रशूलपट्टिपरश्वधैः ।
 चूर्ण्यन्तेऽभिहता दैत्याः काचाष्टङ्गहता इव ॥ ३७
 तारकाख्यो जयत्येष इति दैत्या अघोषयन् ।
 जयतीन्दश्च रुद्रश्च इत्येव च गणेश्वराः ॥ ३८

बाहर निकलकर उन दैत्योंने देवसेनापर धावा बोल दिया, परंतु प्रमथगणोंके यूथपतियोंने उन्हें ऐसा रोक दिया, जैसे सिंहसमूह गजराजोंके दलको स्तम्भित कर देते हैं । उन गर्वाले दानवोंका रूप तो यों ही (क्रोधके कारण) अग्निकी तरह उदीस हो उठा था, इधर रोक दिये जानेपर वे धौंकी जाती हुई आगकी तरह जल उठे । फिर तो सब ओर भयंकर सिंहनाद होने लगा । दानवगण बड़े-बड़े धनुषोंपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर प्राण-हरण करनेवाले बाणोंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे । प्रमथगणोंमें किन्हींके मुख बिलाव और किन्हींके मृगके समान भयंकर थे तथा किन्हींके मुख टेढ़े-मेढ़े थे । उन्हें देख-देखकर ठहाका मारकर सौन्दर्यशाली दानव हँसने लगे । परिघकी-सी आकारवाली भुजाओंद्वारा खींचे जाते हुए धनुषोंसे छूटे हुए बाण योद्धाओंके कवचोंमें उसी प्रकार घुस जाते थे, जैसे पक्षी तालाबोंमें प्रवेश करते हैं । उस समय दानवगण पार्षदयूथपतियोंको ललकारकर कह रहे थे—‘अरे! अब तो तुमलोग मरे ही हो । हमारे हाथोंसे छूटकर कहाँ जाओगे! लौट आओ । हमलोग तुम्हें मार डालेंगे ।’ ऐसी कठोर बातें कहकर वे अपने तीखे बाणोंसे उन्हें इस प्रकार विदीर्ण कर रहे थे, जैसे सूर्यकी किरणें बादलोंको भेदकर पार कर जाती हैं । उधरसे सिंहके समान पराक्रमी एवं सिंह-सदृश नेत्रोंवाले प्रमथगण भी शिलाओं, शिलाखण्डों और वृक्षोंके प्रहारसे दैत्यों और दानवोंको चूर्ण-सा कर दे रहे थे । उस समय बादलोंसे आच्छादित एवं हंसोंसे व्यास आकाशकी तरह वह सारा पुर दानवोंसे व्यास होकर अत्यन्त सुशोभित हो रहा था । जैसे इन्द्र-धनुषसे चिह्नित मध्यभागवाले बादल जलकी वृष्टि कर दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिवस) उत्पन्न कर लेते हैं, उसी प्रकार दैत्येन्द्रगण अपने धनुषोंकी प्रत्यञ्चाको कानतक खींचकर बाणोंकी वर्षा कर अन्धकार उत्पन्न कर रहे थे । दानवोंके बाणोंसे बारम्बार घायल होनेके कारण गणेश्वरोंके शरीरोंसे रक्तकी धार बह रही थी, जो ऐसी प्रतीत होती थी, मानो पर्वतोंसे सुवर्णधातु निकल रही हो । उधर गणेश्वरोंद्वारा चलाये गये वृक्ष, शिला, वज्र, शूल, पट्टिश और कुठारके प्रहारसे दैत्यगण ऐसे चूर-चूर कर दिये जा रहे थे जैसे कुलहाड़ी या छेनीके प्रहारसे काच छिन्न-भिन्न हो जाता है । उधर दैत्यगण ‘यह देखो, तारकाक्ष जीत रहा है’—ऐसी घोषणा कर रहे थे । तभी इधरसे गणेश्वर सिंहनाद करते हुए बोल रहे थे—‘देखो-देखो, इन्द्र और रुद्र विजयी हो रहे हैं’ ॥ २६—३८ ॥

वारिता दारिता बाणीयोंधास्तस्मिन् बलोभये ।
निःस्वनन्तोऽम्बुसमये जलगर्भा इवाम्बुदा: ॥ ३९
करैश्चिन्नैः शिरोभिश्च ध्वजैश्चत्रैश्च पाण्डुरैः ।
युद्धभूमिर्भयवती मांसशोणितपूरिता ॥ ४०
व्योम्नि चोत्प्लुत्य सहसा तालमात्रं वरायुधैः ।
दृढाहताः पतन पूर्व दानवाः प्रमथास्तथा ॥ ४१
सिद्धाश्राप्सरसश्चैव चारणाश्च नभोगताः ।
दृढप्रहारहृषिताः साधु साध्विति चुकुशुः ॥ ४२
अनाहताश्च वियति देवदुन्दुभयस्तथा ।
नदन्तो मेघशब्देन शरभा इव रोषिताः ॥ ४३
ते तस्मिस्त्रिपुरे दैत्या नद्याः सिन्धुपताविव ।
विशन्ति कुद्धवदना वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ ४४
तारकाख्यपुरे तस्मिन् सुराः शूराः समन्ततः ।
सशस्त्रा निपतन्ति स्म सपक्षा इव भूधराः ॥ ४५
योधयन्ति त्रिभागेन त्रिपुरे तु गणेश्वराः ।
विद्युन्माली मयश्चैव मग्नौ च द्रुमवद्रणे ॥ ४६
विद्युन्माली स दैत्येन्द्रो गिरीन्द्रसदृशद्युतिः ।
आदाय परिधं घोरं ताडयामास नन्दिनम् ॥ ४७
स नन्दी दानवेन्द्रेण परिधेण दृढाहतः ।
भ्रमते मधुनाऽव्यक्तः पुरा नारायणो यथा ॥ ४८
नन्दीश्वरे गते तत्र गणपाः ख्यातविक्रमाः ।
दुद्धुवुर्जातिसंरभा विद्युन्मालिनमासुरम् ॥ ४९
घण्टाकर्णः शङ्कुकणो महाकालश्च पार्षदाः ।
ततश्च सायकैः सर्वान् गणपान् गणपाकृतीन् ॥ ५०
भूयो भूयः स विव्याध गणेश्वरमहत्तमान् ।
भित्त्वा भित्त्वा रुरावोच्चैर्नभस्यम्बुधरो यथा ॥ ५१
तस्यारभितशब्देन नन्दी दिनकरप्रभः ।
संज्ञां लभ्य ततः सोऽपि विद्युन्मालिनमाद्रवत् ॥ ५२

उन दोनों सेनाओंमें बाणोंद्वारा रोके एवं घायल किये गये वीर इतने जोरसे सिंहनाद कर रहे थे जैसे वर्षाकालमें जलसे भरे हुए बादल गरजते हैं । कटे हुए हाथों, मस्तकों, पीले रंगकी पताकाओं और छत्रोंसे तथा मांस और रुधिरसे भरी हुई युद्धभूमि बड़ी भयावनी लग रही थी । दानव तथा प्रमथगण उत्तम अख्ल धारण कर पहले तो सहसा ताड़-वृक्षकी ऊँचाई-बराबर आकाशमें उछल पड़ते थे और पुनः सुदृढ़रूपसे घायल होकर भूतलपर गिर पड़ते थे । गगनमण्डलमें स्थित सिद्ध, अप्सरा और चारणोंके समूह (दानवोंपर) सुदृढ़ प्रहार होनेसे हर्षित होकर 'ठीक है, ठीक है', ऐसा कहते हुए चिल्लाने लगते थे । उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बिना चोट किये ही बज रही थीं । उनसे मेघकी गर्जना तथा कुद्ध हुए शरभ (अष्टपदी)-की दहाड़के समान शब्द हो रहे थे । दैत्यगण उस त्रिपुरमें इस प्रकार प्रविष्ट हो रहे थे जैसे नदियाँ समुद्रमें और कुद्ध मुखवाले सर्प बिमवटमें प्रवेश करते हैं । इधर अस्त्रधारी, शूरवीर देवगण तारकाक्षके उस नगरके ऊपर चारों ओर इस प्रकार छाये हुए थे, मानो पंखधारी पर्वत मँडरा रहे हों । गणेश्वर त्रिपुरमें तीन भागोंमें विभक्त होकर युद्ध कर रहे थे । उस समय विद्युन्माली और मय—ये दोनों युद्धस्थलमें वृक्षकी भाँति डटे हुए थे । इसी बीच हिमालय-तुल्य कान्तिमान् दैत्येन्द्र विद्युन्मालीने अपना भयंकर परिघ उठाकर नन्दीपर प्रहार किया । दानवेन्द्रके उस परिघके आघातसे नन्दी विशेषरूपसे घायल हो गये और वे ऐसा चक्कर काटने लगे, जैसे पूर्वकालमें दैत्यराज मधुके प्रहारसे अव्यक्तस्वरूप भगवान् नारायण भ्रमित हो गये थे ॥ ३९—४८ ॥

नन्दीश्वरके घायल होकर रणभूमिसे हट जानेपर विख्यातपराक्रमी घण्टाकर्ण, शङ्कुकर्ण और महाकाल आदि प्रधान पार्षदगण कुद्ध होकर एक साथ गक्षस विद्युन्मालीके ऊपर टूट पड़े । तब विद्युन्मालीने उन सभी गणेश्वरोंको जो गणेश-सदृश आकृतिवाले तथा गणेश्वरोंमें प्रधान थे, बाणोंद्वारा लगातार बींधना आरम्भ किया । वह उन्हें घायल करके इतने उच्च स्वरसे सिंहनाद करता था मानो आकाशमें बादल गरज रहे हों । उसके उस सिंहनादसे सूर्य-सरीखे प्रभाशाली नन्दीकी मूर्छा भंग हो गयी, तब वे भी विद्युन्मालीपर चढ़ धाये ।

रुद्रदत्तं तदा दीसं दीसानलसमप्रभम्।
 वज्रं वज्रनिभाङ्गस्य दानवस्य ससर्ज ह ॥ ५३
 तत्रन्दिभुजनिर्मुक्तं मुक्ताफलविभूषितम्।
 पपात वक्षसि तदा वज्रं दैत्यस्य भीषणम् ॥ ५४
 स वज्रनिहतो दैत्यो वज्रसंहननोपमः।
 पपात वज्राभिहतः शक्रेणाद्रिरिवाहतः ॥ ५५
 दैत्येश्वरं विनिहतं नन्दिना कुलनन्दिना।
 चुकुशुर्दानिवाः प्रेक्ष्य दुद्रुवुश्च गणाधिपाः ॥ ५६
 दुःखामर्षितरोषास्ते विद्युन्मालिनि पातिते।
 द्वुपशैलमहावृष्टिं पयोदाः ससृजुर्यथा ॥ ५७
 ते पीड्यमाना गुरुभिर्गिरिभिश्च गणेश्वराः।
 कर्तव्यं न विदुः किंचिद्वृन्द्यमाधार्मिका इव ॥ ५८
 ततोऽसुरवरः श्रीमांस्तारकाख्यः प्रतापवान्।
 स तरूणां गिरीणां वै तुल्यरूपधरो बभौ ॥ ५९
 भिन्नोत्तमाङ्गा गणापा भिन्नपादाङ्गिताननाः।
 विरेजुर्भुजगा मन्त्रैर्वर्यमाणा यथा तथा ॥ ६०
 मयेन मायावीर्येण वध्यमाना गणेश्वराः।
 भ्रमन्ति बहुशब्दालाः पञ्चरे शकुनो इव ॥ ६१
 तथासुरवरः श्रीमांस्तारकाख्यः प्रतापवान्।
 ददाह च बलं सर्वे शुष्केन्धनमिवानलः ॥ ६२
 तारकाख्येण वार्यन्ते शरवर्षेस्तदा गणाः।
 मयेन मायानिहतास्तारकाख्येण चेषुभिः ॥ ६३
 गणेशा विद्युरा जाता जीर्णमूला यथा द्रुमाः ॥ ६४
 भूयः सम्पतते चाग्निर्ग्रहान् ग्राहान् भुजङ्गमान्।
 गिरीन्द्रांश्च हरीन् व्याघ्रान् वृक्षान् सृमरवर्णकान् ॥ ६५
 शरभानष्टपादांश्च आपः पवनमेव च।
 मयो मायाबलेनैव पातयत्येव शत्रुषु ॥ ६६
 ते तारकाक्षेण मयेन मायया
 समुद्घामाना विवशा गणेश्वराः।
 न शकुवंस्ते मनसापि चेष्टितुं
 यथेन्द्रियार्था मुनिनाभिसंयताः ॥ ६७

उस समय उन्होंने स्त्रद्वारा दिये गये एवं प्रज्वलित अग्निके समान प्रभाशाली चमकते हुए वज्रको वज्रतुल्य कठोर शरीरवाले दानवके ऊपर चला दिया। तब नन्दीके हाथसे छूटा हुआ मोतियोंसे विभूषित वह भयंकर वज्र विद्युन्मालीके वक्षःस्थलपर जा गिरा। फिर तो वज्रके समान ठोस शरीरवाला दैत्य विद्युन्माली उस वज्रसे आहत होकर उसी प्रकार धराशायी हो गया, मानो इन्द्रके प्रहारसे पर्वत गिर पड़ा हो। अपने कुल (वर्ग)-को आनन्दित करनेवाले नन्दीद्वारा दैत्यराज विद्युन्मालीको मारा गया देखकर दानवलोग चीत्कार करने लगे। तब गणेश्वरोंने उनपर धावा बोल दिया। विद्युन्मालीके मारे जानेपर दानव दुःख और अमर्षके कारण क्रोधसे भरे हुए थे। वे गणेश्वरोंके ऊपर बादलकी भाँति वृक्षों और पर्वतोंकी महान् वृष्टि करने लगे। विशाल पर्वतोंके प्रहारसे पीड़ित हुए सभी गणेश्वर ऐसे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, जैसे अधार्मिक जन वन्दनीय गुरुजनोंके प्रति हो जाते हैं। तदनन्तर असुरायक प्रतापी श्रीमान् तारकाक्ष वृक्षों एवं पर्वतोंके समान रूप धारण करके रणभूमिमें उपस्थित हुआ ॥ ४९—६० ॥

उस समय बहुतेरे गणेश्वरोंके मस्तक फट गये थे, किन्हींके पैर टूट गये थे और कुछके मुखोंपर धाव लगा था। वे सभी मन्त्रोद्वारा रोके गये सर्पकी तरह शोभा पा रहे थे। मायावी मयद्वारा मारे जाते हुए गणेश्वर पिंजरमें बंद पक्षीकी तरह अनेकों प्रकारका शब्द करते हुए चक्कर काट रहे थे। तत्पश्चात् असुरश्रेष्ठ प्रतापी श्रीमान् तारकाक्षने पार्षदोंकी सारी सेनाको उसी प्रकार जलाना प्रारम्भ किया, जैसे आग सूखे इन्धनको जला देती है। तारकाक्ष बाणोंकी वर्षा करके पार्षदगणोंको रोक देता था। इस प्रकार मयकी माया और तारकाक्षके बाणोंद्वारा गणेश्वर मारे जा रहे थे। वे पुरानी जड़वाले वृक्षोंकी तरह व्याकुल हो गये। पुनः मयने अपनी मायाके बलपर शत्रुओंके ऊपर अग्निकी वर्षा की तथा ग्रह, मकर, सर्प, विशाल पर्वत, सिंह, बाघ, वृक्ष, काले हिरन और आठ पैरोंवाले शरभों (गैंडों)-को भी गिराया, जलकी घनघोर वृष्टि की और झङ्घावातका भी प्रकोप उत्पन्न किया। इस प्रकार तारकाक्ष और मयकी मायासे मोहित होकर वे गणेश्वर मनसे भी चेष्टा करनेमें असमर्थ हो गये। वे ऐसे निरुद्ध हो गये जैसे मुनियोंद्वारा रोके गये इन्द्रियोंके विषय।

महाजलागन्यादिसकुञ्जरोरगै-

हरीन्द्रव्याघ्रक्षतरक्षुराक्षसैः

विबाध्यमानास्तमसा विमोहिताः

समुद्रमध्येष्विव गाथकाङ्क्षणः ॥ ६८

सम्मर्द्यमानेषु गणेश्वरेषु

संनर्दमानेषु सुरेतरेषु ।

ततः सुराणां प्रवराभिरक्षितुं

रिपोर्बलं संविविशुः सहायुधाः ॥ ६९

यमो गदास्त्रो वरुणश्च भास्कर-

स्तथा कुमारोऽमरकोटिसंयुतः ।

स्वयं च शक्रः सितनागवाहनः

कुलीशपाणिः सुरलोकपुङ्गवः ॥ ७०

स चोडुनाथः ससुतो दिवाकरः

स सान्तकस्यक्षपतिर्महाद्युतिः ।

एते रिपूणां प्रवराभिरक्षितं

तदा बलं संविविशुर्मदोद्धताः ॥ ७१

यथा वनं दर्पितकुञ्जराधिपा

यथा नभः साम्बुधरं दिवाकरः ।

यथा च सिंहैर्विजनेषु गोकुलं

तथा बलं तत्रिदशैरभिन्नतम् ॥ ७२

कृतप्रहारातुरदीनदानवं

ततस्त्वभज्यन्त बलं हि पार्षदाः ।

स्वज्योतिषां ज्योतिरिवोष्मवान् हरि-

र्यथा तमो घोरतरं नराणाम् ॥ ७३

विशान्तयामास यथा सदैव

निशाकरः संचितशार्वरं तमः ।

ततोऽपकृष्टे च तमः प्रभावे

ह्यस्त्रप्रभावे च विवर्धमाने ॥ ७४

दिग्लोकपालैर्गणनायकैश्च

कृतो महान् सिंहरवो मुहूर्तम् ।

संख्ये विभग्ना विकरा विपादा-

शिछ्नोत्तमाङ्गाः शरपूरिताङ्गाः ॥ ७५

देवेतरा देववरैर्विभिन्नाः

सीदन्ति पङ्केषु यथा गजेन्द्राः ।

वत्रेण भीमेन च वज्रपाणिः

शक्त्या च शक्त्या च मयूरकेतुः ॥ ७६

उस समय प्रमथगण जल और अग्निकी महान् वृष्टि, हाथी, सर्प, सिंह, व्याघ्र, रीछ, चीते और राक्षसोंद्वारा सताये जा रहे थे। मायाका इतना घना अन्धकार प्रकट हुआ, जिसमें वे ऐसे विमोहित हो गये, जैसे समुद्रके मध्यमें जलकी थाह लगानेवाले विमूढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार गणेश्वर पीड़ित किये जा रहे थे और दानवगण सिंहनाद कर रहे थे। इसी बीच प्रधान-प्रधान देवता अस्त्र धारणकर गणेश्वरोंकी रक्षा करनेके लिये शत्रुसेनामें प्रविष्ट हुए। उस अवसरपर गदाधारी यमराज, वरुण, भास्कर, एक करोड़ देवताओंके साथ कुमार कार्तिकेय, श्वेत हाथी ऐरावतपर सवार हो हाथमें वज्र लिये हुए स्वयं देवराज इन्द्र, चन्द्रमा और अपने पुत्र शनैश्चरके साथ सूर्य तथा अन्तकसहित परम तेजस्वी त्रिलोचन रुद्र—ये सभी मदोद्धत देवता उत्कृष्ट बलवानोंद्वारा सुरक्षित शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट हुए। जिस प्रकार मतवाले गजेन्द्र वनमें, बादलोंसे घिरे हुए आकाशमें सूर्य और निर्जन स्थानमें स्थित गोष्ठमें सिंह प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार देवताओंने उस सेनापर धावा बोल दिया। फिर तो पार्षदगणोंने शत्रुप्रहार करके दानवोंको ऐसा व्याकुल और दीन कर दिया कि उनका वह विशाल सेना-व्यूह उसी प्रकार छित्र-भित्र हो गया जैसे स्वर्गीय ज्योतिःपुञ्जोंके महान् ज्योति उष्णरश्मि सूर्य मनुष्योंके अन्धकारका विनाश कर देते हैं तथा चन्द्रमा रात्रिके घने अन्धकारका प्रशमन कर देते हैं ॥ ६१—७३ ३ ॥

तदनन्तर अन्धकारका प्रभाव नष्ट हो जाने और अस्त्रका प्रभाव बढ़नेपर दिव्यपालों, लोकपालों और गणनायकोंने दो घड़ीतक महान् सिंहनाद किया। फिर तो वे युद्धमें दानवोंको विदीर्ण करने लगे। वहाँ किन्हींके हाथ कट गये तो किन्हींके पैर खण्डित हो गये, किन्हींके मस्तक कट गये तो किन्हींके शरीर बाणोंसे घिर गये। इस प्रकार देवश्रेष्ठोंद्वारा घायल किये गये दानव ऐसा कष्ट पा रहे थे, जैसे दलदलमें फँसे हुए गजराज विवश हो जाते हैं। उस समय वज्रपाणि इन्द्र अपने भयंकर वज्रसे, मयूरच्छ्वज स्वामिकार्तिक शक्तिपूर्वक अपनी शक्तिसे,

दण्डेन चोग्रेण च धर्मराजः
 पाशेन चोग्रेण च वारिगोप्ता ।
 शूलेन कालेन च यक्षराजो
 वीर्येण तेजस्वितया सुकेशः ॥ ७७
 गणेशवरास्ते सुरसंनिकाशाः
 पूर्णाहुतीसिक्तशिखिप्रकाशाः ।
 उत्सादयन्ते दनुपुत्रवृन्दान्
 यथैव इन्द्राशनयः पतन्त्यः ॥ ७८
 मयस्तु देवान् परिरक्षितार-
 मुमात्मजं देववरं कुमारम् ।
 शरेण भित्त्वा स हि तारकासुतं
 स तारकाख्यासुरमाबभाषे ॥ ७९
 कृत्वा प्रहारं प्रविशामि वीरं
 पुरं हि दैत्येन्द्र बलेन युक्तः ।
 विश्राममूर्जस्करमप्यवाप्य
 पुनः करिष्यामि रणं प्रपन्नैः ॥ ८०
 वयं हि शस्त्रक्षतविक्षिताङ्गा
 विशीर्णशस्त्रध्वजवर्मवाहाः ।
 जयैषिणस्ते जयकाशिनश्च
 गणेश्वरा लोकवराधिपाश्च ॥ ८१
 मयस्य श्रुत्वा दिवि तारकाख्यो
 वचोऽभिकाङ्गन् क्षतजोपमाक्षः ।
 विवेश तूर्णं त्रिपुरं दितेः सुतैः
 सुतैरदित्या युधि वृद्धहर्षैः ॥ ८२
 ततः सशङ्कानकभेरिभीमं
 ससिंहनादं हरसैन्यमाबभौ ।
 मयानुगं घोरगभीरगहरं
 यथा हिमाद्रेर्गजसिंहनादितम् ॥ ८३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे इलावृते देवदानवयुद्धवर्णने प्रहारकृतं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाहप्रसङ्गमें इलावृतमें देव-दानव-युद्ध-प्रसङ्गमें
परस्पर प्रहार नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३५ ॥

धर्मराज अपने भयंकर दण्डसे, वरुण अपने उग्र पाशसे और पराक्रम एवं तेजसे सम्पन्न सुन्दर बालोंवाले यक्षराज कुबेर अपने काल-सदृश शूलसे प्रहार कर रहे थे। देवताओंके समान तेजस्वी एवं पूर्णाहुतिसे सिक्त हुई अग्निके समान प्रकाशमान गणेश्वर दानववृन्दपर उसी प्रकार झपटते थे मानो बिजलियाँ गिर रही हों। तत्पश्चात् मयने देवताओंकी रक्षामें तत्पर पार्वती-नन्दन एवं तारका-पुत्र सर्वश्रेष्ठ कुमार कार्तिकेयको बाणसे घायल कर तारकाक्षसे कहा—‘दैत्येन्द्र! हमलोगोंके शरीर शस्त्रोंके आघातसे क्षत-विक्षत हो गये हैं तथा हमारे शस्त्रास्त्र, ध्वज, कवच और वाहन आदि भी छिन्न-भिन्न हो गये हैं। इधर गणेश्वरों तथा लोकनायक देवोंके मनमें जयकी अभिलाषा विशेषरूपसे जागरूक हो उठी है, साथ ही वे विजयी भी हो रहे हैं, अतः अब मैं इस वीरपर प्रहार करके सेनासहित नगरमें प्रवेश कर जाता हूँ और वहाँ कुछ देर विश्राम कर शक्ति-सम्पन्न होकर पुनः अनुचरोंसहित युद्ध करूँगा।’ मयकी ऐसी बात सुनकर उसका पालन करता हुआ रुधिर-सरीखे लाल नेत्रोंवाला तारकाक्ष तुरंत ही आकाशमार्गसे दिति-पुत्रोंके साथ त्रिपरमें प्रवेश कर गया। उस समय देवगण रणभूमिमें हर्षके मारे उछल पड़े। फिर तो मयका पीछा करते हुए भगवान् शकंकरके सैनिक विशेष शोभा पा रहे थे। उनके शङ्क, नगाड़े और भेरियाँ बजने लगीं तथा वे सिंहनाद करने लगे। उस समय ऐसा भीषण शब्द हो रहा था मानो हिमालय पर्वतकी भयंकर एवं गहरी गुफामें गजराज और सिंह दहाड़ रहे हों ॥ ७४—८३ ॥

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय

मयका चिन्तित होकर अद्भुत बावलीका निर्माण करना, नन्दिकेश्वर और तारकासुरका भीषण युद्ध तथा प्रमथगणोंकी मारसे विमुख होकर दानवोंका त्रिपुर-प्रवेश

सूत उवाच

मयः प्रहारं कृत्वा तु मायावी दानवर्षभः ।
विवेश तूर्णं त्रिपुरमध्यं नीलमिवाम्बरम् ॥ १
स दीर्घमुष्णं निःश्वस्य दानवान् वीक्ष्य मध्यगान् ।
दध्यौ लोकक्षये प्राप्ते कालं काल इवापरः ॥ २
इन्द्रोऽपि बिभ्यते यस्य स्थितो युद्धेष्मुरग्रतः ।
स चापि निधनं प्राप्तो विद्युन्माली महायशाः ॥ ३
दुर्ग वै त्रिपुरस्यास्य न समं विद्यते पुरम् ।
तस्याप्येषोऽनयः प्राप्तो नादुर्गं कारणं क्वचित् ॥ ४
कालस्यैव वशे सर्वं दुर्गं दुर्गतरं च यत् ।
काले क्रुद्धे कथं कालात्माणं नोऽद्य भविष्यति ॥ ५
लोकेषु त्रिषु यत्किञ्चिद् बलं वै सर्वजन्तुषु ।
कालस्य तद्वशं सर्वमिति पैतामहो विधिः ॥ ६
अस्मिन् कः प्रभवेद् यो वै ह्यसंधार्येऽमितात्मनि ।
लङ्घने कः समर्थः स्यादृते देवं महेश्वरम् ॥ ७
बिभेमि नेन्द्राद्विद्य यमाद् वरुणान् च वित्तपात् ।
स्वामी चैषां तु देवानां दुर्जयः स महेश्वरः ॥ ८
ऐश्वर्यस्य फलं यत्तत्प्रभुत्वस्य च समंततः ।
तदद्य दर्शयिष्यामि यावद्वीराः समंततः ॥ ९
वापीममृततोयेन पूर्णा स्वक्षये वरौषधीः ।
जीविष्यन्ति तदा दैत्याः संजीवनवरौषधैः ॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! दानवश्रेष्ठ मायावी मय स्वामिकार्तिकपर प्रहारकर त्रिपुरमें उसी प्रकार तुरंत प्रवेश कर गया, जैसे नीले आकाशमें बादल प्रविष्ट हो जाते हैं। वहाँ आकर उसने लम्बी और गरम साँस ली तथा त्रिपुरमें भागकर आये हुए दानवोंकी ओर देखकर लोकके विनाशके अवसरपर दूसरे कालके समान मय कालके विषयमें विचार करने लगा—‘अहो! रणभूमिमें युद्धकी अभिलाषासे समुख खड़ा हो जानेपर जिससे इन्द्र भी डरते थे वह महायशस्वी विद्युन्माली भी कालका ग्रास बन गया। त्रिलोकीमें इस त्रिपुरकी समतामें अन्य कोई दुर्ग अथवा पुर नहीं है, फिर भी इसपर भी ऐसी आपत्ति आ ही गयी, अतः (प्राणरक्षाके लिये) दुर्ग कोई कारण नहीं है। (इसलिये मैं तो ऐसा समझता हूँ कि) दुर्ग ही क्यों? दुर्गसे भी बढ़कर सभी वस्तुएँ कालके ही वशमें हैं। तब भला कालके कुपित हो जानेपर इस समय हमलोगोंकी कालसे रक्षा कैसे हो सकेगी? तीनों लोकों तथा समस्त प्राणियोंमें जो कुछ बल है, वह सारा-का-सारा कालके वशीभूत है—ऐसा ब्रह्माका विधान है। ऐसे अमित पराक्रमी एवं असाध्य कालके प्रति कौन-सा उद्योग सफल हो सकता है? भगवान् शंकरके अतिरिक्त उस कालपर विजय पानेमें कौन समर्थ हो सकता है? मैं इन्द्र, यम और वरुणसे नहीं डरता, कुबेरसे भी मुझे कोई भय नहीं है, किंतु इन देवताओंके स्वामी जो महेश्वर हैं, उनपर विजय पाना दुष्कर है। फिर भी जबतक ये दानववीर चारों ओर बिखरे हुए हैं, तबतक ऐश्वर्य-प्रासिका जो फल होता है तथा स्वामी बननेका जो फल होता है, उसे मैं प्रदर्शित करूँगा। मैं एक ऐसी बावलीका निर्माण करूँगा, जिसमें अमृतरूपी जल भरा होगा। साथ ही कुछ श्रेष्ठ ओषधियोंका भी आविष्कार करूँगा। उन श्रेष्ठ संजीविनी ओषधियोंके प्रयोगसे मेरे हुए दैत्य जीवित हो जायेंगे’॥१—१०॥

इति संचिन्त्य बलवान् मयो मायाविनां वरः ।
 मायया ससृजे वापीं रम्भामिव पितामहः ॥ ११
 द्वियोजनायतां दीर्घा पूर्णयोजनविस्तृताम् ।
 आरोहसंक्रमवर्तीं चित्ररूपां कथामिव ॥ १२
 इन्दोः किरणकल्पेन मृष्टेनामृतगन्धिना ।
 पूर्णा परमतोयेन गुणपूर्णामिवाङ्गनाम् ॥ १३
 उत्पलैः कुमुदैः पद्मैर्वृतां कादम्बकैस्तथा ।
 चन्द्रभास्करवरणाभैर्भीमैरावरणैर्वृताम् ॥ १४
 खगैर्मधुररावैश्च चारुचामीकरप्रभैः ।
 कामैषिभिरिवाकीर्णा जीवनाभरणीमिव ॥ १५
 संसृज्य स मयो वापीं गङ्गामिव महेश्वरः ।
 तस्यां प्रक्षालयामास विद्युन्मालिनमादितः ॥ १६
 स वाप्यां मज्जितो दैत्यो देवशत्रुर्महाबलः ।
 उत्तस्थाविन्धनैरिद्धः सद्यो हुत इवानलः ॥ १७
 मयस्य चाङ्गलिं कृत्वा तारकाख्योऽभिवादितः ।
 विद्युन्मालीति वचनं मयमुत्थाय चाब्रवीत् ॥ १८
 क्ष नन्दी सह रुद्रेण वृतः प्रमथजम्बुकैः ।
 युद्ध्यामोऽरीन् विनिष्ठीङ्ग दयादेहेषु का हि नः ॥ १९
 अन्वास्यैव च रुद्रस्य भवामः प्रभविष्णवः ।
 तैर्वा विनिहता युद्धे भविष्यामो यमाशनाः ॥ २०
 विद्युन्मालेनिशम्यैतन्मयो वचनमूर्जितम् ।
 तं परिष्वज्य साद्राक्ष इदमाह महासुरः ॥ २१
 विद्युन्मालिन् न मे राज्यमभिप्रेतं न जीवितम् ।
 त्वया विना महाबाहो किमन्येन महासुरः ॥ २२
 महामृतमयी वापी ह्येषा मायाभिरीश्वर ।
 सृष्टा दानवदैत्यानां हतानां जीववर्धिनी ॥ २३
 दिष्ट्या त्वां दैत्य पश्यामि यमलोकादिहागतम् ।
 दुर्गतावनयग्रस्तं भोक्ष्यामोऽद्य महानिधिम् ॥ २४

ऐसा विचारकर मायावियोंमें श्रेष्ठ बलवान् मयने एक (सुन्दर) बावलीकी रचना की, जैसे ब्रह्माजीने मायासे रम्भा अप्सराकी रचना कर डाली थी। वह (बावली) दो योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी थी। उसमें चित्र-विचित्र प्रसङ्गोंवाली कथाकी भाँति क्रमशः चढ़ाव-उतारवाली सीढ़ियाँ बनी थीं। वह चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल, अमृत-सदृश मधुर एवं सुगन्धित उत्तम जलसे भरी हुई ऐसी लग रही थी, मानो सम्पूर्ण सद्गुणोंसे पूर्ण कोई वनिता हो। उसमें नील कमल, कुमुदिनी और अनेकों प्रकारके कमल खिले हुए थे। वह चन्द्रमा और सूर्यके समान चमकीले रंगवाले भयंकर डैनोंसे युक्त कलहंसोंसे व्यास थी। उसमें सुन्दर सुनहली कान्तिवाले पक्षी मधुर शब्दोंमें कूज रहे थे। वह जलाभिलाषी जीवोंसे व्यास उन्हें प्राणदान करनेवालीकी तरह दीख रही थी। जैसे महेश्वरने (अपनी जटासे) गङ्गाको उत्पन्न किया था, उसी प्रकार मयने उस बावलीकी रचना कर उसके जलसे सर्वप्रथम विद्युन्मालीके शवको धोया। उस बावलीमें डुबोये जानेपर देवशत्रु महाबली दैत्य विद्युन्माली उसी प्रकार उठ खड़ा हुआ, जैसे इन्धन पड़नेसे हवन की गयी अग्नि तुरंत उद्दीप हो उठती है। उठते ही विद्युन्मालीने हाथ जोड़कर मय और तारकासुरका अभिवादन किया और मयसे इस प्रकार कहा—‘प्रमथरूपी शृगालोंसे धिरा हुआ रुद्रके साथ नन्दी कहाँ खड़ा है? अब हमलोग शत्रुओंको पीसते हुए युद्ध करेंगे। हमलोगोंके शरीरमें दया कहाँ? हमलोग या तो रुद्रको खदेड़कर प्रभावशाली होंगे अथवा उनके द्वारा युद्धस्थलमें मारे जाकर यमराजके ग्रास बन जायेंगे।’ विद्युन्मालीके ऐसे उत्साहपूर्ण वचन सुनकर महासुर मयके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। तब उसने विद्युन्मालीका आलिङ्गन कर इस प्रकार कहा—‘महाबाहु विद्युन्माली! तुम्हारे बिना न तो मुझे राज्य अभीष्ट है, न जीवनकी ही अभिलाषा है। महासुर! अन्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या है? ऐश्वर्यशाली वीर! मैंने मायाद्वारा अमृतसे भरी हुई इस बावलीकी रचना की है। यह मरे हुए दानवों और दैत्योंको जीवन-दान देगी। दैत्य! सौभाग्यवश (इसीके प्रभावसे) मैं तुम्हें यमलोकसे लौटा हुआ देख रहा हूँ। अब हमलोग आपत्तिके समय अन्यायसे अपहरण की हुई महानिधिका उपभोग करेंगे’॥११—२४॥

दृष्टा दृष्टा च तां वापीं मायया मयनिर्मिताम्।
हृष्टाननाक्षा दैत्येन्द्रा इदं वचनमब्रुवन्॥ २५
दानवा युध्यतेदानीं प्रमथैः सह निर्भयाः।
मयेन निर्मिता वापी हतान् संजीवयिष्यति॥ २६
ततः क्षुब्धाम्बुधिनिभा भेरी सा तु भयंकरी।
वाद्यमाना ननादोच्चै रौरवी सा पुनः पुनः॥ २७
श्रुत्वा भेरीरवं घोरं मेघारभितसंनिभम्।
न्यपतन्सुरास्तूर्णं त्रिपुराद् युद्धलालसाः॥ २८
लोहराजतसौवर्णैः कटकैर्मणिराजितैः।
आमुकैः कुण्डलैहरैर्मुकुटैरपि चोत्कैः॥ २९
धूमायिता ह्यविरमा ज्वलन्त इव पावकाः।
आयुधानि समादाय काशिनो दृढविक्रमाः॥ ३०
नृत्यमाना इव नटा गर्जन्त इव तोयदाः।
करोच्छ्रया इव गजाः सिंहा इव च निर्भयाः॥ ३१
हृदा इव च गम्भीराः सूर्या इव प्रतापिताः।
द्रुमा इव च दैत्येन्द्रास्त्रासयन्तो बलं महत्॥ ३२
प्रमथा अपि सोत्साहा गरुडोत्पातपातिनः।
युयुत्सवोऽभिधावन्ति दानवान् दानवारयः॥ ३३
नन्दीश्वरेण प्रमथास्तारकाञ्छेन दानवाः।
चक्रुः संहृत्य संग्रामं चोद्यमाना बलेन च॥ ३४
तेऽसिभिश्चन्द्रसंकाशैः शूलैश्चानलपिङ्गलैः।
बाणैश्च दृढनिर्मुक्तैरभिजघ्नुः परस्परम्॥ ३५
शरणां सृज्यमानानामसीनां च निपात्यताम्।
रूपाण्यासन् महोल्कानां पतन्तीनामिवाम्बरात्॥ ३६
शक्तिभिर्भिन्नहृदया निर्दया इव पातिताः।
निरयेष्विव निर्मग्नाः कूजन्ते प्रमथासुराः॥ ३७
हेमकुण्डलयुक्तानि किरीटोत्कटवन्ति च।
शिरांस्युवर्या पतन्ति स्म गिरिकूटा इवात्यये॥ ३८
परश्वधैः पद्मशैश्च खड्गैश्च परिधैस्तथा।
छिन्नाः करिवराकारा निपेतुस्ते धरातले॥ ३९

मायाके प्रभावसे मयद्वारा निर्मित उस बावलीको देख-देखकर दैत्येन्द्रोंके नेत्र और मुख हर्षके कारण उत्फुल्ल हो उठे थे। तब वे (दानवोंको ललकारते हुए) इस प्रकार बोले—‘दानवो ! अब तुमलोग निर्भय होकर प्रमथगणोंके साथ युद्ध करो। मयद्वारा निर्मित यह बावली मेरे हुए तुमलोगोंको जीवित कर देगी ।’ फिर तो क्षुब्ध हुए सागरके समान भय उत्पन्न करनेवाली दानवोंकी भेरी बज उठी। वह बड़े जोरसे भयंकर शब्द कर रही थी। मेघकी गर्जनाके समान उस भयंकर भेरीके शब्दको सुनकर युद्धके लिये लालायित हुए असुरण तुरंत ही त्रिपुरसे बाहर निकल पड़े। वे लोहे, चाँदी, सुवर्ण और मणियोंके बने हुए कड़े, कुण्डल, हार और उत्तम मुकुट धारण किये हुए थे। वे अनवरत जलते हुए धूमसे युक्त प्रज्वलित अग्निके समान दीख रहे थे। वे सुदृढ़ पराक्रमी दैत्य अपने-अपने अख लेकर (उछलते-कूदते हुए) ऐसे लग रहे थे, जैसे रंगमंचपर नाचते हुए नट हों। वे सूँड़ उठाये हुए हाथीके समान हाथ उठाकर और सिंह-सदृश निर्भय होकर बादलकी तरह गर्जना कर रहे थे। कुण्डके समान गम्भीर, सूर्यके सदृश तेजस्वी और वृक्षोंके-से धैर्यशाली दैत्येन्द्र प्रमथोंकी विशाल सेनाको पीड़ित करने लगे। तत्पश्चात् गरुड़की भाँति झपट्टा मारनेवाले दानव-शत्रु प्रमथगण भी उत्साहपूर्वक युद्ध करनेकी अभिलाषासे दानवोंपर टूट पड़े। उस समय नन्दीश्वरकी अध्यक्षतामें प्रमथगण और तारकासुरकी अध्यक्षतामें दानवयूथ समवेतरूपसे युद्ध करने लगे। उन्हें सेनाएँ भी प्रेरित कर रही थीं। वे चन्द्रमाके समान चमकीली तलवारों, अग्नि-सदृश पीले शूलों और सुदृढ़रूपसे छोड़े गये बाणोंसे परस्पर एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। उस समय छोड़े जाते हुए बाणों तथा प्रहार की जाती हुई तलवारोंके रूप ऐसे दीख रहे थे मानो आकाशसे गिरती हुई महोल्काएँ हों॥ २५—३६॥

शक्तिके आधातसे उनके हृदय छिन्न-भिन्न हो गये थे और वे दयाहीनकी भाँति भूमिपर पड़े हुए थे। इस प्रकार प्रमथगण तथा असुरवृन्द नरकमें पड़े हुए जीवोंकी तरह चीत्कार कर रहे थे। स्वर्णनिर्मित कुण्डलों और प्रभावशाली किरीटोंसे युक्त वीरोंके मस्तक प्रलयकालमें पर्वतशिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर रहे थे। वे कुठार, पटा, खड्ग और लोहेकी गदाके आधातसे छिन्न-भिन्न होकर गजेन्द्रोंके समान धराशायी हो रहे थे। कभी

गर्जन्ति सहसा हृष्टाः प्रमथा भीमगर्जनाः।
 साधयन्त्यपरे सिद्धात् युद्धगान्धर्वमद्भुतम्॥ ४०
 बलवान् भासि प्रमथ दर्पितो भासि दानव।
 इति चोच्चारयन् वाचं चारणा रणधूर्गताः॥ ४१
 परिघैराहताः केचिद् दानवैः शङ्करानुगाः।
 वमन्ते रुधिरं वक्त्रैः स्वर्णधातुमिवाचलाः॥ ४२
 प्रमथैरपि नाराचैरसुराः सुरशत्रवः।
 द्वृमैश्च गिरिशृङ्गैश्च गाढमेवाहवे हताः॥ ४३
 सूदितानथ तान् दैत्यानन्ये दानवपुङ्गवाः।
 उत्क्षिप्य चिक्षिपुर्वाप्यां मयदानवचोदिताः॥ ४४
 ते चापि भास्वरैर्देहैः स्वर्गलोक इवामराः।
 उत्तस्थुर्वापीमासाद्य सद्गूपाभरणाम्बराः॥ ४५
 अथैके दानवाः प्राप्य वापीप्रक्षेपणादसून्।
 आस्फोट्य सिंहनादं च कृत्वाधावंस्तथासुराः॥ ४६
 दानवाः प्रमथानेतान् प्रसर्पत किमासथ।
 हतानपि हि वो वापी पुनरुज्जीवयिष्यति॥ ४७
 एवं श्रुत्वा शङ्कुकर्णो वचोऽग्रग्रहसंनिभः।
 द्रुतमेवैत्य देवेशमिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८
 सूदिताः सूदिता देव प्रमथैरसुरा हामी।
 उत्तिष्ठन्ति पुनर्भीमाः सस्या इव जलोक्षिताः॥ ४९
 अस्मिन् किल पुरे वापी पूर्णामृतरसाम्भसा।
 निहता निहता यत्र क्षिप्ता जीवन्ति दानवाः॥ ५०
 इति विज्ञापयद् देवं शङ्कुकर्णो महेश्वरम्।
 अभवन् दानवबल उत्पाता वै सुदारुणाः॥ ५१
 तारकाख्यः सुभीमाक्षो दारितास्यो हरिर्यथा।
 अभ्यधावत् संकुद्धो महादेवरथं प्रति॥ ५२
 त्रिपुरे तु महान् घोरो भेरीशङ्कुरवो बभौ।
 दानवा निःसृता दृष्ट्वा देवदेवरथे सुरम्॥ ५३

सहसा भयंकर गर्जना करनेवाले प्रमथगण हर्षपूर्वक गर्जना करने लगते तो इधर सिद्धगण अद्भुत युद्ध-कौशल दिखाते थे। रणभूमिमें आगे चलनेवाले चारण—‘प्रमथ! तुम तो बलवान् मालूम पड़ते हो,’ ‘दानव! तुम गर्वाले दीख रहे हो’—इस प्रकारके वचन बोल रहे थे। दानवोंद्वारा चलाये गये लोहनिर्मित गदाके आघातसे कुछ पार्षदगण मुखसे रक्त उगल रहे थे, जो ऐसे लगते थे, मानो पर्वत सुवर्णधातु उगल रहे हों। उधर प्रमथगण भी रणभूमिमें बाणों, वृक्षों और पर्वत-शिखरोंके प्रहारसे बहुतेरे देवशत्रु असुरोंको पूर्णरूपसे घायल कर उन्हें कालके हवाले कर रहे थे। मयदानवकी आज्ञासे दूसरे दानवश्रेष्ठ उन मरे हुए दानवोंको उठाकर उसी बावलीमें डाल देते थे। उस बावलीमें पड़ते ही वे सभी दानव स्वर्गवासी देवताओंकी तरह तेजस्वी शरीर धारण कर उत्तम आभूषणों और वस्त्रोंसे विभूषित हो बाहर निकल आते थे। तदनन्तर बावलीमें डाल देनेसे जीवित हुए कुछ दानव ताल ठोंककर सिंहनाद करते हुए इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे और कह रहे थे—‘दानवो! इन प्रमथगणोंपर धावा करो। क्यों बैठे हो? (अब तुमलोगोंको कोई भय नहीं है; क्योंकि) मर जानेपर भी तुमलोगोंको यह बावली पुनः जीवित कर देगी’॥ ३७—४७॥

दानवोंको ऐसा कहते सुनकर सूर्यके समान तेजस्वी शङ्कुकर्णने शीघ्र ही देवेश्वर शंकरजीके निकट जाकर इस प्रकार कहा—‘देव! प्रमथगणोंद्वारा बारंबार मारे गये ये भयंकर असुर पुनः उसी प्रकार जी उठते हैं, जैसे जलके सिंचनसे सूखी हुई फसल। निश्चय ही इस पुरमें अमृतरूपी जलसे परिपूर्ण कोई बावली है, जिसमें डाल देनेसे बार-बार मारे गये दानव पुनः जीवित हो जाते हैं।’ इस प्रकार शङ्कुकर्णने भगवान् महेश्वरको सूचित किया। उसी समय दानवोंकी सेनामें अत्यन्त भीषण उत्पात होने लगे। तब परम भयानक नेत्रोंवाले तारकाक्षने अत्यन्त कुपित होकर सिंहकी तरह मुँह फैलाये हुए महादेवजीके रथपर धावा किया। उस समय त्रिपुरमें भेरियों और शङ्कुओंका महान् भीषण निनाद होने लगा। देवाधिदेव शंकरजीके रथपर (शंकर और) ब्रह्माको उपस्थित देखकर दानवगण त्रिपुरसे बाहर निकले।

भूकम्पश्चाभवत्तत्र रथाङ्गो* भूगतोऽभवत्।
दृष्ट्वा क्षोभमगादरुद्रः स्वयम्भूश्च पितामहः ॥ ५४
ताभ्यां देववरिष्ठाभ्यामन्वितः स रथोत्तमः।
अनायतनमासाद्य सीदते गुणवानिव ॥ ५५
थातुक्षये देह इव ग्रीष्मे चाल्पमिवोदकम्।
शैथिल्यं याति स रथः स्लेहो विप्रकृतो यथा ॥ ५६
रथादुत्पत्यात्मभूत्वे सीदन्तं तु रथोत्तमम्।
उज्जहार महाप्राणो रथं त्रैलोक्यरूपिणम् ॥ ५७
तदा शराद् विनिष्ठत्य पीतवासा जनार्दनः।
वृषरूपं महत्कृत्वा रथं जग्राह दुर्धरम् ॥ ५८
स विषाणाभ्यां त्रैलोक्यं रथमेव महारथः।
प्रगृहोद्धृते सज्जं कुलं कुलवहो यथा ॥ ५९
तारकाख्योऽपि दैत्येन्द्रो गिरीन्द्र इव पक्षवान्।
अभ्यद्रवत्तदा देवं ब्रह्माणं हतवांशं सः ॥ ६०
स तारकाख्याभिहतः प्रतोदं न्यस्य कूबरे।
विजञ्चाल मुहुर्ब्रह्मा श्वासं वक्त्रात् समुद्दिरन् ॥ ६१
तत्र दैत्यैर्महानादो दानवैरपि भैरवः।
तारकाख्यस्य पूजार्थं कृतो जलधरोपमः ॥ ६२
रथचरणकरोऽथ महामृथे

वृषभवपुर्वषभेन्द्रपूजितः ।
दितितनयबलं विमर्द्य सर्वं
त्रिपुरपुरं प्रविवेश केशवः ॥ ६३
सजलजलदराजितां समस्तां
कुमुदवरोत्पलफुल्लपङ्कजाङ्घाम्।
सुरगुरुरपिबत् पयोऽमृतं त-
द्रविरिव संचितशार्वं तमोऽन्धम् ॥ ६४
वार्णं पीत्वासुरेन्द्राणां पीतवासा जनार्दनः।
नर्दमानो महाबाहुः प्रविवेश शरं ततः ॥ ६५
ततोऽसुरा भीमगणेश्वरैर्हताः
प्रहारसंवर्धितशोणितापगा: ।
पराङ्मुखा भीममुखैः कृता रणे
यथा नयाभ्युद्यततत्परैर्नैः ॥ ६६

तभी वहाँ ऐसा भयंकर भूकम्प आया, जिससे (शिवजीके) रथका चक्का पृथ्वीमें प्रविष्ट हो गया। यह देखकर भगवान् रुद्र और स्वयम्भू ब्रह्मा क्षुब्ध हो उठे। उन दोनों देवत्रेष्ठोंसे युक्त वह उत्तम रथ कहीं ठहरनेका स्थान न पाकर स्थानरहित गुणी पुरुषकी तरह विपत्तिग्रस्त हो गया। वह रथ वीर्यनाश हो जानेपर शरीर, ग्रीष्म ऋतुमें अल्प जलवाले जलाशय और तिरस्कृत स्नेहकी तरह शिथिलताको प्राप्त हो गया। इस प्रकार जब वह श्रेष्ठरथ नीचे जाने लगा, तब महाबली स्वयम्भू ब्रह्माने उससे कूदकर उस त्रैलोक्यरूपी रथको ऊपर उठा दिया। इतनेमें ही पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दनने बाणसे निकलकर विशाल वृषभका रूप धारण किया और उस दुर्धर रथको उठा लिया। वे महारथी जनार्दन त्रिलोकीरूप उस रथको अपने सींगोंपर उठाकर उसी तरह ढो रहे थे, जैसे कुलपति अपने संगठित कुलका भार वहन करता है। उसी समय पक्षधारी गिरिराजकी तरह विशालकाय दैत्येन्द्र तारकासुरने भी देवेश्वर ब्रह्मापर धावा बोल दिया और उन्हें घायल कर दिया। तब तारकासुरके प्रहारसे घायल हुए ब्रह्मा रथके कूबरपर चाबुक रखकर मुखसे बारंबार लम्बी साँस छोड़ते हुए (क्रोधसे) प्रज्वलित हो उठे ॥ ४८—६१ ॥

वहाँ दैत्य और दानव तारकासुरका सत्कार करनेके लिये मेघकी गर्जनाके समान अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करने लगे। यह देखकर वृषभका शरीर धारण करनेवाले एवं शंकरद्वारा पूजित भगवान् केशव हाथमें सुदर्शन चक्र धारण कर उस महासमरमें दैत्योंकी सारी सेनाओंका मर्दन करते हुए त्रिपुरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ वे उस बावलीपर जा पहुँचे, जो चारों ओरसे बादलोंसे सुशोभित तथा खिली हुई कुमुदिनी, नीलकमल और अन्यान्य कमलोंसे व्यास थी। फिर तो उन देवत्रेष्ठने उसके अमृतरूपी जलको इस प्रकार पी लिया, जैसे सूर्य गत्रिमें संचित हुए घने अन्धकारको पी जाते हैं। इस प्रकार पीताम्बरधारी महाबाहु जनार्दन असुरेन्द्रोंकी बावलीका अमृत पीकर सिंहनाद करते हुए पुनः उसी बाणमें प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात् भयावने मुखवाले भयंकर गणेश्वरोंने असुरोंको मारना प्रारम्भ किया। उनके प्रहारसे घायल हुए दानवोंके रुधिरसे नदियाँ बह चलीं। वे उसी प्रकार युद्धविमुख कर दिये गये, जैसे नयशील पुरुष अन्यायियोंको विमुख कर देते हैं।

* कुछ प्रतियोंके अनुसार यहाँ यदि 'शताङ्ग' पाठ भी हो तो भी विष्णु आदि सैकड़ों अङ्गयुक्त रथ ही अभिग्रेत होगा।

स तारकाख्यस्तडिमालिरेव च
मयेन सार्थं प्रमथैरभिद्गुताः।
पुरं परावृत्य नु ते शरादिता
यथा शरीरं पवनोदये गताः॥ ६७
गणेश्वराभ्युद्यतदर्पकाशिनो
महेन्द्रनन्दीश्वरषणमुखा युधि।
विनेदुरुच्चैर्जहसुश्च दुर्मदा
जयेम चन्द्रादिदिगीश्वरैः सह॥ ६८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे षट्ट्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाहप्रसङ्गमें एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३६॥

इस प्रकार प्रमथगणोंद्वारा खदेड़े गये एवं बाणोंके प्रहरसे घायल मयके साथ तारकासुर और विद्युन्माली त्रिपुरमें ऐसे लौट आये, मानो उनके शरीरसे प्राण ही निकल गये हों। उस समय युद्धस्थलमें महेन्द्र, नन्दीश्वर और स्वामिकार्तिक गणेश्वरोंके साथ दर्पसे सुशोभित हो रहे थे। वे उन्मत्त होकर सिंहनाद एवं अदृहास करते हुए कहने लगे कि अब चन्द्रमा आदि दिक्षपालोंसहित हमलोग अवश्य विजयी होंगे॥ ६२—६८॥

एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय

वापी-शोषणसे मयको चिन्ता, मय आदि दानवोंका त्रिपुरसहित समुद्रमें प्रवेश तथा शंकरजीका इन्द्रको युद्ध करनेका आदेश

सूत उवाच

प्रमथैः समरे भिन्नास्त्रैपुरास्ते सुरारयः।
पुरं प्रविविशुर्भीताः प्रमथैर्भग्नोपुरम्॥ १
शीर्णदंष्ट्रा यथा नागा भग्नशृङ्गा यथा वृषाः।
यथा विपक्षाः शकुना नद्यः क्षीणोदका यथा॥ २
मृतप्रायास्तथा दैत्या दैवतैर्विकृताननाः।
बभूवुस्ते विमनसः कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥ ३
अथ तान् म्लानमनसस्तदा तामरसाननः।
उवाच दैत्यो दैत्यानां परमाधिपतिर्मयः॥ ४
कृत्वा युद्धानि घोराणि प्रमथैः सह सामरैः।
तोषयित्वा तथा युद्धे प्रमथानमरैः सह॥ ५
यूयं यत् प्रथमं दैत्याः पश्चाच्च बलपीडिताः।
प्रविष्टा नगरं त्रासात् प्रमथैर्भृशमर्दिताः॥ ६
अप्रियं क्रियते व्यक्तं देवैर्नास्त्यत्र संशयः।
यत्र नाम महाभागाः प्रविशन्ति गिरेर्वनम्॥ ७
अहो हि कालस्य बलमहो कालो हि दुर्जयः।
यत्रेदृशस्य दुर्गस्य उपरोधोऽयमागतः॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार समरभूमिमें प्रमथगणोंद्वारा घायल किये गये त्रिपुरवासी देवशत्रु दानव भयभीत होकर त्रिपुरमें लौट गये। उस समय प्रमथोंने त्रिपुरके फाटकको भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। जैसे नष्ट हुए दाँतोंवाले सर्प, टूटे हुए सींगोंवाले साँड़, डैनेरहित पक्षी और क्षीण जलवाली नदियाँ शोभाहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार देवताओंके प्रहारसे दैत्यवृन्द मृतप्राय हो गये थे। उनके मुख विकृत हो गये थे और वे खिन्न मनसे कह रहे थे कि अब क्या किया जाय? तब कमल-सदृश मुखवाले दैत्योंके चक्रवर्ती सम्प्राद् मय दैत्यने उन मलिन मनवाले दैत्योंसे कहा—‘दैत्यो! इसमें सन्देह नहीं है कि तुमलोगोंने पहले युद्धभूमिमें देवताओंसहित प्रमथगणोंके साथ भयंकर युद्ध करके उन्हें संतुष्ट किया है, किंतु पीछे तुमलोग देवसेनासे पीड़ित और प्रमथोंके प्रहारसे अत्यन्त घायल होकर भयवश नगरमें भाग आये हो। निससंदेह देवगण प्रकटरूपमें हमलोगोंका अप्रिय कर रहे हैं, इसी कारण ये महान् भाग्यशाली दैत्य इस समय भागकर पर्वतीय वनोंमें छिप रहे हैं। अहो! कालका बल महान् है! अहो! यह काल किसी प्रकार जीता नहीं जा सकता। कालके ही प्रभावसे त्रिपुर-जैसे दुर्गपर यह अवरोध उत्पन्न हो गया है।’

मये विवदमाने तु नर्दमान इवाम्बुदे।
बभूवुर्निष्ठ्रभा दैत्या ग्रहा इन्दूदये यथा॥ ९

वापीपालास्ततोऽभ्येत्य नभः काल इवाम्बुदाः।
मयमाहुर्यमप्रख्यं साञ्जलिप्रग्रहाः स्थिताः॥ १०

या सामृतरसा गूढा वापी वै निर्मिता त्वया।
समाकुलोत्पलवना समीनाकुलपङ्कजा॥ ११

पीता सा वृषरूपेण केनचिद् दैत्यनायक।
वापी सा साम्प्रतं दृष्ट्वा मृतसंज्ञा इवाङ्ग्नना॥ १२

वापीपालवचः श्रुत्वा मयोऽसौ दानवप्रभुः।
कष्टमित्यसकृत् प्रोच्य दितिजानिदमब्रवीत्॥ १३

मया मायाबलकृता वापी पीता त्वियं यदि।
विनष्टाः स्म न संदेहस्त्रिपुरं दानवा गतम्॥ १४

निहतान् निहतान् दैत्यानाजीवयति दैवतैः।
पीता वा यदि वा वापी पीता वै पीतवाससा॥ १५

कोऽन्यो मन्मायया गुसां वापीममृततोयिनीम्।
पास्यते विष्णुमजितं वर्जयित्वा गदाधरम्॥ १६

सुगुह्यमपि दैत्यानां नास्त्यस्याविदितं भुवि।
यत्र मद्वरकौशल्यं विज्ञानं न वृतं बुधैः॥ १७

समोऽयं रुचिरो देशो निर्द्विमो निर्द्विमाचलः।
नवाम्भः पूरितं कृत्वा बाधन्तेऽस्मान् मरुदण्डाः॥ १८

ते यूयं यदि मन्यध्वं सागरोपरि धिष्ठिताः।
प्रमथानां महावेगं सहामः श्वसनोपमम्॥ १९

एतेषां च समारम्भास्तस्मिन् सागरसम्प्लवे।
निरुत्साहा भविष्यन्ति एतद्रथपथावृताः॥ २०

युध्यतां निघतां शत्रून् भीतानां च द्रविष्यताम्।
सागरोऽम्बरसङ्काशः शरणं नो भविष्यति॥ २१

इत्युक्त्वा स मयो दैत्यो दैत्यानामधिपस्तदा।
त्रिपुरेण यथौ तूर्णं सागरं सिन्धुबान्धवम्॥ २२

मेघकी भाँति कड़कते हुए मयके इस प्रकार विषाद करनेपर सभी दैत्य उसी प्रकार निस्तेज हो गये, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर अन्य ग्रह मलिन हो जाते हैं॥ १—९॥

इसी समय वर्षाकालीन मेघकी तरह शरीरधारी बावलीके रक्षक दैत्य यमराज-सदृश भयंकर मयके निकट आकर हाथ जोड़कर (अभिवादन करके) खड़े हो गये और इस प्रकार बोले—‘दैत्यनायक! आपने अमृतरूपी जलसे भरी हुई जिस गुप बावलीका निर्माण किया था, जो नील कमल-वनसे व्यास थी तथा जिसमें मछलियाँ और विभिन्न प्रकारके भी कमल भे हुए थे, उसे वृषभरूपधारी किसी देवताने पी लिया। इस समय वह बावली मूर्च्छित हुई सुन्दरी स्त्रीकी भाँति दीख रही है।’ बावलीके रक्षकोंकी बात सुनकर दानवराज मय ‘कष्ट है’—ऐसा कई बार कहकर दैत्योंसे इस प्रकार बोला—‘दानवो! मेरे द्वारा मायाके बलसे रची हुई बावलीको यदि किसीने पी लिया तो निश्चय समझो कि हमलोग नष्ट हो गये और त्रिपुरको भी गया हुआ ही समझो। हाय! जो देवताओंद्वारा बार-बार मारे गये दैत्योंको जीवन-दान देती थी, वह बावली पी ली गयी। यदि वह सचमुच पी ली गयी तो (निश्चय ही) उसे पीताम्बरधारी विष्णुने ही पीया होगा। भला, गदाधारी अजेय विष्णुको छोड़कर दूसरा कौन ऐसा समर्थ है, जो मेरी मायाद्वारा गुप एवं अमृतरूपी जलसे भरी हुई बावलीको पी सकेगा? भूतलपर दैत्योंकी गुप-से-गुप बात विष्णुसे अज्ञात नहीं है। मेरी वरप्राप्तिकी कुशलता, जिसे विद्वान् लोग नहीं जान सके, विष्णुसे छिपी नहीं है। हमारा यह देश सुन्दर और समतल है। यह वृक्ष और पर्वतसे रहित है। फिर भी मरुदण्ड इसे नूतन जलसे परिपूर्ण करके हमलोगोंको बाधा पहुँचा रहे हैं। इसलिये यदि तुमलोगोंको स्वीकार हो तो हमलोग सागरके ऊपर स्थित हो जायँ और वहींसे प्रमथोंके वायुके समान महान् वेगको सहन करें। सागरकी उस बाढ़में इनका सारा उद्योग उत्साहीन हो जायगा और उस विशाल रथका मार्ग रुक जायगा। इसलिये युद्ध करते समय, शत्रुओंको मारते समय और भयभीत होकर भागते समय हमलोगोंके लिये यह सागर आकाशकी भाँति शरणदाता हो जायगा।’ ऐसा कहकर दैत्यराज मयदानव तुरंत त्रिपुरसहित नदियोंके बन्धुस्वरूप सागरकी ओर प्रस्थित हुआ। फिर

सागरे जलगम्भीर उत्पात पुरं वरम्।
 अवतस्थुः पुराणयेव गोपुराभरणानि च॥ २३
 अपक्रान्ते तु त्रिपुरे त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः।
 पितामहमुवाचेदं वेदवादविशारदम्॥ २४
 पितामह दृढं भीता भगवन् दानवा हि नः।
 विपुलं सागरं ते तु दानवाः समुपाश्रिताः॥ २५
 यत एव हि ते यातास्त्रिपुरेण तु दानवाः।
 तत एव रथं तूर्णं प्राप्यस्व पितामह॥ २६
 सिंहनादं ततः कृत्वा देवा देवरथं च तम्।
 परिवार्य ययुर्हष्टाः सायुधाः पश्चिमोदधिम्॥ २७
 ततोऽमरामरगुरुं परिवार्य भवं हरम्।
 नर्दयन्तो ययुस्तूर्णं सागरं दानवालयम्॥ २८
 अथ चारुपताकभूषितं
 पटहाडम्बरशङ्खनादितम् ।

त्रिपुरमभिसमीक्ष्य देवता
 विविधबला ननदुर्यथा घनाः॥ २९
 असुरवरपुरेऽपि दारुणो
 जलधररावमृदङ्गगङ्गरः ।

दनुतनयनिनादमिश्रितः:

अथ प्रतिनिधिः संक्षुभितार्णवोपमः॥ ३०
 भुवनपतिर्गतिः सुराणा-
 मरिमृगयामददात् सुलब्धबुद्धिः।
 त्रिदशगणपतिं ह्युवाच शक्रं
 त्रिपुरगतं सहसा निरीक्ष्य शत्रुम्॥ ३१
 त्रिदशगणपते निशामयैतत्
 त्रिपुरनिकेतनं दानवाः प्रविष्टाः।

यमवरुणकुबेरघणमुखैस्तत्
 सह गणपैरपि हन्मि तावदेव॥ ३२

विहितपरबलाभिधातभूतं
 व्रज जलधेस्तु यतः पुराणि तस्थुः।
 स रथवरगतो भवः समर्थो

ह्युदधिमगात् त्रिपुरं पुनर्निहन्तुम्॥ ३३
 इति परिगणयन्तो दितेः सुता

ह्यावतस्थुर्लवणार्णवोपरिष्ठात् ।
 अभिभवत् त्रिपुरं सदानवेन्द्रं

शरवर्षंर्मुसलैश्च वप्रमिश्रैः॥ ३४

तो वह श्रेष्ठ त्रिपुर नामक नगर अगाध जलवाले सागरके ऊपर मँडराने लगा। उसके फाटक और आभूषणादि-सहित तीनों पुर यथास्थान स्थित हो गये॥ १०—२३॥

इस प्रकार त्रिपुरके दूर हट जानेपर त्रिपुरारि भगवान् शंकरने वेदवादमें निपुण ब्रह्मासे इस प्रकार कहा—‘ऐश्वर्यशाली पितामह! दानवगण हमलोगोंसे भलीभाँति डर गये हैं, इसलिये वे भागकर विशाल सागरकी शरणमें चले गये। पितामह! त्रिपुरसहित वे दानव जिस मार्गसे गये हैं, उसी मार्गसे आप शीघ्र ही मेरे रथको वहाँ पहुँचाइये।’ तब आयुधधारी देवगण हर्षपूर्वक सिंहनाद करके और उस देवरथको चारों ओरसे धेरकर पश्चिम सागरकी ओर चल पड़े। तत्पश्चात् देवगण देवश्रेष्ठ भगवान् शंकरको चारों ओरसे धेरकर सिंहनाद करते हुए शीघ्र ही दानवोंके निवासस्थान सागरकी ओर प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचनेपर सुन्दर पताकाओंसे विभूषित तथा ढोल, नगरे और शङ्खके शब्दोंसे निनादित त्रिपुरको देखकर अनेकों सेनाओंसे सम्पन्न देवगण बादलोंकी तरह गर्जना करने लगे। उधर असुरश्रेष्ठ मयके पुरमें भी दानवोंके सिंहनादके साथ-साथ मेघ-गर्जनाके सदृश मृदंगोंका भयंकर एवं गम्भीर शब्द हो रहा था, जो क्षुब्ध हुए महासागरकी गर्जनाके समान प्रतीत हो रहा था। तदनन्तर देवताओंके आश्रयस्थान प्रत्युत्पन्नमति त्रिभुवनपति शंकर शत्रुओंका शिकार करनेके लिये उद्यत हो गये। तब उन्होंने सहसा शत्रुओंको त्रिपुरमें प्रवेश करते देखकर देवताओं और गणोंके सेनानायक इन्द्रसे इस प्रकार कहा—‘देवताओं और गणेश्वरोंके नायक इन्द्र! आपलोग मेरी यह बात सुनें। दानवलोग अपने निवासस्थान त्रिपुरमें घुस गये हैं, अतः आप यम, वरुण, कुबेर, कार्तिकेय तथा गणेश्वरोंको साथ लेकर इनका संहार करें। तबतक मैं भी इन्हें मार रहा हूँ। आप शत्रुसेनापर प्रहार करते हुए समुद्रके उस स्थानतक बढ़ते चलें, जहाँ तीनों पुर स्थित हैं। यह देखकर जब उन दैत्योंको यह विदित हो जायगा कि सामर्थ्यशाली शंकर उस श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो पुनः त्रिपुरका विनाश करनेके लिये समुद्रतटपर आ गये हैं, तब वे लवणसागरके ऊपर निकल आयेंगे। तब आप वज्रसहित मुसलों एवं बाणोंकी वर्षा करते हुए दानवेन्द्रोंसहित त्रिपुरपर आक्रमण कर दें।

अहमपि रथवर्यमास्थितः
सुरवरवर्य भवेय पृष्ठतः ।
असुरवरवधार्थमुद्यतानां
प्रतिविदधामि सुखाय तेऽनघ ॥ ३५
इति भववचनप्रचोदितो
दशशतनयनवपुः समुद्यतः ।
त्रिपुरपुरजिधांसया हरिः
प्रविकसिताम्बुजलोचनो ययौ ॥ ३६

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुराक्रमणं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें त्रिपुराक्रमण नामक एक सौ सेंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३७ ॥

सुरश्रेष्ठ ! उस समय में भी इस श्रेष्ठ रथपर बैठा हुआ असुरेन्द्रोंका वध करनेके लिये उद्यत आपलोगोंके पीछे रहूँगा । अनघ ! मैं सर्वथा आपलोगोंके सुखका विधान करता रहूँगा ।' इस प्रकार शंकरजीके वचनोंसे प्रेरित होकर एक हजार नेत्रोंवाले इन्द्र, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके सदृश सुन्दर थे, त्रिपुरके विनाशकी इच्छासे उद्यत होकर आगे बढ़े ॥ २४—३६ ॥

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय

देवताओं और दानवोंमें घमासान युद्ध तथा तारकासुरका वध

सूत उवाच

मघवा तु निहन्तुं तानसुरानमरेश्वरः ।
लोकपाला ययुः सर्वे गणपालाश्च सर्वशः ॥ १
ईश्वरेणोर्जिताः सर्वे उत्पेतुश्चाम्बरे तदा ।
खगतास्तु विरेजुस्ते पक्षवन्त इवाचलाः ॥ २
प्रययुस्तत्पुरं हन्तुं शरीरमिव व्याधयः ।
शङ्खाडम्बरनिर्घोषैः पणवान् पटहानपि ।
नादयन्तः पुरो देवा दृष्टिक्षिपुरवासिभिः ॥ ३
हरः प्राप्त इतीबोक्त्वा बलिनस्ते महासुराः ।
आजग्मुः परमं क्षोभमत्ययेष्विव सागराः ॥ ४
सुरतूर्यरवं श्रुत्वा दानवा भीमदर्शनाः ।
निनेदुर्वादयन्तश्च नानावाद्यान्यनेकशः ॥ ५
भूयोदीरितवीर्यास्ते परस्परकृतागसः ।
पूर्वदेवाश्च देवाश्च सूदयन्तः परस्परम् ॥ ६
आक्रोशेऽपि समप्रख्ये तेषां देहनिकृत्तनम् ।
प्रवृत्तं युद्धमतुलं प्रहारकृतनिःस्वनम् ॥ ७
निष्ठतन्त इवादित्याः प्रज्वलन्त इवाग्नयः ।
शंसन्त इव नागेन्द्रा भ्रमन्त इव पक्षिणः ।
गिरीन्द्रा इव कम्पन्तो गर्जन्त इव तोयदाः ॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! शंकरजीद्वारा उत्साहित किये जानेपर देवराज इन्द्र, सभी लोकपाल और गणपाल सब ओरसे उन असुरोंका वध करनेके लिये चले और आकाशकी ओर उछल पड़े । आकाशमें पहुँचकर वे पंखधारी पर्वतकी तरह शोभा पाने लगे । तत्पश्चात् वे शङ्ख और डंकेके निर्घोषके साथ-साथ ढोलों और नगाड़ोंको पीटते हुए त्रिपुरका विनाश करनेके लिये उसी प्रकार आगे बढ़े, जैसे व्याधियाँ शरीरको नष्ट कर देती हैं । इतनेमें त्रिपुरवासी दानवोंने देवगणोंको आगे बढ़ते हुए देख लिया । फिर तो वे महाबली असुर 'शंकर (यहाँ भी) आ गये'—ऐसा कहकर प्रलयकालीन सागरोंकी तरह परम क्षुब्ध हो उठे । तब भयंकर रूपधारी दानव देवताओंकी तुरहियोंका शब्द सुनकर नाना प्रकारके बाजे बजाते हुए बारंबार उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे । तत्पश्चात् पुनः पराक्रम प्रकट करनेवाले वे दानव और देव परस्पर कुद्ध होकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे । दोनों सेनाओंमें समानरूपसे सिंहनाद हो रहे थे । उनके शरीर कट-कटकर गिर रहे थे । फिर तो प्रहार करनेवालोंकी गर्जनाके साथ-साथ अनुपम युद्ध छिड़ गया । उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो अनेकों सूर्य गिर रहे हैं, अग्नियाँ प्रज्वलित हो उठी हैं, विषधर सर्प फुफकार मार रहे हैं, पक्षी आकाशमें चक्कर काट रहे हैं, पर्वत काँप रहे हैं, बादल

जृम्भन्त इव शार्दूलाः प्रवान्त इव वायवः ।
 प्रवृद्धोर्मितरङ्गौधाः क्षुभ्यन्त इव सागराः ॥ ९
 प्रमथाश्च महाशूरा दानवाश्च महाबलाः ।
 युयुधुर्निश्चला भूत्वा वज्रा इव महाचलैः ॥ १०
 कार्मुकाणां विकृष्टानां बभूवुर्दारुणा रवाः ।
 कालानुगानां मेघानां यथा वियति वायुना ॥ ११
 आहुश्च युद्धे मा भैषीः क्व यास्यसि मृतो ह्यसि ।
 प्रहराशु स्थितोऽस्म्यत्र एहि दर्शय पौरुषम् ॥ १२
 गृहाण छिन्थि भिन्थीति खाद मारय दारय ।
 इत्यन्योऽन्यमनूच्चार्य प्रययुर्यमसादनम् ॥ १३
 खड्डापवर्जिताः केचित् केचिच्छिन्ना परश्वधैः ।
 केचिन्मुदगरचूर्णाश्च केचिद् बाहुभिराहताः ॥ १४
 पट्टिशैः सूदिताः केचित् केचिच्छूलविदारिताः ।
 दानवाः शरपुष्याभाः सवना इव पर्वताः ।
 निपतन्त्यर्णवजले भीमनक्रतिमिङ्ग्निले ॥ १५
 व्यसुभिः सुनिबद्धाङ्गैः पतमानैः सुरेतरैः ।
 सम्बभूवार्णवे शब्दः सजलाम्बुदनिःस्वनः ॥ १६
 तेन शब्देन मकरा नक्रास्तिमितिमिङ्ग्निलाः ।
 मत्ता लोहितगन्धेन क्षोभयन्तो महार्णवम् ॥ १७
 परस्परेण कलहं कुर्वाणा भीममूर्तयः ।
 भ्रमन्ते भक्षयन्तश्च दानवानां च लोहितम् ॥ १८
 सरथान् सायुधान् साश्वान् सवस्त्राभरणावृतान् ।
 जग्रसुस्तिमयो दैत्यान् द्रावयन्तो जलेचरान् ॥ १९
 मृधं यथासुराणां च प्रमथानां प्रवर्तते ।
 अम्बरेऽम्भसि च तथा युद्धं चकुर्जलेचराः ॥ २०
 यथा भ्रमन्ति प्रमथाः सदैत्या-
 स्तथा भ्रमन्ते तिमयः सनक्राः ।
 यथैव छिन्दन्ति परस्परं तु
 तथैव क्रन्दन्ति विभिन्नदेहाः ॥ २१

गरज रहे हैं, सिंह जमुहाई ले रहे हैं, भयानक झङ्घावात चल रहा है और उछलती हुई लहरोंके समूहसे सागर क्षुब्ध हो उठा है। इस प्रकार महान् शूरवीर प्रमथ और महाबली दानव उसी प्रकार डटकर युद्ध कर रहे थे, जैसे महान् पर्वतोंसे टकरानेपर भी वज्र अटल रहता है ॥ १—१० ॥

जैसे आकाशमें वायुद्वारा प्रेरित किये जानेपर प्रलयकालीन मेघोंकी गर्जना होती है, उसी तरह खींचे जाते हुए धनुषोंके भीषण शब्द हो रहे थे। युद्धभूमिमें दोनों ओरके बीर परस्पर ‘मत डरो, कहाँ भागकर जाओगे, अब तो तुम मरे ही हो, शीघ्र प्रहार करो, मैं यहाँ खड़ा हूँ, आओ और अपना पुरुषार्थ दिखाओ, पकड़ लो, काट डालो, विदीर्ण कर दो, खा लो, मार डालो, फाड़ डालो’—ऐसा शब्द बोल रहे थे और पुनः शान्त होकर यमलोकके पथिक बन जाते थे। उनमेंसे कुछ बीर तलवारसे काट डाले गये थे, कुछ फरसोंसे छिन्न-भिन्न कर दिये गये थे, कुछ हाथके चपेटोंसे घायल कर दिये गये, कुछ पट्टिशों (पटों)-के प्रहारसे मार डाले गये और कुछ शूलोंसे विदीर्ण कर दिये गये। सरपतके फूलकी-सी कान्तिवाले दानव बनसहित पर्वतोंकी तरह भयंकर नाक और तिमिंगिलोंसे भरे हुए समुद्रके जलमें गिर रहे थे। दानवोंके कवच आदिसे भलीभाँति बँधे हुए प्राणरहित शरीरोंके समुद्रमें गिरनेसे सजल जलधरकी गर्जनाके समान शब्द हो रहा था। उस शब्दसे तथा दानवोंके रुधिरकी गन्धसे मतवाले हुए मगर, नाक, तिमि और तिमिंगिल आदि जनु महासागरको क्षुब्ध कर रहे थे। वे भयंकर आकारवाले जलजन्तु परस्पर झगड़ते हुए दानवोंका रुधिर पान कर चक्कर काट रहे थे। यूथ-के-यूथ मगरमच्छ अन्य जल-जन्तुओंको खदेड़कर रथ, आयुध, अश्व, वस्त्र और आभूषणोंसहित दैत्योंको निगल जाते थे। जिस प्रकार आकाशमें दानवों और प्रमथोंका युद्ध चल रहा था, उसी तरह समुद्रमें जल-जन्तु (शवोंको खानेके लिये) परस्पर लड़ रहे थे ॥ ११—२० ॥

उस समय जैसे आकाशमें प्रमथगण दैत्योंके साथ युद्ध करते हुए चक्कर काट रहे थे, वैसे ही जलमें मगरमच्छ नाकोंके साथ झगड़ते हुए धूम रहे थे। जैसे देवता और दानव परस्पर एक-दूसरेके शरीरको काट रहे थे, वैसे ही मगरमच्छ और नाक भी एक-दूसरेके शरीरको

व्रणाननैरङ्गरसं	स्वद्विः	
सुरासुरैर्नक्तिमिङ्गलैश्च		।
कृतो मुहूर्तेन समुद्रीदेशः		
सरक्ततोयः समुदीर्णतोयः ॥ २२		
पूर्वं महाभोधरपर्वताभ्यं		
द्वारं महान्तं त्रिपुरस्य शक्रः ।		
निपीड्य तस्थौ महता बलेन		
युक्तोऽमराणां महता बलेन ॥ २३		
तथोत्तरं सोऽन्तरजो हरस्य		
बालार्कजाम्बूनदतुल्यवर्णः ।		
स्कन्दः पुरद्वारमथारुरोह		
वृद्धोऽस्तशृङ्गं प्रपतन्निवार्कः ॥ २४		
यमश्च विज्ञाधिपतिश्च देवो		
दण्डान्वितः पाशवरायुधश्च ।		
देवारिणस्तस्य पुरस्य द्वारं		
ताभ्यां तु तत्पश्चिमतो निरुद्धम् ॥ २५		
दक्षारिरुद्रस्तपनायुताभः		
स भास्वता देवरथेन देवः ।		
तददक्षिणद्वारमरे: पुरस्य		
रुद्धवावतस्थो भगवांस्त्रिनेत्रः ॥ २६		
तुङ्गानि वेशमानि सगोपुराणि		
स्वर्णानि कैलासशशिप्रभाणि ।		
प्रहादरूपाः प्रमथावरुद्धा		
ज्योतींषि मेघा इव चाश्मवर्षाः ॥ २७		
उत्पाट्य चोत्पाट्य गृहाणि तेषां		
सशैलमालासमवेदिकानि ।		
प्रक्षिप्य प्रक्षिप्य समुद्रमध्ये		
कालाम्बुदाभाः प्रमथा विनेदुः ॥ २८		
चाशेषवनैर्युतानि		
साशोकखण्डानि सकोकिलानि ।		
गृहाणि हे नाथ पितः सुतेति		
भ्रातेति कान्तेति प्रियेति चापि ।		
उत्पाट्यमानेषु गृहेषु नार्य-		
स्त्वनार्यशब्दान् विविधान् प्रचकुः ॥ २९		

विदीर्ण कर चीत्कार कर रहे थे। देवताओं, असुरों, नाकों और तिमिंगिलोंके घावों और मुखोंसे बहते हुए रुधिरसे समुद्रके उस प्रदेशका जल मुहूर्तमात्रके लिये रक्तयुक्त हो गया और वहाँ बाढ़ आ गयी। उस त्रिपुरका पूर्वद्वार अत्यन्त विशाल और काले मेघ तथा पर्वतके समान कान्तिमान् था। महान् बलशाली इन्द्र देवताओंकी विशाल सेनाके साथ उस द्वारको अवरुद्ध कर खड़े थे। उसी प्रकार उदयकालीन सूर्य और सुवर्णके तुल्य रंगवाले शंकरजीके आत्मज स्कन्द त्रिपुरके उत्तरद्वारपर ऐसे चढ़े हुए थे मानो बढ़े हुए सूर्य अस्ताचलके शिखरोंपर चढ़ रहे हों। दण्डधारी यमराज और अपने श्रेष्ठ अख्त पाशको धारण किये हुए कुबेर—ये दोनों देवता उस देवशत्रु मयके पुरके पश्चिमद्वारपर घेरा डाले हुए थे। दस हजार सूर्योंकी-सी आभावाले दक्षके शत्रु त्रिनेत्रधारी भगवान् रुद्रदेव उस उद्दीप देवरथपर आरूढ़ होकर शत्रु-नगरके दक्षिणद्वारको रोककर स्थित थे। उस त्रिपुरके फाटकोंसहित स्वर्णनिर्मित ऊँचे-ऊँचे महलोंको, जो कैलास और चन्द्रमाके सदृश चमक रहे थे, प्रसन्न मुखवाले प्रमथोंने उसी प्रकार अवरुद्ध कर रखा था, जैसे उपलोंकी वर्षा करनेवाले मेघ ज्योतिर्गणोंको घेर लेते हैं। काले मेघकी-सी कान्तिवाले प्रमथगण दानवोंके पर्वतमालाके सदृश ऊँची-ऊँची वेदिकाओंसे युक्त गृहोंको, जो लाल वर्णवाले तथा अशोक-वृक्षों एवं अन्यान्य वनोंसे युक्त थे और जिनमें कोयलें कूक रही थीं, उखाड़-उखाड़कर लगातार समुद्रमें फेंक रहे थे और उच्च स्वरसे गर्जना कर रहे थे। गृहोंको उखाड़ते समय उनमें रहनेवाली लियाँ—‘हे नाथ! हा पिता! अरे पुत्र! हाय भाई! हाय कान्त! हे प्रियतम!’ आदि अनेक प्रकारके अनार्योचित शब्द बोल रही थीं।

कलत्रपुत्रक्षयप्राणनाशे ।
 तस्मिन् पुरे युद्धमतिप्रवृत्ते ।
 महासुरा: सागरतुल्यवेगा
 गणेश्वरा: कोपवृताः प्रतीयुः ॥ ३०
 परश्वधैस्तत्र शिलोपलैश्च
 त्रिशूलवज्रोत्तमकम्पनैश्च ।
 शारीरसद्यक्षपणं सुधोरं
 युद्धं प्रवृत्तं दृढवैरबद्धम् ॥ ३१
 अन्योऽन्यमुद्दिश्य विमर्दतां च
 प्रधावतां चैव विनिघ्नतां च ।
 शब्दो बभूवामरदानवानां
 युगान्तकालेष्विव सागराणाम् ॥ ३२
 ब्रैंजस्त्रं क्षतजं वमन्तः
 कोपोपरक्ता बहुधा नदन्तः ।
 गणेश्वरास्तेऽसुरपुद्धवाश्च
 युध्यन्ति शब्दं च महदुद्दिरन्तः ॥ ३३
 मार्गाः पुरे लोहितकर्दमाक्ताः
 स्वर्णेष्टकास्फाटिकभिन्नचित्राः ।
 कृता मुहूर्तेन सुखेन गन्तुं
 छिन्नोत्तमाङ्गाङ्गिकराः करालाः ॥ ३४
 कोपावृताक्षः स तु तारकाख्यः
 संख्ये सवृक्षः सगिरिनिलीनः ।
 तस्मिन् क्षणे द्वारवरं रिरक्षो
 रुद्रं भवेनाद्धुतविक्रमेण ॥ ३५
 स तत्र प्राकारगतांश्च भूतान्-
 शान्तान् महानद्धुतवीर्यसत्त्वः ।
 चचार चासेन्द्रियगर्वदूसः
 पुराद् विनिष्कम्य रासम घोरम् ॥ ३६
 ततः स दैत्योत्तमपर्वताभो
 यथाञ्जसा नाग इवाभिमन्तः ।
 निवारितो रुद्ररथं जिघृक्षु-
 र्यथार्णवः सर्पति चातिवेलः ॥ ३७
 शेषः सुधन्वा गिरिशश्च देव-
 श्रतुर्मुखो यः स त्रिलोचनश्च ।
 ते तारकाख्याभिगतागताजौ
 क्षोभं यथा वायुवशात् समुद्राः ॥ ३८

इस प्रकार जब उस पुरमें खी, पुत्र तथा प्राणका विनाश करनेवाला अत्यन्त भीषण युद्ध होने लगा, तब सागरतुल्यवेगशाली महान् असुर और गणेश्वर क्रोधसे भर गये। फिर तो कुठार, शिलाखण्ड, त्रिशूल, श्रेष्ठ वज्र और कम्पन* (एक प्रकारका शस्त्र) आदिके प्रहारसे शरीर और गृहको विनष्ट करनेवाला अत्यन्त घोर युद्ध आरम्भ हो गया; क्योंकि दोनों सेनाओंमें सुदृढ़ वैर बँधा हुआ था। परस्पर एक-दूसरेको लक्ष्य करके मर्दन, आक्रमण और प्रहार करनेवाले देवताओं और दानवोंका प्रलयकालमें सागरोंकी गर्जनाकी भाँति भीषण शब्द होने लगा ॥ २१—३२॥

उस समय वे गणेश्वर और असुरश्रेष्ठ घावोंसे निरन्तर रक्तकी धारा बहाते हुए बारंबार गरजते हुए और भयंकर शब्द बोलते हुए युद्ध कर रहे थे। उस पुरमें स्वर्ण और स्फटिक मणिकी ईंटोंसे बने हुए जो चित्र-विचित्र मार्ग थे, वे दो ही घड़ीमें रुधिरयुक्त कीचड़से भर दिये गये। जो सुखपूर्वक चलनेवोग्य थे, वे कटे हुए मस्तकों, पादों और पैरोंसे व्यास हो जानेके कारण दुर्गम हो गये। तब तारकासुर क्रोधसे आँखें तेररता हुआ वृक्ष और पर्वत हाथमें लेकर युद्धस्थलमें आ पहुँचा। वह उस समय अद्भुत पराक्रमी शंकरद्वारा अवरुद्ध किये गये दक्षिणद्वारकी रक्षा करना चाहता था। महान् पराक्रमी एवं अद्भुत सत्त्वशाली तारकासुर अपनी इन्द्रियोंके गर्वसे उन्मत्त होकर परकोटोंपर चढ़े हुए भूतगणोंको काटकर वहाँ विचरण करने लगा। पुनः नगरसे बाहर निकलकर उसने घोर गर्जना की। पर्वतकी-सी आभावाला दैत्येन्द्र तारक मतवाले हाथीकी तरह शीघ्र ही शंकरजीके रथको पकड़ लेना चाहता था, परंतु प्रमथोंद्वारा इस प्रकार रोक दिया गया, जैसे बढ़ते हुए समुद्रको उसका तट रोक देता है। उस समय शेषनाग, ब्रह्मा तथा सुन्दर धनुष धारण करनेवाले और पर्वतपर शयन करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर युद्धस्थलमें तारकासुरके आ जानेसे उसी प्रकार क्षुब्ध हो गये, जैसे वायुके वेगसे सागर उद्भेदित हो उठते हैं।

* यह एक शस्त्र है। इसका वर्णन महाभारत १। ६९। २३ में है।

शेषो गिरीशः सपितामहेश-
श्रोत्कुभ्यमाणः स रथेऽम्बरस्थः ।

बिभेद संधीषु बलाभिपन्नः
कूजन्निनादांश्च करोति घोरान् ॥ ३९

एकं तु ऋग्वेदतुङ्गमस्य
पृष्ठे पदं न्यस्य वृषस्य चैकम् ।

तस्थौ भवः सोद्यतबाणचापः
पुरस्य तत्सङ्गममीक्षमाणः ॥ ४०

तदा भवपदन्यासाद्वयस्य वृषभस्य च ।
पेतुः स्तनाश्च दन्ताश्च पीडिताभ्यां त्रिशूलिना ॥ ४१

ततःप्रभृति चाश्वानां स्तना दन्ता गवां तथा ।

गूढाः समभवंस्तेन चादृश्यत्वमुपागताः ॥ ४२

तारकाख्यस्तु भीमाक्षो रौद्ररक्तान्तरेक्षणीः ।

रुद्रान्तिके सुसंरुद्धो नन्दिना कुलनन्दिना ॥ ४३

परश्वधेन तीक्ष्णेन स नन्दी दानवेश्वरम् ।

तक्षयामास वै तक्षा चन्दनं गन्धदो यथा ॥ ४४

परश्वधहतः शूरः शैलादिः शरभो यथा ।

दुद्राव खड्गं निष्कृष्ट्य तारकाख्यो गणेश्वरम् ॥ ४५

यज्ञोपवीतमार्गेण चिच्छेद च ननाद च ।

ततः सिंहरवो घोरः शङ्खशब्दश्च भैरवः ।

गणेश्वरैः कृतस्तत्र तारकाख्ये निषूदिते ॥ ४६

प्रमथारसितं श्रुत्वा वादित्रस्वनमेव च ।

पार्श्वस्थः सुमहापाश्वं विद्युन्मालिं मयोऽन्नवीत् ॥ ४७

बहुवदनवतां किमेष शब्दो
नदतां श्रूयते भिन्नसागराभः ।

वद वद त्वं तडिन्मालिन् किमेत-
द्रूणपा युयुधुर्यथा गजेन्द्राः ॥ ४८

इति मयवचनाङ्कुशार्दित-
सं तडिन्माली रविरिवांशुमाली ।

रणशिरसि समागतः सुराणां
निजगादेदमरिन्दमोऽतिदुःखात् ॥ ४९

यमवरुणमहेन्द्ररुद्रवीर्य-
स्तव यशसो निधिर्धीरः तारकाख्यः ।

सकलसमरशीर्षपर्वतेन्द्रो
युद्ध्वा यस्तपति हि तारको गणेन्द्रैः ॥ ५०

आकाशस्थित रथपर बैठे हुए बलसम्पन्न शेषनाग, शंकर और ब्रह्माने विशेष क्षुब्ध होकर पृथक्-पृथक् तारकासुरके शरीरकी संधियोंको बींध दिया और वे घोर गर्जना करने लगे । उस समय हाथमें धनुष-बाण लिये हुए भगवान् शंकर अपना एक पैर ऋग्वेदरूप घोड़ेकी तथा दूसरा पैर नन्दीश्वरकी पीठपर रखकर त्रिपुरोंके परस्पर सम्मिलनकी प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये । उस समय शंकरजीके पैर रखनेसे उन त्रिशूलधारीके भारसे पीड़ित हुए अश्वके स्तन और वृषभके दाँत टूटकर गिर पड़े । तभीसे घोड़ोंके स्तन और गो-वंशके (ऊपरी जबड़ेके) दाँत गुस हो गये । इसी कारण वे दिखायी नहीं पड़ते । उसी समय जिसके नेत्रोंके अन्तर्भाग भयंकर और लाल थे, उस भीषण नेत्रोंवाले तारकासुरको भगवान् रुद्रके निकट आते देखकर कुलको आनन्दित करनेवाले नन्दीने रोक दिया तथा उन्होंने अपने तीखे कुठारसे उस दानवेश्वरके शरीरको इस प्रकार छील डाला, जैसे गन्धकी इच्छावाला (अथवा इत्र बनानेवाला) बढ़ई चन्दन-वृक्षको छाँट देता है । कुठारके आधातसे आहत हुए शूरवीर तारकासुरने पर्वतीय सिंहकी तरह क्लूँद्ध होकर म्यानसे तलवार खींचकर गणेश्वर नन्दीपर आक्रमण किया । तब नन्दीश्वरने यज्ञोपवीत-मार्गसे (अर्थात् जनेऊ पहननेकी जगह—बाएँ कंधेसे लेकर दाहिने कटिटटक) तिरछे रूपमें तारकासुरके शरीरको विदीर्ण कर दिया और भयंकर गर्जना की । फिर तो वहाँ तारकासुरके मारे जानेपर गणेश्वरोंके भयंकर सिंहनाद गूँज उठे और उनके शङ्खोंके भीषण शब्द होने लगे ॥ ३३—४६ ॥

तब प्रमथगणोंके सिंहनाद और उनके बाजोंके भीषण शब्दको सुनकर बगलमें ही स्थित मयदानवने महान् बलशाली विद्युन्मालीसे पूछा—‘विद्युन्मालिन्! बताओ तो सही, अनेकों मुखोंवाले प्रमथगणोंका सागरकी गर्जनाके समान यह भयंकर सिंहनाद क्यों सुनायी पड़ रहा है? ये गणेश्वर क्यों गजराज-से गरजते हुए इतने उत्साहसे युद्ध कर रहे हैं?’ इस प्रकार मयके वचनरूपी अङ्कुशसे पीड़ित हुआ किरणमाली सूर्यकी तरह तेजस्वी शत्रुदमन विद्युन्माली, जो तुरंत ही देवताओंके युद्धके मुहानेसे लौटकर आया था, अत्यन्त दुःखके साथ मयसे इस प्रकार बोला—‘धैर्यशाली राजन्! जो यम, वरुण, महेन्द्र और रुद्रके समान पराक्रमी, आपकी कीर्तिका निधिस्वरूप, समस्त युद्धोंके मुहानेपर पर्वतराजकी भाँति डटा रहनेवाला

मृदितमुपनिशाम्य तारकाख्यं
 रविदीसानलभीषणायताक्षम् ।
 हृषितसकलनेत्रलोमसत्त्वा:
 प्रमथास्तोयमुचो तथा नदन्ति ॥ ५१
 इति सुहृदो वचनं निशाम्य तत्त्वं
 तडिन्माले: स मयः सुवर्णमाली ।
 रणशिरस्यसिताञ्जनाचलाभो
 जगदे वाक्यमिदं नवेन्दुमालिम् ॥ ५२
 विद्युन्मालिन्न नः कालः साधितुं ह्यवहेलया ।
 करोमि विक्रमेणैतत् पुरं व्यसनवर्जितम् ॥ ५३
 विद्युन्माली ततः क्रुद्धो मयश्च त्रिपुरेश्वरः ।
 गणान् जघ्नुस्तु द्राघिष्ठाः सहितास्तैर्महासुरैः ॥ ५४
 येन येन ततो विद्युन्माली याति मयश्च सः ।
 तेन तेन पुरं शून्यं प्रमथोपहृङ्कतम् ॥ ५५
 अथ यमवरुणमृदङ्गधोषैः
 पणवडिणिडमज्यास्वनप्रघोषैः ।
 सकरतलपुटैश्च सिहनादै-
 र्भवमभिपूज्य तदा सुरावतस्थुः ॥ ५६
 सम्पूज्यमानोऽदितिजैर्महात्म्यभिः
 सहस्ररश्मप्रतिमौजसैर्विभुः ।
 अभिष्टुतः सत्यरत्नैस्तपोधनै-
 र्यथास्त शृङ्गाभिगतो दिवाकरः ॥ ५७
 इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे तारकाख्यवधो नामाष्टात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाहके प्रसङ्गमें तारकासुर-वध नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३८ ॥

और युद्धभूमिमें शत्रुओंके लिये संतापदायक था, वह तारक गणेश्वरोंद्वारा निहत हो गया । सूर्य एवं प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर विशाल नेत्रोंवाले तारकको मारा गया सुनकर हर्षके कारण सभी प्रमथोंके शरीर पुलकित और नेत्र उत्फुल्ल हो गये हैं और वे बादलोंकी तरह गर्जना कर रहे हैं ।' अपने मित्र विद्युन्मालीके इस तत्त्वपूर्ण वचनको सुनकर कज्जलगिरिके सदृश शरीरवाला स्वर्णमालाधारी मय रणके मुहानेपर विद्युन्मालीसे इस प्रकार बोला—'विद्युन्मालिन् ! अब हमलोगोंके लिये अवहेलना (प्रमाद)-पूर्वक समय बिताना ठीक नहीं है । मैं अपने पराक्रमसे पुनः इस त्रिपुरको आपत्तिरहित बनाऊँगा ।' फिर तो विद्युन्माली और त्रिपुराधिपति मय-दोनोंने क्रुद्ध होकर महासुरोंकी विशाल सेनाके साथ गणेश्वरोंको मारना आरम्भ किया । उस समय त्रिपुरमें विद्युन्माली और मय जिस-जिस मार्गसे निकलते थे, वे मार्ग प्रमथोंके घायल होकर भाग जानेसे शून्य हो जाते थे । तब यम और वरुणके मृदङ्गधोष और ढोल, नगरे एवं धनुषकी प्रत्यञ्चाके निनादके साथ-साथ ताली बजाते और सिंहनाद करते हुए सभी देवगण शङ्करजीकी पूजा करके उन्हें धेरकर खड़े हो गये । सूर्यके समान तेजस्वी उन महात्मा देवगणोंद्वारा पूजित होते हुए तथा सत्यपरायण तपस्वियोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए भगवान् शङ्कर अस्ताचलके शिखरपर पहुँचे हुए सूर्यकी भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥ ४७—५७ ॥

एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

दानवराज मयका दानवोंको समझा-बुझाकर त्रिपुरकी रक्षामें नियुक्त करना तथा त्रिपुरकौमुदीका वर्णन

सूत उवाच

तारकाख्ये हते युद्धे उत्सार्य प्रमथान् मयः ।
उवाच दानवान् भूयो भूयः स तु भयावृतान् ॥ १
भोऽसुरेन्द्राधुना सर्वे निबोधध्वं प्रभाषितम् ।
यत् कर्तव्यं मया चैव युष्माभिश्च महाबलैः ॥ २
पुष्यं समेष्यते काले चन्द्रश्चन्द्रनिभाननाः ।
यदैकं त्रिपुरं सर्वं क्षणमेकं भविष्यति ॥ ३
कुरुध्वं निर्भयाः काले पिशुनाशंसितेन च ।
स कालः पुष्ययोगस्य पुरस्य च मया कृतः ॥ ४
काले तस्मिन् पुरे यस्तु सम्भावयति संहतिम् ।
स एनं कारयेच्छूर्णं बलिनैकेषुणा सुरः ॥ ५
यो वः प्राणो बलं यच्च या च वो वैरिताऽसुराः ।
तत् कृत्वा हृदये चैव पालयध्वमिदं पुरम् ॥ ६
महेश्वररथं हृकं सर्वप्राणेन भीषणम् ।
विमुखीकुर्वतात्यर्थं यथा नोत्सृजते शरम् ॥ ७
तत एवं कृतेऽस्माभिस्त्रिपुरस्यापि रक्षणे ।
प्रतीक्षिष्यन्ति विवशाः पुष्ययोगं दिवौकसः ॥ ८
निशम्य तन्मयस्यैकं दानवास्त्रिपुरालयाः ।
मुहुः सिंहरवं कृत्वा मयमूर्चुर्यमोपमाः ॥ ९
प्रयत्नेन वयं सर्वे कुर्मस्तव प्रभाषितम् ।
तथा कुर्मो यथा रुद्रो न मोक्षयति पुरे शरम् ॥ १०
अद्य यास्यामः संग्रामे तद्गुदस्य जिघांसवः ।
कथयन्ति दितेः पुत्रा हृष्टा भिन्नतनूरुहाः ॥ ११
कल्पं स्थास्यति वा खस्थं त्रिपुरं शाश्वतं ध्रुवम् ।
अदानवं वा भविता नारायणपदत्रयम् ॥ १२
वयं न धर्म हास्यामो यस्मिन् योक्ष्यति नो भवान् ।
अदैवतमदैत्यं वा लोकं द्रक्ष्यन्ति मानवाः ॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार युद्धभूमिमें तारकासुरके मारे जानेपर दानवराज मय प्रमथोंको खदेड़कर भयभीत हुए दानवोंको सब तरहसे सान्त्वना देते हुए बोला—‘अरे असुरेन्द्रो ! इस समय तुम सभी महाबली दानवोंका जो कर्तव्य है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सब लोग ध्यान देकर सुनो । चन्द्रवदन दानवो ! जिस समय चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रसे समन्वित होंगे, उस समय एक क्षणके लिये तीनों पुर एकमें मिल जायेंगे । यह चन्द्रमाका पुष्य नक्षत्रसे सम्बन्ध होनेपर त्रिपुरके सम्मिलित होनेका काल मैंने ही निर्धारित कर रखा है, अतः उस समय तुमलोग निर्भय होकर नारदजीद्वारा बतलाये गये उपायोंका प्रयोग करो; क्योंकि उस समय जो कोई देवता त्रिपुरोंके सम्मिलित होनेका पता लगा लेगा, वह एक ही सुदृढ़ बाणसे इस त्रिपुरको चूर्ण कर डालेगा । इसलिये असुरो ! तुमलोगोंमें जितनी प्राणशक्ति है, जितना बल है और देवताओंके साथ जितना वैर-विद्वेष है, वह सब हृदयमें विचारकर इस त्रिपुरकी रक्षामें जुट जाओ । तुमलोग एकमात्र महेश्वरके भीषण रथको पूरी शक्ति लगाकर ऐसा विमुख कर दो, जिससे वे बाण न छोड़ सकें । इस प्रकार हमलोगोंद्वारा त्रिपुरकी रक्षा सम्पन्न कर लेनेपर देवताओंको विवश होकर पुनः आनेवाले पुष्ययोगकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ।’ मयका ऐसा कथन सुनकर यमराजके समान भीषण त्रिपुरनिवासी दानव बारम्बार सिंहनाद कर मयसे बोले—‘राजन् ! हम सब लोग प्रयत्नपूर्वक आपके कथनका पालन करेंगे और ऐसा कर्म कर दिखायेंगे, जिससे रुद्र त्रिपुरपर बाण नहीं छोड़ सकेंगे । हमलोग आज ही उस रुद्रका वध करनेके लिये संग्रामभूमिमें जा रहे हैं । या तो हमारा त्रिपुर कल्पपर्यन्त निश्चलरूपसे सर्वदाके लिये आकाशमें स्थिर रहेगा अथवा नारायणके तीन पदकी तरह यह दानवोंसे खाली हो जायगा । आप हमलोगोंको जिस कार्यमें नियुक्त कर देंगे, हमलोग उस कर्तव्यका कदापि त्याग नहीं करेंगे । आज मानव जगत्को देवता अथवा दैत्यसे रहित ही देखेंगे ।’

इति सम्मन्त्र्य हृष्टास्ते पुरान्तर्विबुधारयः ।
 प्रदोषे मुदिता भूत्वा चेरुर्मन्मथचारताम् ॥ १४
 मुहुर्मुक्तोदयो भ्रान्त उदयाग्रं महामणिः ।
 तमांस्युत्सार्य भगवांश्न्द्रो जृम्भति सोऽम्बरम् ॥ १५
 कुमुदालङ्कृते हंसो यथा सरसि विस्तृते ।
 सिंहो यथा चोपविष्टो वैदूर्यशिखरे महान् ॥ १६
 विष्णोर्यथा च विस्तीर्णं हारश्वेरसि संस्थितः ।
 तथावगाढे नभसि चन्द्रोऽत्रिनयनोद्भवः ।
 भ्राजते भ्राजयल्लोकाऽमृजञ्ज्योत्स्नारसं बलात् ॥ १७
 शीतांशावुदिते चन्द्रे ज्योत्स्नापूर्णे पुरेऽसुराः ।
 प्रदोषे ललितं चक्रुर्गृहमात्मानमेव च ॥ १८
 रथ्यासु राजमार्गेषु प्रासादेषु गृहेषु च ।
 दीपाश्वम्पकपुष्पाभा नाल्पस्नेहप्रदीपिताः ॥ १९
 तदा मठेषु ते दीपाः स्नेहपूर्णाः प्रदीपिताः ।
 गृहाणि वसुमन्त्येषां सर्वरत्नमयानि च ।
 ज्वलतोऽदीपयन् दीपांश्न्द्रोदय इव ग्रहाः ॥ २०
 चन्द्रांशुभिर्भासमानमन्तर्दीपैः सुदीपितम् ।
 उपद्रवैः कुलमिव पीयते त्रिपुरे तमः ॥ २१
 तस्मिन् पुरे वै तरुणप्रदोषे
 चन्द्राद्वाहसे तरुणप्रदोषे ।
 रत्यर्थिनो वै दनुजा गृहेषु
 सहाङ्गनाभिः सुचिरं विरेमुः ॥ २२
 विनोदिता ये तु वृषध्वजस्य
 पञ्चेषवस्ते मकरध्वजेन ।
 तत्रासुरेष्वासुरपुङ्गवेषु
 स्वाङ्गाङ्गनाः स्वेदयुता बभूवुः ॥ २३
 कलप्रलापेषु च दानवीनां
 वीणाप्रलापेषु च मूर्छितांस्तु ।
 मत्तप्रलापेषु च कोकिलानां
 सचापबाणो मदनो ममन्थ ॥ २४
 तमांसि नैशानि द्रुतं निहत्य
 ज्योत्स्नावितानेन जगद्वितत्य ।
 खे रोहिणीं तां च प्रियां समेत्य
 चन्द्रः प्रभाभिः कुरुतेऽधिराज्यम् ॥ २५

पुलकित शरीरवाले दैत्य हर्षपूर्वक इस प्रकार कह रहे थे। इस प्रकार वे देवशत्रु दानव त्रिपुरके भीतर मन्त्रणा करके सायंकाल होनेपर प्रसन्न होकर स्वच्छन्दाचारमें प्रसक्त हो गये ॥ १—१४ ॥

उसी समय बारम्बार मोतीके निकलनेका भ्रम

उत्पन्न करनेवाले एवं महामणिके समान भगवान् चन्द्रमा

उदयाचलके शिखरपर दीख पड़े। वे अन्धकारका

विनाश करके आकाशमण्डलमें आगे बढ़ रहे थे।

उस समय जैसे कुमुदिनीसे सुशोभित विशाल सरोवरमें

हंस, वैदूर्यके शिखरपर बैठा हुआ महान् सिंह

और भगवान् विष्णुके विस्तीर्ण वक्षःस्थलपर लटकता

हुआ हार शोभा पाता है, उसी तरह महर्षि अत्रिके

नेत्रसे उत्पन्न हुए चन्द्रमा अथाह आकाशमें स्थित होकर

अपनी चाँदनीसे बलपूर्वक सारे लोकोंको सींचते

एवं प्रकाशित करते हुए सुशोभित हो रहे थे। इस

स्थित्वैव कान्तस्य तु पादमूले
काचिद् वरस्त्री स्वकपोलमूले।
विशेषकं चारुतं करोति
तेनाननं स्वं समलङ्घरोति ॥ २६
दृष्टाननं मण्डलदर्पणस्थं
महाप्रभा मे मुखजेति जप्त्वा।
स्मृत्वा वराङ्गी रमणैरितानि
तेनैव भावेन रतीमवाप ॥ २७
रोमाञ्छितैर्गात्रवैर्युवभ्यो
रतानुरागाद्रमणेन चान्याः।
स्वयं द्रुतं यान्ति मदाभिभूताः
क्षपा यथा चार्कदिनावसाने ॥ २८
पेपीयते चातिरसानुविद्धा
विमार्गितान्या च प्रियं प्रसन्ना।
काचित् प्रियस्यातिचिरात् प्रसन्ना
आसीत् प्रलापेषु च सम्प्रसन्ना ॥ २९
गोशीर्षयुक्तैर्हरिचन्दनैश्च
पङ्काङ्किताक्षीरधराऽसुरीणाम् ।
मनोऽन्नरूपा रुचिरा बभूवुः
पूर्णामृतस्येव सुवर्णकुम्भाः ॥ ३०
क्षताधरोष्ठा द्रुतदोषरक्ता
ललन्ति दैत्या दयितासु रक्ताः।
तन्नीप्रलापास्त्रिपुरेषु रक्ताः
स्त्रीणां प्रलापेषु पुनर्विरक्ताः ॥ ३१
क्षचित् प्रवृत्तं मधुरभिगानं
कामस्य बाणैः सुकृतं निधानम्।
आपानभूमीषु सुखप्रमेयं
गेयं प्रवृत्तं त्वथ साधयन्ति ॥ ३२
गेयं प्रवृत्तं त्वथ शोधयन्ति
केचित् प्रियां तत्र च साधयन्ति।
केचित् प्रियां सम्प्रति बोधयन्ति
सम्बुद्ध्य सम्बुद्ध्य च रामयन्ति ॥ ३३
चूतप्रसूनप्रभवः सुगन्धः
सूर्ये गते वै त्रिपुरे बभूव।
समर्मरो नूपुरमेखलानां
शब्दश्च सम्बाधति कोकिलानाम् ॥ ३४

प्रकार सायंकालमें शीतरश्मि चन्द्रमाके उदय होनेपर जब त्रिपुरमें चाँदनी फैल गयी, तब असुरगण अपने-अपने गृहोंको सजाने लगे। गलियों, सड़कों, महलों और गृहोंमें तेलसे भरे हुए दीपक जला दिये गये, जो चम्पाके पुष्की भाँति सुशोभित हो रहे थे। उसी प्रकार देवालयोंमें भी तेलसे परिपूर्ण दीपक जलाये गये। दानवोंके गृह धन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण तो थे ही, उनमें अनेक प्रकारके रत्न भी जड़े हुए थे, जिससे वे जलते हुए दीपकोंको चन्द्रोदय होनेपर ग्रहोंकी तरह अधिक उद्दीप कर रहे थे ॥ १५—३० ॥

वे भवन बाहरसे तो चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित थे और भीतर जलते हुए दीपकोंसे उद्दीप हो रहे थे, जिससे वे त्रिपुरके अन्धकारको उसी प्रकार पीकर नष्ट कर रहे थे, जैसे उपद्रवोंके प्रकोपसे कुल नष्ट हो जाता

प्रियावगूढा दयितोपगूढा
 काचित् प्रसूढाङ्गुरहापि नारी।
 सुचारुवाष्टाङ्गुरपल्लवानां
 नवाम्बुसिक्ता इव भूमिरासीत्॥ ३५
 शशाङ्गपादैरुपशोभितेषु
 प्रासादवर्येषु वराङ्गनानाम् ।
 माधुर्यभूताभरणामहान्तः
 स्वना बभूर्मदनेषु तुल्याः॥ ३६
 पानेन खिन्ना दयितातिवेलं
 कपोलमाघ्रासि च किं ममेदम्।
 आरोह मे श्रोणिमिमां विशालां
 पीनोन्नतां काञ्छनमेखलाख्याम्॥ ३७
 रथ्यासु चन्द्रोदयभासितासु
 सुरेन्द्रमार्गेषु च विस्तृतेषु।
 दैत्याङ्गना यूथगता विभान्ति
 तारा यथा चन्द्रमसो दिवान्ते॥ ३८
 अद्वाद्वहासेषु च चामरेषु
 प्रेष्ट्वासु चान्या मदलोलभावात्।
 संदोलयन्ते कलसम्प्रहासाः
 प्रोवाच काञ्छीगुणसूक्ष्मनादा॥ ३९
 अम्लानमालान्वितसुन्दरीणां
 पर्याय एषोऽस्ति च हर्षितानाम्।
 श्रूयन्ति वाचः कलधौतकल्पा
 वापीषु चान्ये कलहंसशब्दाः॥ ४०
 काञ्छीकलापश्च सहाङ्गरागः
 प्रेष्ट्वासु तद्रागकृताश्च भावाः।
 छिन्दन्ति तासामसुराङ्गनानां
 प्रियालयान् मन्मथमार्गणानाम्॥ ४१
 चित्राम्बरशोद्धृतकेशपाशः
 संदोल्यमानः शुशुभेऽसुरीणाम्।
 सुचारुवेशाभरणैरुपेत-
 स्तारागणैर्ज्योतिरिवास चन्द्रः॥ ४२
 सन्दोलनादुच्छ्वसितैश्छन्नसूत्रैः
 काञ्छीभृष्टैर्मणिभिर्विप्रकीर्णः ।
 दोलाभूमिस्तैर्विचित्रा विभाति
 चन्द्रस्य पाश्वर्वोपगतैर्विचित्रा॥ ४३
 सचन्द्रिके सोपवने प्रदोषे
 रुतेषु वृन्देषु च कोकिलानाम्।
 शरव्ययं प्राप्य पुरेऽसुराणां
 प्रक्षीणबाणो मदनश्चार॥ ४४

है। रात्रिके समय जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल छटा पूरे

त्रिपुरमें फैल गयी तब दानवगण रात बितानेके लिये

अपनी पत्नियोंके साथ अपने-अपने गृहोंमें चले गये।

इधर रात बीती और कोयलें कूजने लगी॥ ३१—४४॥

इति तत्र पुरेऽमरद्विषाणां
सपदि हि पश्चिमकौमुदी तदासीत्।

रणशिरसि पराभविष्यतां वै
भवतुरगैः कृतसंक्षया अरीणाम्॥ ४५

चन्द्रोऽथ कुन्दकुसुमाकरहारवर्णो
ज्योत्स्नावितानरहितोऽभ्रसमानवर्णः।

विच्छायतां हि समुपेत्य न भाति तद्वद्
भाग्यक्षये धनपतिश्च नरो विवर्णः॥ ४६

चन्द्रप्रभामरुणसारथिनाभिभूय
संतसकाञ्चनरथाङ्गसमानबिम्बः।

स्थित्वोदयाग्रमुकुटे बहुरेव सूर्यो
भात्यम्बरे तिमिरतोयवहां तरिष्यन्॥ ४७

इति श्रीमत्स्य महापुराणे त्रिपुरकौमुदीनामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें त्रिपुरकौमुदी नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३९॥

एक सौ चालीसवाँ अध्याय

देवताओं और दानवोंका भीषण संग्राम, नन्दीश्वरद्वारा विद्युन्मालीका वध,
मयका पलायन तथा शङ्करजीकी त्रिपुरपर विजय

सूत उवाच

उदिते तु सहस्रांशौ मेरौ भासाकरे रवौ।
नददेव बलं कृत्वं युगान्त इव सागराः॥ १

सहस्रनयनो देवस्ततः शक्रः पुरुन्दरः।
सवित्तदः सवरुणस्त्रिपुरं प्रययौ हरः॥ २

ते नानाविधिरूपाश्र प्रमथातिप्रमाधिनः।
ययुः सिंहरवैघोरैर्वादित्रनिनदैरपि॥ ३

ततो वादितवादित्रैश्चातपत्रैर्महाद्रुमैः।
बभूव तद्बलं दिव्यं वनं प्रचलितं यथा॥ ४

तदापतन्तं सम्प्रेक्ष्य रौद्रं रुद्रबलं महत्।
संक्षोभो दानवेन्द्राणां समुद्रप्रतिमो बभौ॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्रकाश बिखेरनेवाले
सहस्रांशुमाली सूर्यके मेरुगिरिपर उदित होते ही सारी-
की-सारी देवसेना प्रलयकालीन सागरकी तरह उच्च
स्वरसे गर्जना करने लगी। तब भगवान् शङ्कर सहस्रनेत्रधारी
पुरुन्दर इन्द्र, कुबेर और वरुणको साथ लेकर त्रिपुरकी
ओर प्रस्थित हुए। उनके पीछे विभिन्न रूपधारी शत्रुविनाशक
प्रमथगण भीषण सिंहनाद करते और बाजा बजाते हुए
चले। उस समय बजते हुए बाजों, छत्रों और विशाल
वृक्षोंसे युक्त होनेके कारण वह देवसेना ऐसी लग रही
थी, मानो चलता-फिरता वन हो। तत्पश्चात् शङ्करजीकी
उस विशाल भयंकर सेनाको आक्रमण करते देखकर
दानवेन्द्रोंका समूह सागरकी तरह संक्षुब्ध हो उठा।

ते चासीन् पद्मिशान् शक्तीः शूलदण्डपरश्वधान्।
शरासनानि वज्राणि गुरुणि मुसलानि च ॥ ६

प्रगृह्य कोपरक्ताक्षाः सपक्षा इव पर्वताः।
निजघ्नुः पर्वतछाय घना इव तपात्यये ॥ ७
सविद्युन्मालिनस्ते वै समया दितिनन्दनाः।
मोदमानाः समासेदुर्देवदेवैः सुरारयः ॥ ८
मर्तव्यकृतबुद्धीनां जये चानिश्चतात्मनाम्।
अबलानां चमूर्हासीदबलावयवा इव ॥ ९
विगर्जन्त इवाम्भोदा अम्भोदसदृशत्विषः।
प्रयुध्य युद्धकुशलाः परस्परकृतागसः ॥ १०
धूमायन्तो ज्वलद्विश्च आयुधैश्चन्द्रवर्चसैः।
कोपाद् वा युद्धलुब्धाश्च कुट्टयन्ते परस्परम् ॥ ११
वज्राहताः पतन्त्यन्ये बाणैरन्ये विदारिताः।
अन्ये विदारिताश्चकैः पतन्ति हृदधर्जले ॥ १२
छिन्स्वगदामहाराश्च प्रमृष्टाम्बरभूषणाः।
तिमिनक्रगणे चैव पतन्ति प्रमथाः सुराः ॥ १३
गदानां मुसलानां च तोमराणां परश्वधाम्।
वज्रशूलर्षिपातानां पद्मिशानां च सर्वतः ॥ १४
गिरिशृङ्गोपलानां च प्रेरितानां प्रमन्युभिः।
सजवानां दानवानां सधूमानां रवित्विषाम्।
आयुधानां महानाघः सोगरौधे पतत्यपि ॥ १५
प्रवृद्धवेगैस्तैस्तत्र सुरासुरकरेरितैः।
आयुधैस्त्रस्तनक्षत्रः क्रियते संक्षयो महान् ॥ १६
क्षुद्राणां गजयोर्युद्धे यथा भवति सङ्क्षयः।
देवासुरगणैस्तद्वत् तिमिनक्रक्षयोऽभवत् ॥ १७
विद्युन्माली च वेगेन विद्युन्माली इवाम्बुदः।
विद्युन्मालं घनोन्नादो नन्दीश्वरमभिद्वृतः ॥ १८
स तं तमोऽरिवदनं प्रणदन् वदतां वरः।
उवाच युधि शैलादिं दानवोऽम्बुधिनिःस्वनः ॥ १९
युद्धाकाङ्क्षी तु बलवान् विद्युन्माल्यहमागतः।
यदि त्विदानीं मे जीवन्मुच्यसे नन्दिकेश्वर।
न विद्युन्मालिहननं वचोभिर्युधि दानवम् ॥ २०

फिर तो पंखधारी पर्वतोंकी भाँति विशालकाय दानवोंके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे खड़ग, पद्मिश (पट्टे), शक्ति, शूल, दण्ड, कुठार, धनुष, वज्र तथा बड़े-बड़े मूसलोंको लेकर एक साथ ही इन्द्रपर इस प्रकार प्रहार करने लगे, जैसे ग्रीष्म-ऋतुके बीत जानेपर बादल जलकी वृष्टि करते हैं ॥ १—७ ॥

इस प्रकार मयसहित देवशत्रु दैत्यगण विद्युन्मालीके साथ होकर प्रसन्नतापूर्वक देवेश्वरोंसे टक्कर लेने लगे। उनके मनमें विजयकी आशा तो थी ही नहीं, अतः वे मरनेपर उतारू हो गये थे। उन बलहीनोंकी सेना स्त्रियोंके अवयवोंकी तरह दुर्बल थी। मेघकी-सी कान्तिवाले युद्धकुशल दैत्य परस्पर एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए लड़ रहे थे और मेघके समान गरज रहे थे। युद्धलोभी सैनिक प्रज्वलित अग्नि एवं चन्द्रमाके समान तेजस्वी अस्त्रोंद्वारा क्रोधपूर्वक परस्पर एक-दूसरेको मार-पीट—कूट रहे थे। कुछ लोग वज्रसे घायल होकर, कुछ लोग बाणोंसे विदीर्ण होकर और कुछ लोग चक्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर समुद्रके जलमें गिर रहे थे। (दैत्योंकी मारसे) जिनकी मालाओंके सूत्र और हार टूट गये थे तथा जिनके वस्त्र और आभूषण नष्ट-भ्रष्ट हो गये थे, वे देवता और गणेश्वर समुद्रमें मगरमच्छों एवं नाकोंके मध्यमें गिर रहे थे। धूमयुक्त सूर्यकी-सी कान्तिवाले वेगशाली दानवोंद्वारा क्रोधपूर्वक चलाये गये गदा, मुसल, तोमर, कुठार, वज्र, शूल, ऋष्टि, पद्मिश, पर्वतशिखर और शिलाखण्ड आदि आयुधोंका महान् समूह सागरमें गिर रहा था। देवताओं और असुरोंके हाथोंसे वेगपूर्वक चलाये गये आयुधोंसे नक्षत्रगण (भी) त्रस्त हो रहे थे। और महान् संहार हो रहा था। जैसे दो हाथियोंके लड़ते समय क्षुद्र जीवोंका विनाश हो जाता है, उसी तरह देवताओं और असुरोंके संग्रामसे मगरमच्छ और नाकोंका संहार होने लगा ॥ ८—१७ ॥

तत्पश्चात् विद्युत्समूहोंसे युक्त मेघकी तरह कान्तिमान् विद्युन्मालीने बिजलीसे युक्त बादलकी तरह गरजते हुए नन्दीश्वरपर वेगपूर्वक धावा किया। उस समय वक्ताओंमें श्रेष्ठ दानव विद्युन्माली बादलकी तरह गरजता हुआ युद्धस्थलमें सूर्यके समान तेजस्वी मुखवाले नन्दीश्वरसे बोला—‘नन्दिकेश्वर! मैं बलवान् विद्युन्माली हूँ और युद्ध करनेकी इच्छासे तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ। अब तुम्हारा मेरे हाथोंसे जीवित बच पाना असम्भव है। युद्धस्थलमें वचनोंद्वारा दानव विद्युन्मालीका हनन नहीं किया जा सकता।’

तमेवंवादिनं दैत्यं नन्दीशस्तपतां वरः ।
उवाच प्रहरंस्तत्र वाक्यालङ्कारकोविदः ॥ २१
दानवाधम कामानां नैषोऽवसर इत्युत ।
शक्तो हन्तुं किमात्मानं जातिदोषाद् विबृंहसि ॥ २२
यदि तावन्मया पूर्वं हतोऽसि पशुवद् यथा ।
इदानीं वा कथं नाम न हिंस्ये क्रतुदूषणम् ॥ २३
सागरं तरते दोभ्यर्या पातयेद् यो दिवाकरम् ।
सोऽपि मां शक्नुयान्नैव चक्षुभ्यर्या समवीक्षितुम् ॥ २४
इत्येवंवादिनं तत्र नन्दिनं तन्निभो बले ।
बिभेदैकेषुणा दैत्यः करेणार्कं इवाम्बुदम् ॥ २५
वक्षसः स शरस्तस्य पपौ रुधिरमुत्तमम् ।
सूर्यस्त्वात्मप्रभावेण नद्यर्णवजलं यथा ॥ २६
स तेन सुप्रहारेण प्रथमं च तिरोहितः ।
हस्तेन वृक्षमुत्पाद्य चिक्षेप गजराडिव ॥ २७
वायुनुन्नः स च तरुः शीर्णपुष्पो महारवः ।
विद्युन्मालिशैश्चिन्नः पपात पतगेशवत् ॥ २८
वृक्षमालोक्य तं छिन्नं दानवेन वरेषुभिः ।
रोषमाहारयत् तीव्रं नन्दीश्वरः सुविग्रहः ॥ २९
सोद्यम्य करमारावे रविशक्करप्रभम् ।
दुद्राव हन्तुं स क्रूरं महिषं गजराडिव ॥ ३०
तमापतन्तं वेगेन वेगवान् प्रसभं बलात् ।
विद्युन्माली शरशतैः पूरयामास नन्दिनम् ॥ ३१
शरकण्टकिताङ्गो वै शैलादिः सोऽभवत् पुनः ।
अरेर्गृह्य रथं तस्य महतः प्रययौ जवात् ॥ ३२
विलम्बिताश्वो विशिरो भ्रमितश्च रणे रथः ।
पपात मुनिशापेन सादित्योऽर्करथो यथा ॥ ३३
अन्तरान्निर्गतश्वैव मायया स दितेः सुतः ।
आजघान तदा शक्त्या शैलादिं समवस्थितम् ॥ ३४

तब वाक्यके अलंकारोंके ज्ञाता एवं श्रेष्ठ तेजस्वी नन्दीश्वरने ऐसा कहनेवाले दैत्य विद्युन्मालीपर प्रहार करते हुए कहा—‘दानवाधम ! तुमलोग इस समय कामासक्त ही हो, जिसका यह अवसर नहीं है। तुम मुझे मारनेमें समर्थ हो तो उसे कर दिखाओ, किंतु जाति-दोषके कारण तुम अपने प्रति ऐसी डींग क्यों मार रहे हो। यदि इससे भी पहले मैंने तुम्हें पशुकी तरह बहुत मारा है तो इस समय तुझ यज्ञविध्वंसीका हनन कैसे नहीं करूँगा ? (तुम समझ लो) जो हाथोंसे सागरको तैरनेकी तथा सूर्यको आकाशसे गिरा देनेकी शक्ति रखता हो, वह भी मेरी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकता।’ तब नन्दीश्वरके समान ही बलशाली विद्युन्मालीने इस प्रकार कहते हुए नन्दीश्वरको एक बाणसे वैसे ही बींध दिया, जैसे सूर्य अपनी किरणसे बादलका भेदन करते हैं। वह बाण नन्दीश्वरके वक्षःस्थलपर जा लगा और उनका शुद्ध रक्त इस प्रकार पीने लगा जैसे सूर्य अपने प्रभावसे नदी और समुद्रके जलको पीते हैं। उस प्रथम प्रहारसे अत्यन्त कुद्ध हुए नन्दीश्वरने अपने हाथसे एक वृक्ष उछाड़कर गजराजकी भाँति विद्युन्मालीके ऊपर फेंका। वायुसे प्रेरित हुआ वह वृक्ष घोर शब्द करता और पुष्पोंको बिखेरता हुआ आगे बढ़ा, किंतु विद्युन्मालीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर एक बड़े पक्षीकी तरह भूतलपर बिखर गया ॥ १८—२८ ॥

विद्युन्मालीद्वारा श्रेष्ठ बाणोंके प्रहारसे उस वृक्षको छिन्न-भिन्न हुआ देखकर महाबली नन्दीश्वर अत्यन्त कुद्ध हो उठे। फिर तो वे सूर्य और इन्द्रके हाथके समान प्रभावशाली अपने हाथको उठाकर सिंहनाद करते हुए उस क्रूर राक्षसका वध करनेके लिये इस प्रकार झटपटे, जैसे गजराज भैंसेपर टूट पड़ता है। नन्दीश्वरको वेगपूर्वक आक्रमण करते देखकर वेगशाली विद्युन्मालीने बलपूर्वक नन्दीश्वरके शरीरको सैकड़ों बाणोंसे व्याप कर दिया। उस समय नन्दीश्वरका शरीर बाणरूपी काँटोंसे भरा हुआ दिखायी पड़ने लगा; तब उन्होंने अपने शत्रु विद्युन्मालीके रथको पकड़कर बड़े वेगसे दूर फेंक दिया। उस समय उस रथके घोड़े उसमें लटके हुए थे और उसका अग्रभाग टूट गया था तथा वह चक्कर काटता हुआ रणभूमिमें उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे मुनिके शापसे सूर्यसहित सूर्यका रथ गिर पड़ा था। तब दितिपुत्र विद्युन्माली मायाके बलसे अपनेको सुरक्षित रखकर रथके भीतरसे निकल पड़ा और उसने सामने खड़े हुए नन्दीश्वरपर शक्तिसे प्रहार किया।

तामेव तु विनिष्कम्य शक्तिं शोणितभूषिताम् ।
 विद्युन्मालिनमुद्दिश्य चिक्षेप प्रमथाग्रणीः ॥ ३५
 तया भिन्नतनुत्राणो विभिन्नहृदयस्त्वपि ।
 विद्युन्माल्यपतद् भूमौ वज्राहत इवाचलः ॥ ३६
 विद्युन्मालिनि निहते सिद्धचारणकिन्नराः ।
 साधु साधिवति चोक्त्वा ते पूजयन्त उमापतिम् ॥ ३७
 नन्दिना सादिते दैत्ये विद्युन्मालौ हते मयः ।
 ददाह प्रमथानीकं वनमग्निरिवोद्धतः ॥ ३८
 शूलनिर्दारितोरस्का गदाचूर्णितमस्तकाः ।
 इषुभिर्गाढविद्धाश्च पतन्ति प्रमथार्णवे ॥ ३९
 अथ वज्रधरो यमोऽर्थदः स च नन्दी
 स च षण्मुखो गुहः ।
 मयमसुरवीरसम्प्रवृत्तं विविधुः शस्त्रवर्हतारयः ॥ ४०
 नागं तु नागाधिपते: शताक्षं
 मयो विदायेषु वरेण तूर्णम् ।
 यमं च वित्ताधिपतिं च विद्ध्वा
 रास मत्ताम्बुदवत् तदानीम् ॥ ४१
 ततः शरैः प्रमथगणैश्च दानवा
 दृढाहताश्रोत्तमवेगविक्रमाः ।
 भृशानुविद्धास्त्रिपुरं प्रवेशिता
 यथासुराशक्तधरेण संयुगे ॥ ४२
 ततस्तु शङ्खानकभेरिमर्दलाः
 ससिंहनादा दनुपत्रभङ्गदाः ।
 कपर्दिसैन्ये प्रबभुः समन्ततो
 निपात्यमाना युधि वज्रसंनिभाः ॥ ४३
 अथ दैत्यपुराभावे पुष्ययोगो बभूव ह ।
 बभूव चापि संयुक्तं तद्योगेन पुरत्रयम् ॥ ४४
 ततो बाणं त्रिधा देवस्त्रिदैवतमयं हरः ।
 मुमोच त्रिपुरे तूर्णं त्रिनेत्रस्त्रिपथाधिपः ॥ ४५
 तेन मुक्तेन बाणेन बाणपुष्यसमप्रभम् ।
 आकाशं स्वर्णसंकाशं कृतं सूर्येण रञ्जितम् ॥ ४६
 मुक्त्वा त्रिदैवतमयं त्रिपुरे त्रिदशः शरम् ।
 धिगिधङ्गमेति चक्रन्द कष्टं कष्टमिति श्रवन् ॥ ४७

प्रमथगणोंके नायक नन्दीश्वरने रक्तसे लथपथ हुई उस शक्तिको हाथमें लेकर विद्युन्मालीको लक्ष्य करके फेंक दिया । फिर तो उस शक्तिने विद्युन्मालीके कवचको फाड़कर उसके हृदयको भी विदीर्ण कर दिया, जिससे वह वज्रसे मारे गये पर्वतकी तरह धराशायी हो गया ॥ २९—३६ ॥
 इस प्रकार विद्युन्मालीके मारे जानेपर सिद्धचारण और किन्नरोंके समूह ‘ठीक है, ठीक है’ ऐसा कहते हुए शंकरजीकी पूजा करने लगे । इधर नन्दीश्वरद्वारा दैत्य विद्युन्मालीके मारे जानेपर मयने प्रमथोंकी सेनाको उसी प्रकार जलाना आरम्भ किया, जैसे उद्दीप दावाग्नि वनको जला डालती है । उस समय शूलके आघातसे जिनके वक्षःस्थल फट गये थे एवं गदाके प्रहारसे मस्तक चूर्ण हो गये थे और जो बाणोंकी मारसे अत्यन्त घायल हो गये थे, ऐसे प्रमथगण समुद्रमें गिर रहे थे । तदनन्तर शत्रुओंके विनाशक वज्रधारी इन्द्र, यमराज, कुबेर, नन्दीश्वर तथा छ: मुखवाले स्वामिकार्तिक—ये सभी असुर-वीरोंसे धिरे हुए मयको श्रेष्ठ अस्त्रोंद्वारा बींधने लगे । उस समय मयने शीघ्र ही एक श्रेष्ठ बाणसे गजारूढ़ सौ नेत्रोंवाले इन्द्रको तथा ऐरावत नागको विदीर्ण कर यमराज और कुबेरको भी बींध दिया । फिर वह घुमड़ते हुए बादलकी तरह गर्जना करने लगा । इधर प्रमथगणोंद्वारा छोड़े गये बाणोंसे उत्तम वेग एवं पराक्रमशाली दानव बुरी तरह घायल हो रहे थे । वे अत्यन्त घायल होनेके कारण भागकर त्रिपुरमें उसी प्रकार घुस रहे थे, जैसे युद्धस्थलमें चक्रपाणि विष्णुके प्रहारसे असुर । तत्पश्चात् रणभूमिमें शंकरजीकी सेनामें चारों ओर शङ्ख, ढोल, भेरी और मृदङ्ग बज उठे । वीरोंका सिंहनाद वज्रकी गड़गड़ाहटकी भाँति गूँज उठा, जो दानवोंकी पराजयको सूचित कर रहा था । इसी समय उस दैत्यपुरका विनाशक पुष्ययोग आ गया । उस योगके प्रभावसे तीनों पुर संयुक्त हो गये ॥ ३७—४४ ॥
 तब त्रैलोक्याधिपति त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने शीघ्र ही अपने त्रिदेवमय बाणको तीन भागोंमें विभक्त कर त्रिपुरपर छोड़ दिया । उस छूटे हुए बाणने (तीनों देवताओंके अंशसे तीन प्रकारकी प्रभासे युक्त होकर) बाण वृक्षके पुष्पके समान नीले आकाशको स्वर्ण-सदृश प्रभाशाली और सूर्यकी किरणोंसे उद्दीप कर दिया । देवेश्वर शश्भु त्रिपुरपर त्रिदेवमय बाण छोड़कर—‘मुझे धिक्कार

वैधुर्यं दैवतं दृष्ट्वा शैलादिर्जवदगतिः ।
 किमिदं त्विति पप्रच्छ शूलपाणिं महेश्वरम् ॥ ४८
 ततः शशाङ्कतिलकः कपर्दीं परमार्तवत् ।
 उवाच नन्दिनं भक्तः स मयोऽद्य विनद्यत्यति ॥ ४९
 अथ नन्दीश्वरस्तूर्णं मनोमारुतवद् बली ।
 शरे त्रिपुरमायाति त्रिपुरं प्रविवेश सः ॥ ५०
 स मयं प्रेक्ष्य गणपः प्राह काञ्छनसंनिभः ।
 विनाशस्त्रिपुरस्यास्य प्राप्तो मय सुदारुणः ॥ ५१
 अनेनैव गृहेण त्वमपक्राम ब्रवीम्यहम् ।
 श्रुत्वा तत्रन्दिवचनं दृढभक्तो महेश्वरे ।
 तेनैव गृहमुख्येन त्रिपुरादपसर्पितः ॥ ५२
 सोऽपीषुः पत्रपुटवद् दग्ध्वा तत्रगरत्रयम् ।
 त्रिधा इव हुताशश्च सोमो नारायणस्तथा ॥ ५३
 शरतेजःपरीतानि पुराणि द्विजपुङ्गवाः ।
 दुष्पुत्रदोषाद् दह्यन्ते कुलान्यूर्ध्वं यथा तथा ॥ ५४
 मेरुकैलासकल्पानि मन्दराग्रनिभानि च ।
 सकपाटगवाक्षाणि बलिभिः शोभितानि च ॥ ५५
 सप्रासादानि रम्याणि कूटागारोत्कटानि च ।
 सजलानि समाख्यानि सावलोकनकानि च ॥ ५६
 बद्धध्वजपताकानि स्वर्णरौप्यमयानि च ।
 गृहाणि तस्मिस्त्रिपुरे दानवानामुपद्रवे ।
 दह्यन्ते दहनाभानि दहनेन सहस्रशः ॥ ५७
 प्रासादाग्रेषु रम्येषु वनेषूपवनेषु च ।
 वातायनगताश्चान्याश्चाकाशस्य तलेषु च ॥ ५८
 रमणौरुपगूढाश्च रमन्त्यो रमणैः सह ।
 दह्यन्ते दानवेन्द्राणामग्निना ह्यपि ताः लियः ॥ ५९
 काचित्प्रियं परित्यज्य अशक्ता गन्तुमन्यतः ।
 पुरः प्रियस्य पञ्चत्वं गताग्निवदने क्षयम् ॥ ६०

है, धिक्कार है, हाय! बड़े कष्टकी बात हो गयी' यों कहते हुए चिल्ला उठे। इस प्रकार शंकरजीको व्याकुल देखकर गजराजकी चालसे चलनेवाले नन्दीश्वर शूलपाणि महेश्वरके निकट पहुँचे और पूछने लगे—'कहिये, क्या बात है?' तब चन्द्रशेखर जटाजूटधारी भगवान् शंकरने अत्यन्त दुःखी होकर नन्दीश्वरसे कहा—'आज मेरा वह भक्त मय भी नष्ट हो जायगा।' यह सुनकर मन और वायुके समान वेगशाली महाबली नन्दीश्वर तुरंत उस बाणके त्रिपुरमें पहुँचनेके पूर्व ही वहाँ जा पहुँचे। वहाँ स्वर्ण-सरीखे कान्तिमान् गणेश्वर नन्दीने मयके निकट जाकर कहा—'मय! इस त्रिपुरका अत्यन्त भयंकर विनाश आ पहुँचा है, इसलिये मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। तुम अपने इस गृहके साथ इससे बाहर निकल जाओ।' तब महेश्वरके प्रति दृढ़ भक्ति रखनेवाला मय नन्दीश्वरके उस वचनको सुनकर अपने उस मुख्य गृहके साथ त्रिपुरसे निकलकर भाग गया। तदनन्तर वह बाण अग्नि, सौम और नारायणके रूपसे तीन भागोंमें विभक्त होकर उन तीनों नगरोंको पत्तेके दोनेकी तरह जलाकर भस्म कर दिया। द्विजवरो! वे तीनों पुर बाणके तेजसे उसी प्रकार जलकर नष्ट हो रहे थे, जैसे कुपुत्रके दोषसे आगेकी पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ ४५—५४ ॥

उस त्रिपुरमें ऐसे गृह बने थे जो सुमेरु, कैलास और मन्दराचलके अग्रभागकी तरह दीख रहे थे। जिनमें बड़े-बड़े किंवाड़ और झरोखे लगे हुए थे तथा छज्जाओंकी विचित्र छटा दीख रही थी। जो सुन्दर महलों, उत्कृष्ट कूटागारों (ऊपरी छतके कमरों), जल रखनेकी वेदिकाओं और खिड़कियोंसे सुशोभित थे। जिनके ऊपर सुवर्ण एवं चाँदीके बने हुए डंडोंमें बँधे हुए ध्वज और पताकाएँ फहरा रही थीं। ये सभी हजारोंकी संख्यामें दानवोंके उस उपद्रवके समय अग्निद्वारा जलाये जा रहे थे, जो आगकी तरह धधक रहे थे। दानवेन्द्रोंकी लियाँ, जिनमें कुछ महलोंके रमणीय शिखरोंपर बैठी थीं, कुछ वनों और उपवनोंमें धूम रही थीं, कुछ झरोखोंमें बैठकर दृश्य देख रही थीं कुछ मैदानमें धूम रही थीं—ये सभी अग्निद्वारा जलायी जा रही थीं। कोई अपने पतिको छोड़कर अन्यत्र जानेमें असमर्थ थी, अतः पतिके सम्मुख ही अग्निकी लपटोंमें आकर दग्ध हो

उवाच शतपत्राक्षी सास्त्राक्षीब कृताञ्जलिः ।
 हव्यवाहन भार्यां परस्य परतापन ।
 धर्मसाक्षी त्रिलोकस्य न मां स्पृष्टमिहार्हसि ॥ ६१
 शायितं च मया देव शिवया च शिवप्रभ ।
 शरेण प्रेहि मुक्त्वेदं गृहं च दयितं हि मे ॥ ६२
 एका पुत्रमुपादाय बालकं दानवाङ्ग्ना ।
 हुताशनसमीपस्था इत्युवाच हुताशनम् ॥ ६३
 बालोऽयं दुःखलब्धश्च मया पावक पुत्रकः ।
 नार्हस्येनमुपादातुं दयितं षण्मुखप्रिय ॥ ६४
 काश्चित् प्रियान् परित्यज्य पीडिता दानवाङ्ग्नाः ।
 निपतन्त्यर्णवजले शिञ्चमानविभूषणाः ॥ ६५
 तात पुत्रेति मातेति मातुलेति च विह्वलम् ।
 चक्रन्दुस्त्रिपुरे नार्यः पावकज्वालवेपिता: ॥ ६६
 यथा दहति शैलाग्निः साम्बुजं जलजाकरम् ।
 तथा स्त्रीवक्त्रपद्मानि चादहत् पुरेऽनलः ॥ ६७
 तुषारराशिः कमलाकराणां
 यथा दहत्यम्बुजकानि शीते ।
 तथैव सोऽग्निस्त्रिपुराङ्ग्नानां
 ददाह वक्त्रेक्षणपङ्कजानि ॥ ६८
 शराग्निपातात् समभिद्वुतानां
 तत्राङ्ग्नानामतिकोमलानाम् ।
 बभूव काञ्छीगुणनूपुराणा-
 माक्रन्दितानां च रवोऽति मिश्रः ॥ ६९
 दग्धार्थचन्द्राणि सवेदिकानि
 विशीर्णहर्ष्याणि सतोरणानि ।
 दग्धानि दग्धानि गृहाणि तत्र
 पतन्ति रक्षार्थमिवार्णवौघे ॥ ७०
 गृहैः पतद्विर्ज्वलनावलीढै-
 रासीत् समुद्रे सलिलं प्रतसम् ।
 कुपुत्रदोषैः प्रहतानुविद्धं
 यथा कुलं याति धनान्वितस्य ॥ ७१

गयी । कोई कमलनयनी नारी आँखोंमें आँसू भरे हुए हाथ जोड़कर कह रही थी—‘हव्यवाहन ! मैं दूसरेकी पत्नी हूँ। परतापन ! आप त्रिलोकीके धर्मके साक्षी हैं, अतः यहाँ मेरा स्पर्श करना आपके लिये उचित नहीं है।’ (कोई कह रही थी—) ‘शिवके समान कान्तिमान् अग्निदेव ! मुझ पतिव्रताने इस घरमें अपने पतिको सुला रखा है, अतः इसे छोड़कर आप दूसरी ओरसे चले जाइये; क्योंकि यह गृह मुझे परम प्रिय है।’ एक दानवपत्नी अपने शिशु पुत्रको गोदमें लेकर अग्निके समीप गयी और अग्निसे कहने लगी—‘स्वामीकार्तिकके प्रेमी पावक ! मुझे यह शिशु पुत्र बड़े दुःखसे प्राप्त हुआ है, अतः इसे ले लेना आपके लिये उचित नहीं है। यह मुझे परम प्रिय है।’ कुछ पीड़ित हुई दानव-पत्नियाँ अपने पतियोंको छोड़कर समुद्रके जलमें कूद रही थीं। उस समय उनके आभूषणोंसे शब्द हो रहा था। त्रिपुरमें आगकी लपटोंके भयसे काँपती हुई नारियाँ ‘हा तात !, हा पुत्र !, हा माता !, हा मामा !’ कहकर विह्वलतापूर्वक करुण-क्रन्दन कर रही थीं। जैसे पर्वताग्नि (दावाग्नि) कमलोंसहित सरोवरको जला देती है उसी प्रकार अग्निदेव त्रिपुरमें स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंको जला रहे थे ॥ ५५—६७ ॥

जिस प्रकार शीतकालमें तुषारराशि कमलोंसे भरे हुए सरोवरोंके कमलोंको नष्ट कर देती है उसी तरह अग्निदेव त्रिपुर-निवासिनी नारियोंके मुख और नेत्ररूप कमलोंको जला रहे थे। त्रिपुरमें बाणाग्निके गिरनेसे भयभीत होकर भागती हुई अत्यन्त कोमलाङ्गी सुन्दरियोंकी करधनीकी लड़ियों और पायजेबोंका शब्द आक्रन्दनके शब्दोंसे मिलकर अत्यन्त भयंकर लग रहा था। जिनमें अर्धचन्द्रसे सुशोभित वेदिकाएँ जल गयी थीं तथा तोरणसहित अट्टालिकाएँ जलकर छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। ऐसे गृह जलते-जलते समुद्रमें इस प्रकार गिर रहे थे मानो वे रक्षाके लिये उसमें कूद रहे हों। अग्निकी लपटोंसे झुलसे हुए गृहोंके समुद्रमें गिरनेसे उसका जल ऐसा संतप्त हो उठा था, जैसे सम्पत्तिशाली व्यक्तिका कुल कुपुत्रके दोषसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

गृहप्रतापैः क्वथितं समन्तात्
तदार्णवे तोयमुदीर्णवेगम्।
वित्रासयामास तिमीन् सनक्रां -
स्तिमिङ्ग्निलांस्तत्क्वथितांस्तथान्यान्॥ ७२
सगोपुरो मन्दरपादकल्पः
प्राकारवर्यस्तिपुरे च सोऽथ।
तैरेव सार्थं भवनैः पपात
शब्दं महान्तं जनयन् समुद्रे॥ ७३
सहस्रशृङ्गैर्भवनैर्यदासीत्
सहस्रशृङ्गः स इवाचलेशः।
नामावशेषं त्रिपुरं प्रजज्ञे
हुताशनाहारबलिप्रयुक्तम् ॥ ७४
प्रदद्यमानेन पुरेण तेन
जगत्सपातालदिवं प्रतसम्।
दुःखं महत्प्राप्य जलावमग्नं
हित्वा महान् सौधवरो मयस्य॥ ७५
तद् देवेशो वचः श्रुत्वा इन्द्रो वज्रधरस्तदा।
शशाप तद्गृहं चापि मयस्यादितिनन्दनः॥ ७६
असेव्यमप्रतिष्ठं च भयेन च समावृतम्।
भविष्यति मयगृहं नित्यमेव यथानलः॥ ७७
यस्य यस्य तु देशस्य भविष्यति पराभवः।
द्रक्ष्यन्ति त्रिपुरं खण्डं तत्रेदं नाशगा जनाः।
तदेतदद्यापि गृहं मयस्यामयवर्जितम्॥ ७८
ऋषय ऊचुः
भगवन् स मयो येन गृहेण प्रपलायितः।
तस्य नो गतिमाख्याहि मयस्य चमसोद्धव॥ ७९
सूत उवाच
दृश्यते दृश्यते यत्र ध्रुवस्तत्र मयास्पदम्।
देवद्विद् तु मयश्चातः स तदा खिन्नमानसः।
ततश्च युतोऽन्यलोकेऽस्मिंस्त्राणार्थं स चकार सः॥ ८०
तत्रापि देवताः सन्ति आसोर्यामाः सुरोत्तमाः।
तत्राशक्तं ततो गन्तुं तं चैकं पुरमुत्तमम्॥ ८१

उस समय समुद्रमें चारों ओर गिरते हुए गृहोंकी उष्णतासे खौलते हुए जलमें तूफान आ गया, जिससे मगरमच्छ, नाक, तिमिंगिल तथा अन्यान्य जलजन्तु संतस होकर भयभीत हो उठे। उसी समय त्रिपुरमें लगा हुआ मन्दराचलके समान ऊँचा परकोटा फाटकसहित उन गिरते हुए भवनोंके साथ-ही-साथ महान् शब्द करता हुआ समुद्रमें जा गिरा। जो त्रिपुर थोड़ी देर पहले सहस्रों ऊँचे-ऊँचे भवनोंसे युक्त होनेके कारण सहस्र शिखरवाले पर्वतकी भाँति शोभा पा रहा था वही अग्निके आहार और बलिके रूपमें प्रयुक्त होकर नाममात्र अवशेष रह गया। जलते हुए उस त्रिपुरके तापसे पाताल और स्वर्गलोकसहित सारा जगत् संतस हो उठा। इस प्रकार महान् कष्ट झेलता हुआ वह त्रिपुर समुद्रके जलमें निमग्न हो गया। इसमें एकमात्र मयका महान् भवन ही बच गया था। अदिति-नन्दन वज्रधारी देवराज इन्द्रने जब ऐसी बात सुनी तो मयके उस गृहको शाप देते हुए बोले—‘मयका वह गृह किसीके सेवन करनेयोग्य नहीं होगा। उसकी संसारमें प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह अग्निकी तरह सदा भयसे युक्त बना रहेगा। जिस-जिस देशकी पराजय होनेवाली होगी उस-उस देशके विनाशोन्मुख निवासी इस त्रिपुर-खण्डका दर्शन करेंगे।’ मयका वह गृह आज भी आपत्तियोंसे रहित है॥ ६८—७८॥

ऋषियोंने पूछा—चमससे उत्पन्न होनेवाले ऐश्वर्यशाली सूतजी! वह मय जिस गृहको साथ लेकर भाग गया था, उस मयकी आगे चलकर क्या गति हुई? यह हमें बतलाइये॥ ७९॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! जहाँ ध्रुव दिखलायी पड़ते हैं वही मयका भी स्थान दीख पड़ता था, किंतु कुछ समयके बाद देवशत्रु मयका मन खिन्न हो गया, तब वह अपनी रक्षाके निमित्त वहाँसे हटकर अन्य लोकमें चला गया। वहाँ भी आसोर्याम नामक श्रेष्ठ देवता निवास करते थे, परंतु अब मयमें वहाँसे अन्यत्र जानेकी शक्ति नहीं रह गयी थी।

शिवः सृष्टा गृहं प्रादान्मयायैव गृहार्थिने।
 विराम सहस्राक्षः पूजयामास चेश्वरम्।
 पूज्यमानं च भूतेशं सर्वे तुष्टुवुरीश्वरम्॥८२
 सम्पूज्यमानं त्रिदशैः समीक्ष्य
 गणैर्गणेशाधिपतिं तु मुख्यम्।
 हर्षाद्ववल्लुर्जहसुश्रु देवा
 जगमुन्ननदुस्तु विषक्तहस्ताः॥८३
 पितामहं वन्द्य ततो महेशं
 प्रगृह्य चापं प्रविसृज्य भूतान्।
 रथाच्च सम्पत्य हरेषुदग्धं
 क्षिसं पुरं तन्मकरालये च॥८४
 य इमं रुद्रविजयं पठते विजयावहम्।
 विजयं तस्य कृत्येषु ददाति वृषभध्वजः॥८५
 पितृणां वापि श्राद्धेषु य इमं श्रावयिष्यति।
 अनन्तं तस्य पुण्यं स्यात् सर्वयज्ञफलप्रदम्॥८६
 इदं स्वस्त्ययनं पुण्यमिदं पुंसवनं महत्।
 इदं श्रुत्वा पठित्वा च यान्ति रुद्रसलोकताम्॥८७

इति श्रीमास्त्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने त्रिपुरदाहो नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४० ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें त्रिपुरदाह नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४० ॥

तब भक्तवत्सल शंकरजीने एक उत्तम पुर और गृहका निर्माण कर गृहार्थी मयको प्रदान कर दिया। यह देखकर सहस्र नेत्रधारी इन्द्र शान्त हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने महेश्वरकी पूजा की। उस समय सभी देवताओंने पूजित होते हुए भूतपति शंकरकी स्तुति की। तदनन्तर देवताओं और गणेश्वरोंद्वारा प्रधान गणेशाधिपति महेश्वरकी पूजा होते देखकर देवगण हाथ उठाकर हर्षपूर्वक जय-जयकार, अट्ठास और सिंहनाद करने लगे। इसके बाद रथसे निकलकर उन्होंने ब्रह्मा और शंकरजीकी वन्दना की। फिर हाथमें धनुष ग्रहणकर और भूतगणोंसे विदा होकर वे अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए; क्योंकि शंकरजीके बाणसे भस्म हुआ त्रिपुर महासागरमें निमग्न हो चुका था। जो मनुष्य विजय प्रदान करनेवाले इस रुद्रविजयका पाठ करता है, उसे भगवान् शंकर सभी कार्योंमें विजय प्रदान करते हैं। जो मनुष्य पितरोंके श्राद्धोंके अवसरपर इसे पढ़कर सुनाता है उसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाले अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। यह रुद्रविजय महान् मङ्गलकारक, पुण्यप्रद और संतानप्रदायक है। इसे पढ़ और सुनकर लोग रुद्रलोकमें चले जाते हैं॥ ८०—८७॥

एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय

पुरुषवाका सूर्य-चन्द्रके साथ समागम और पितृतर्पण, पर्वसंधिका वर्णन तथा श्राद्धभोजी पितरोंका निरूपण

ऋष्य ऊचुः

कथं गच्छत्यमावास्यां मासि मासि दिवं नृपः।
 ऐलः पुरुषवाः सूत तर्पयेत कथं पितृन्।
 एतदिच्छामहे श्रोतुं प्रभावं तस्य धीमतः॥ १

सूत उवाच

एतदेव तु पप्रच्छ मनुः स मधुसूदनम्।
 सूर्यपुत्राय चोवाच यथा तन्मे निबोधतः॥ २

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! इलानन्दन महाराज पुरुषवा प्रति मासकी अमावास्याको किस प्रकार स्वर्गलोकमें जाते हैं और वहाँ अपने पितरोंको कैसे तृप्त करते हैं? उन बुद्धिमान् नरेशके इस प्रभावको हमलोग सुनना चाहते हैं॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें महाराज मनुने भगवान् मधुसूदनसे यही प्रश्न किया था। उस समय भगवान् ने उन सूर्यपुत्र मनुके प्रति जो कुछ कहा था, वही मैं बतला रहा हूँ, आपलोग ध्यान देकर सुनिये॥ २॥

मत्स्य उवाच

तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं विस्तरेण तु ।
 ऐलस्य दिवि संयोगं सोमेन सह धीमता ॥ ३
 सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितृणां तर्पणं तथा ।
 सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥ ४
 यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च नक्षत्राणां समागतौ ।
 अमावास्यां निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले ॥ ५
 तदा स गच्छति द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ।
 अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ ॥ ६
 अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तिष्ठति ।
 प्रचस्कन्द ततः सोममर्चयित्वा परिश्रमात् ॥ ७
 ऐलः पुरुरवा विद्वान् मासि श्राद्धचिकीर्षया ।
 ततः स दिवि सोमं वै ह्युपतस्थे पितृनपि ॥ ८
 द्विलवं कुहूमात्रं च तावुभौ तु निधाय सः ।
 सिनीवालीप्रमाणात्पकुहूमात्रब्रतोदये ॥ ९
 कुहूमात्रं पित्रुदेशं ज्ञात्वा कुहूमुपासते ।
 तमुपास्य ततः सोमं कलापेक्षी प्रतीक्षते ॥ १०
 स्वधामृतं तु सोमाद् वै वसंस्तेषां च तृसये ।
 दशभिः पञ्चभिश्चैव स्वधामृतपरिस्त्रवैः ।
 कृष्णपक्षभुजां प्रीतिर्द्विहते परमांशुभिः ॥ ११
 सद्योऽभिक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ।
 निवापेष्वथ दत्तेषु पित्र्येण विधिना तु वै ॥ १२
 स्वधामृतेन सौम्येन तर्पयामास वै पितृन् ।
 सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥ १३
 ऋतुरग्निः स्मृतो विप्रैर्ऋतुं संवत्सरं विदुः ।
 जज्ञिरे ऋतवस्तस्मादृतुभ्यो ह्यार्तवाऽभवन् ॥ १४
 पितरोऽर्तवोऽर्धमासा विज्ञेया ऋतुसूनवः ।
 पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याब्दसूनवः ।
 प्रपितामहाः स्मृता देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ॥ १५

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! मैं इलापुत्र पुरुरवाका प्रभाव, स्वर्गलोकमें उसका बुद्धिमान् चन्द्रमाके साथ संयोग, उन चन्द्रमासे अमृतकी उपलब्धि तथा पितृतर्पणकी बात विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ । सौम्य, बर्हिषद्, काव्य तथा अग्निष्वात्तसंज्ञक पितरों तथा नक्षत्रोंपर विचरण करते हुए सूर्य और चन्द्रमा जिस समय अमावास्या तिथिको एक मण्डल अर्थात् एक राशिपर स्थित होते हैं, उस समय वह प्रत्येक अमावास्याको सूर्य और चन्द्रमाका दर्शन करनेके लिये स्वर्गमें जाता है और वहाँ मातामह (नाना) और पितामह (बाबा)—दोनोंको अभिवादन कर कालकी प्रतीक्षा करता हुआ कुछ दिनतक ठहरा रहता है । चन्द्रमासे अमृतके क्षरण होनेपर उससे परिश्रमपूर्वक पितरोंकी पूजा करके लौटता है । किसी महीनेमें श्राद्ध करनेकी इच्छासे इलानन्दन विद्वान् पुरुरवा स्वर्गलोकमें चन्द्रमा और पितरोंके निकट गया और दो लवमात्र कुहू अमावास्यामें उसने दोनोंको स्थापित किया; क्योंकि पितृ-व्रतमें जब सिनीवालीका प्रमाण थोड़ा तथा कुहू (अमावास्या) प्रशस्त मानी गयी है । अतः कुहूका समय प्राप्त हुआ जानकर वह पितरोंके उद्देश्यसे कुहूकी उपासना करता है । उसकी उपासना करनेके पश्चात् वह कालकी प्रतीक्षा करता हुआ चन्द्रमाकी भी प्रतीक्षा करता है । वहाँ रहते हुए उसे पितरोंकी तृसिके लिये चन्द्रमासे स्वधारूप अमृत प्राप्त होता है । चन्द्रमाकी पंद्रह किरणोंसे स्वधामृतका क्षरण होता है । कृष्णपक्षमें श्राद्धभोजी पितरोंका उन श्रेष्ठ किरणोंसे बड़ा प्रेम रहता है तथा अन्य पितर उनसे द्वेष करते हैं । पुरुरवा तुरंत अभिक्षरित हुए उस उत्तम मधुको पितृ-श्राद्धकी विधिके अनुसार श्राद्धके समय पितरोंको प्रदान करता है । इस प्रकार वह उत्तम स्वधामृतसे सौम्य, बर्हिषद्, काव्य तथा अग्निष्वात्त पितरोंको तृप्त करता रहता है । महर्षियोंने ऋतुको अग्नि बतलाया है और ऋतुको संवत्सर भी कहते हैं । उस संवत्सरसे ऋतुकी उत्पत्ति होती है और ऋतुओंसे उत्पन्न हुए पितर आर्तव कहलाते हैं । आर्तव और अर्धमास पितरोंको ऋतुका पुत्र तथा ऋतुस्वरूप पितामह और अमावास्याको संवत्सरका पुत्र जानना चाहिये । प्रपितामह और पञ्च संवत्सररूप देवगण ब्रह्माके पुत्र माने गये हैं ॥ ३—१५ ॥

सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्ता इति त्रिधा ।
 गृहस्था ये तु यज्वानो हविर्यज्ञार्तवाश्च ये ।
 स्मृता बर्हिषदस्ते वै पुराणे निश्चयं गताः ॥ १६
 गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्तवाः स्मृताः ।
 अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दांस्तु निबोधत ॥ १७
 तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः ।
 सोमस्त्विडवत्सरश्चैव वायुश्चैवानुवत्सरः ॥ १८
 रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः ।
 कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमाः स्त्रवते सुधाम् ॥ १९
 एते स्मृता देवकृत्याः सोमपाश्चोष्पपाश्च ये ।
 तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरुरवाः ॥ २०
 यस्मात्प्रसूयते सोमो मासि मासि विशेषतः ।
 ततः स्वधामृतं तद्वै पितृणां सोमपायिनाम् ।
 एतत् तदमृतं सोममवाप मधु चैव हि ॥ २१
 ततः पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
 आप्यायते सुषुम्णोन सोमं तु सोमपायिनम् ॥ २२
 निःशेषं वै कलाः पूर्वा युगपद्म्यापयन्पुरा ।
 सुषुम्णाऽप्यायमानस्य भागं भागमहःक्रमात् ॥ २३
 कलाः क्षीयन्ति कृष्णास्ताः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च ।
 एवं सा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥ २४
 पौर्णमास्यां स दूश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ।
 एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षेऽप्यहःक्रमात् ।
 देवैः पीतसुधं सोमं पुरा पश्चात्पिबेद् रविः ॥ २५
 पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मैकेन भास्करः ।
 आप्यायत्सुषुम्णोन भागं भागमहःक्रमात् ॥ २६
 सुषुम्णाप्यायमानस्य शुक्ला वर्धयन्ति वै कलाः ।
 तस्माद्वसन्ति वै कृष्णाः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च ॥ २७
 एवमाप्यायते सोमः क्षीयते च पुनः पुनः ।
 समृद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ २८
 इत्येष पितृमान् सोमः स्मृतस्तद्वत्सुधात्मकः ।
 कान्तः पञ्चदशौः सार्थं सुधामृतपरिस्त्रवैः ॥ २९

सौम्य, बर्हिषद्, काव्य और अग्निष्वात्—पितरोंके ये तीन भेद हैं। इनमें जो गृहस्थ, यज्ञकर्ता और हवन करनेवाले हैं, वे आर्तव पितर पुराणमें बर्हिषद् नामसे निश्चित किये गये हैं। गृहस्थाश्रमी और यज्ञकर्ता आर्तव पितर अग्निष्वात् कहलाते हैं। अष्टकापति आर्तव पितरोंको काव्य कहा जाता है। अब पञ्चाब्दोंको सुनिये। इनमें, अग्नि संवत्सर, सूर्य परिवत्सर, सोम इद्वत्सर, वायु अनुवत्सर और रुद्र वत्सर हैं। ये पञ्चाब्द युगात्मक होते हैं। समयानुसार इनपर स्थित हुए चन्द्रमा अमृतका क्षरण करते हैं। ये देवकर्म कहे जाते हैं। जबतक पुरुरवा वहाँ रहता था तबतक वह जो सोमप और ऊष्मप पितर हैं, उनको भी उसी अमृतसे तृप्त करता था। चूँकि चन्द्रमा प्रत्येक मासमें विशेषरूपसे अमृतका क्षरण करते हैं और वह सोमपायी पितरोंको स्वधामृतरूपसे प्राप्त होता है। इसीलिये वह अमृतस्वरूप मधु सोमको प्राप्त होता है। इस प्रकार पितरोंद्वारा चन्द्रमाका अमृत पी लिये जानेपर सूर्यदेव अपनी एकमात्र सुषुम्णा नामकी किरणद्वारा उन सोमपायी चन्द्रमाको पुनः परिपूर्ण कर देते हैं। इस प्रकार सूर्य सुषुम्णाद्वारा पूर्ण किये जाते हुए चन्द्रमाकी पहलेकी सम्पूर्ण कलाओंको दिनके क्रमसे थोड़ा-थोड़ा करके पूर्ण करते हैं। चन्द्रमाकी कलाएँ कृष्णपक्षमें क्षीण हो जाती हैं और शुक्लपक्षमें वे पुनः पूर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार सूर्यके प्रभावसे चन्द्रमाका शरीर पूर्ण होता रहता है। इसी कारण शुक्लपक्षमें दिनके क्रमसे परिपूर्ण किये गये चन्द्रमाका सम्पूर्ण मण्डल पूर्णिमा तिथिको श्वेत वर्णका दिखायी पड़ता है। पहले देवगण चन्द्रमासे स्वित हुए अमृतको पीते हैं, उसके बाद सूर्य भी सोमका पान करते हैं। सूर्य अपनी एक किरणसे पंद्रह दिनोंतक सोमको पीते हैं और पुनः दिनके क्रमसे थोड़ा-थोड़ा कर सुषुम्णा किरणद्वारा उसे पूर्ण कर देते हैं। इसी कारण शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कलाएँ बढ़ती हैं और कृष्णपक्षमें वे क्षीण होती हैं, यही इनका क्रम है। इस प्रकार चन्द्रमा पंद्रह दिनोंतक बढ़ते हैं और पुनः पंद्रह दिनतक क्षीण होते रहते हैं। चन्द्रमाकी इस प्रकारकी समृद्धि और हास शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्षके आश्रयसे होते हैं। इस प्रकार सुधामृतस्नावी पंद्रह किरणोंसे सुशोभित ये चन्द्रमा सुधात्मक एवं पितृमान् कहे जाते हैं ॥ १६—२९ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि पर्वाणां संधयश्च याः ।
 यथा ग्रन्थन्ति पर्वाणि आवृत्तादिक्षुवेणुवत् ॥ ३०
 तथाब्दपासाः पक्षाश्च शुक्लाः कृष्णास्तु वै स्मृताः ।
 पौर्णमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः संधयस्तथा ॥ ३१
 अर्धमासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च ।
 अग्न्याधानक्रिया यस्तान्नीयन्ते पर्वसन्धिषु ॥ ३२
 तस्मात् पर्वणो ह्यादौ प्रतिपद्यादिसंधिषु ।
 सायाह्ने अनुमत्याश्च द्वौ लवौ काल उच्यते ।
 लवौ द्वावेव राकायाः कालोऽज्ञेयोऽपराह्णिकः ॥ ३३
 प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णिके ।
 सायाह्ने प्रतिपद्येष स कालः पौर्णमासिकः ॥ ३४
 व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखादूर्ध्वं युगान्तरम् ।
 युगान्तरोदिते चैव चन्द्रे लेखोपरि स्थिते ॥ ३५
 पूर्णमासव्यतीपातो यदा पश्येत्परस्परम् ।
 तौ तु वै प्रतिपद्यावत्स्मिन्काले व्यवस्थितौ ॥ ३६
 तत्कालं सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा संख्यातुमर्हसि ।
 स चैव सत्क्रियाकालः षष्ठः कालोऽभिधीयते ॥ ३७
 पूर्णेन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसंधिषु पूर्णिमा ।
 तस्मादाप्यायते नक्तं पौर्णमास्यां निशाकरः ॥ ३८
 यदान्योन्यवतो पाते पूर्णिमां प्रेक्षते दिवा ।
 चन्द्रादित्योऽपराह्ने तु पूर्णत्वात्पूर्णिमा स्मृता ॥ ३९
 यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह ।
 तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥ ४०
 अत्यर्थं राजते यस्मात्पौर्णमास्यां निशाकरः ।
 रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥ ४१
 अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
 एका पञ्चदशी रात्रिरमावस्या ततः स्मृता ॥ ४२
 उद्दिश्य ताममावास्यां यदा दर्शं समागतौ ।
 अन्योन्यं चन्द्रसूर्यो तु दर्शनाद् दर्शं उच्यते ॥ ४३

इसके बाद अब मैं पर्वोंकी जो संधियाँ हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ। जैसे गत्रे और बाँसमें गोलाकार गाँठें बनी रहती हैं वैसे ही वर्ष, मास, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, अमावास्या और पूर्णिमाके भेद—ये सभी पर्वकी ग्रन्थियाँ और संधियाँ हैं। (प्रत्येक पक्षमें) प्रतिपद्-द्वितीया आदि पंद्रह तिथियाँ होती हैं। चूँकि अग्न्याधान आदि क्रियाएँ पर्वसंधियोंमें सम्पत्र की जाती हैं, अतः उन्हें (अमा, पूर्णिमा) पर्वकी तथा प्रतिपदाकी संधियोंमें करना चाहिये। चतुर्दशी और पूर्णिमा आदिके दो लवको पर्वकाल कहा जाता है तथा राकाके दूसरे दिनमें आनेवाले दो लवको पर्वकाल जानना चाहिये। कृष्णपक्षके अपराह्णिक कालके व्यतीत हो जानेपर सायंकालमें प्रतिपदाके योगमें जो काल आता है उसे पौर्णमासिक कहते हैं। सूर्यके लेखा (विषुव)-के ऊपर व्यतीपातमें स्थित होनेपर युगान्तर कहलाता है। उस समय चन्द्रमा लेखाके ऊपर स्थित युगान्तरमें उदित होते हैं। इस प्रकार जब चन्द्रमा और व्यतीपात परस्पर एक-दूसरेको देखें और प्रतिपदा तिथितक उसी अवस्थामें स्थित रहें तो उस समय सूर्यके उद्देश्यसे उस समयको देखकर गणना करनी चाहिये। उसे सत्क्रियाकाल नामक छठा काल कहते हैं। शुक्लपक्षके पूर्ण होनेपर रात्रिकी संधिमें जब पूर्णचन्द्र उदय होते हैं, तब उसे पूर्णिमा कहते हैं। इसीलिये चन्द्रमा पूर्णिमाकी रातमें अपनी सभी कलाओंसे पूर्ण हो जाते हैं। पूर्णिमा तिथिकी हास-वृद्धि होती रहती है, अतः यदि वृद्धिके समय दूसरे दिन सूर्य और चन्द्र दिनमें पूर्णिमामें दीखते हैं तो वह तिथि पूर्ण होनेके कारण पूर्णिमा कहलाती है। यदि दूसरे दिन प्रतिपदाका योग होनेमें चन्द्रमाकी एक कला हीन हो गयी तो उस पूर्णिमाको अनुमति कहते हैं। यह अनुमति देवताओंसहित पितरोंको परम प्रिय है। चूँकि पूर्णिमाकी रातमें चन्द्रमा अत्यन्त सुशोभित होते हैं, इसलिये चन्द्रमाको प्रिय होनेके कारण उस पूर्णिमाको विद्वानोंने राका नामसे अभिहित किया है। कृष्णपक्षकी पंद्रहवीं रात्रिको जब सूर्य और चन्द्र एक साथ एक नक्षत्रपर स्थित होते हैं, तब उसे अमावास्या कहा जाता है ॥ ३०—४२ ॥

उस अमावास्याको लक्ष्य कर जब सूर्य और चन्द्रमा दर्शपर आ जाते हैं और परस्पर एक-दूसरेको देखते हैं, तब उसे दर्श कहते हैं।

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां स कालः पर्वसंधिषु ।
 द्व्यक्षरः कुहुमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः ॥ ४४
 दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतीह वै ।
 दिवा तदूर्ध्वं रात्र्यां तु सूर्ये प्रासे तु चन्द्रमाः ।
 सूर्येण सहसोदगच्छेत्ततः प्रातस्तनात्तु वै ॥ ४५
 समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नात्रिपतन् रविः ।
 प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् ॥ ४६
 निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ।
 स तदान्वाहुते कालो दर्शस्य च वषट्क्रियाः ।
 एतद्वृत्तमुखं ज्ञेयममावास्यां तु पार्वणम् ॥ ४७
 दिवा पर्व त्वमावास्यां क्षीणेन्द्रौ धवले तु वै ।
 तस्माद् दिवा त्वमावास्यां गृह्यते यो दिवाकरः ॥ ४८
 कुहृति कोकिलेनोक्तं यस्मात्कालात् समाप्यते ।
 तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहूः स्मृता ॥ ४९
 सिनीवालीप्रमाणं तु क्षीणशेषो निशाकरः ।
 अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली तदा स्मृता ॥ ५०
 अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
 एतासां द्विलयः कालः कुहुमात्रा कुहूः स्मृता ॥ ५१
 इत्येष पर्वसन्धीनां कालो वै द्विलवः स्मृतः ।
 पर्वणां तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवषट्क्रियाः ॥ ५२
 चन्द्रसूर्यव्यतीपाते समे वै पूर्णिमे उभे ।
 प्रतिपत्त्रपत्रस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः ॥ ५३
 कालः कुहूसिनीवाल्यो समृद्धो द्विलवः स्मृतः ।
 अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकालः कलाः स्मृताः ॥ ५४
 यस्मादापूर्यते सोमः पञ्चदश्यां तु पूर्णिमा ।
 दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ॥ ५५
 तस्मात् पञ्चदशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी ।
 तस्मात् सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्यां मया क्षयः ॥ ५६

अमावास्यामें पर्वसंधिके अवसरपर दो-दो लव पर्वकाल कहलाते हैं। इनमें प्रतिपदाके योगवाला पर्वकाल कुहू कहलाता है। जिस दिन दोपहरतक अमावास्यामें चन्द्रमाका सम्पर्क बना रहे और उसके बाद रात्रिके प्रातःकाल सूर्यमण्डलसे पृथक् हो जायें तो शुक्लपक्षकी प्रतिपदामें प्रातःकाल दो लव पर्वकाल कहलाता है। इस प्रकार सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलके पृथक् होते समय अमावास्याके उस मध्यवर्ती कालको अन्वाहुति कहते हैं। इसमें पितरोंके निमित्त वषट् क्रियाएँ की जाती हैं। इसे ऋतुमुख और अमावास्याको पार्वण जाना चाहिये। दिनमें जब क्षीण चन्द्रमा सूर्यके साथ मिलते हैं तब अमावास्याका वह काल पर्वकाल कहलाता है। इसीलिये दिनमें अमावास्याके उस पर्वकालमें सूर्यके पहुँचनेपर सूर्य गृहीत हो जाते हैं अर्थात् सूर्यग्रहण लगता है। कोयलद्वारा उच्चरित 'कुहू' शब्द जितने समयमें समाप्त होता है, अमावास्याका उतना मुख्य काल 'कुहू' नामसे कहा जाता है। सिनीवालीका प्रमाण यह है कि जब क्षीण चन्द्रमा सूर्यमें प्रवेश करते हैं तब वह अमावास्या सिनीवाली कही जाती है। अनुमति, राका, सिनीवाली और कुहू—इनका दो लवकाल पर्वकाल होता है। कुहू शब्दके उच्चारणपर्यन्त कालको कुहू कहते हैं। इस प्रकार पर्वसंधियोंका यह काल दो लवका बतलाया जाता है और यह पर्वोंके समान फलदायक होता है। इसमें हवन और वषट् क्रियाएँ की जाती हैं। चन्द्रमा और सूर्यका व्यतिपातपर स्थित होना तथा दोनों (अमावास्या और पूर्णिमा) पूर्णिमाएँ—ये सभी एक-से पुण्यदायक हैं। प्रतिपदाके संयोगसे उत्पन्न होनेवाला पर्वकाल दो लवका होता है। इसी प्रकार कुहू और सिनीवालीके सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ पर्वकाल भी दो लवका ही माना जाता है। चन्द्रमा जब सूर्यमण्डलसे बाहर होते हैं, तब वह पर्वकाल एक कलाका बतलाया जाता है। चूँकि दिनके क्रमसे पंद्रहवीं तिथिको चन्द्रमा पंद्रह कलाओंद्वारा पूर्ण किये जाते हैं, इसलिये उस तिथिको पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार चन्द्रमा पंद्रह कलाओंवाले* ही हैं, उनमें सोलहवीं कला नहीं है। इसी कारण मैंने पंद्रहवीं तिथिको चन्द्रमाका

* इसका विस्तृत वर्णन सूर्यसिद्धान्त, वृहत्संहिता आदिमें है। १६ वीं बीजकलासहित १५ ह्यास-वृद्धियुक्त कलाओंका वर्णन शारदातिलक आदिमें इस प्रकार है—‘अमृता मानदा नन्दा पूषा तुष्टि रतिर्धृतिः । शाशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्सना श्रीः प्रीतिरङ्गदा ॥ पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः ।’ (शारदातिलक २। १२-१३)

इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्धनाः।
आर्तवा ऋष्टवोऽथाब्दा देवास्तान्भावयन्ति हि ॥ ५७

अतः परं प्रवक्ष्यामि पितृश्राद्धभुजस्तु ये।
तेषां गतिं च सत्तत्त्वं प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि ॥ ५८
न मृतानां गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः।
तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मासचक्षुषा ॥ ५९
अत्र देवान्पितृश्चैते पितरो लौकिकाः स्मृताः।
तेषां ते धर्मसामर्थ्यात्स्मृताः सायुज्यगा द्विजैः ॥ ६०
यदि वाश्रमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान्।
अन्ये चात्र प्रसीदन्ति श्रद्धायुक्तेषु कर्मसु ॥ ६१
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि।
श्राद्धेन विद्यया चैव चात्रदानेन सप्तथा ॥ ६२
कर्मस्वेवैषु ये सक्ता वर्तन्त्या देहपातनात्।
देवैस्ते पितृभिः सार्धमूष्मपैः सोमपैस्तथा।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्त उपासते ॥ ६३
प्रजावतां प्रसिद्धैषा उक्ता श्राद्धकृतां च वै।
तेषां निवापे दत्तं हि तत्कुलीनैस्तु बान्धवैः ॥ ६४
मासश्राद्धं हि भुज्ञानास्तेऽप्येते सोमलौकिकाः।
एते मनुष्याः पितरो मासश्राद्धभुजस्तु वै ॥ ६५
तेभ्योऽपरे तु ये त्वन्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेषु स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥ ६६
भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये।
स्वकर्माण्यनुशोचन्तो यातनास्थानमागताः ॥ ६७
दीर्घाश्चैवातिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवाससः।
क्षुत्पिपासाभिभूतास्ते विद्रवन्ति त्वितस्ततः ॥ ६८
सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्च सर्वशः।
परान्नान्यभिकाङ्क्षन्तः काल्यमाना इतस्ततः ॥ ६९
स्थानेषु पात्यमाना ये यातनास्थेषु तेषु वै।
शाल्मल्यां वैतरण्यां च कुम्भीपाकेद्वालुके ॥ ७०
असिपत्रवने चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः।
तत्रस्थानां तु तेषां वै दुःखितानामशायिनाम् ॥ ७१

क्षय बतलाया है। इस प्रकार ये सोमपायी देव-पितर सोमकी वृद्धि करनेवाले हैं और ऋतु एवं अव्दसे सम्बन्धित आर्तवसंज्ञक देवगण उन्हेंके परिपोषक हैं ॥ ४३—५७ ॥

इसके बाद अब मैं जो श्राद्धभोजी पितर हैं, उनकी गति, उनका उत्तम तत्त्व तथा उनके निमित्त दिये गये श्राद्धकी प्राप्तिका वर्णन कर रहा हूँ। मृतकोंके आवागमनका रहस्य तो उत्कृष्ट तपोबलसम्पन्न तपस्वी भी नहीं जान सकते, फिर चर्मचक्षुधारी साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है। इन श्राद्धभोजियोंमें देवता और पितर दोनों हैं। इनमें जो अपने धर्मके बलसे सायुज्य मुक्तिको प्राप्त कर चुके हैं अथवा आश्रमधर्मका पालन करते हुए ज्ञान-प्राप्तिमें लगे हुए हैं और श्रद्धायुक्त कर्मोंके सम्पन्न होनेपर प्रसन्न होते हैं, उन्हें महर्षिगण लौकिक पितर कहते हैं। ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, संतान, श्राद्ध, विद्या और अन्नदान—ये भूतलपर प्रधान धर्म कहे गये हैं। जो लोग मृत्युपर्यन्त इन सातों धर्मोंका पालन करते हुए इनमें आसक्त रहते हैं, वे ऊष्मप तथा सोमप देवताओं और पितरोंके साथ स्वर्गलोकमें जाकर आनन्दका उपभोग करते हुए पितरोंकी उपासना करते हैं। ऐसी प्रसिद्धि उन संतानयुक्त श्राद्धकर्ताओंके लिये कही गयी है, जिनके लिये उनके कुलीन भाई-बन्धुओंने दानके अवसरपर श्राद्ध आदि प्रदान किया है। मासिक श्राद्धमें भोजन करनेवाले पितर चन्द्रलोकवासी हैं। ये मासश्राद्धभोजी पितर मनुष्योंके पितर हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य लोग कर्मानुसार प्राप्त हुई योनियोंमें कष्ठ झेल रहे हैं, आश्रमधर्मसे श्रेष्ठ हो गये हैं, जिनके लिये स्वाहा-स्वधाका प्रयोग हुआ ही नहीं है, जो शरीरके नष्ट होनेपर यमलोकमें प्रेत होकर दुर्गति भोग रहे हैं, नरक-स्थानपर पहुँचकर अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप करते हैं, लम्बे शरीरवाले, अत्यन्त कृशकाय, लम्बी दाढ़ियोंसे युक्त, वस्त्रहीन और भूख एवं प्याससे व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ते हैं, नदी, सरोवर, तडाग और जलाशयोंपर सब ओर दूसरोंके द्वारा दिये गये अन्नकी ताकमें इधर-उधर घूमते रहते हैं, शाल्मली, वैतरणी, कुम्भीपाक, तसवालुका और असिपत्रवन नामक भीषण नरकोंमें अपने कर्मानुसार गिराये जाते हैं तथा उन नरकोंमें पड़े हुए जो निद्रारहित हो दुःख भोग रहे हैं,

तेषां लोकान्तरस्थानां बान्धवैर्नामगोत्रतः ।
भूमावसव्यं दर्भेषु दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै ।
प्राप्तांस्तु तर्पयन्त्येव प्रेतस्थानेष्वधिष्ठितान् ॥ ७२ ।।
अप्राप्ता यातनास्थानं प्रभ्रष्टा ये च पञ्चधा ।
पश्चाद्ये स्थावरान्ते वै भूतानीके स्वकर्मभिः ॥ ७३ ।।
नानारूपासु जातीनां तिर्यग्योनिषु मूर्तिषु ।
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ॥ ७४ ।।
तस्मिस्तस्मिस्तदाहारे श्राद्धे दत्तं तु प्रीणयेत् ।
काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नुवन्त्यन्नमादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठति ॥ ७५ ।।
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो बिन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धेषु दृष्टान्तो मन्त्रः प्रापयते तु तम् ॥ ७६ ।।
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं मनुर्ब्रवीत् ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ॥ ७७ ।।
गतागतज्ञः प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ७८ ।।
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।
अन्योऽन्यपितरो होते देवाश्च पितरो दिवि ॥ ७९ ।।
एते तु पितरो देवा मनुष्याः पितरश्च ये ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ८० ।।
इत्येष विषयः प्रोक्तः पितृणां सोमपायिनाम् ।
एतत्पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयं गतम् ॥ ८१ ।।
इत्येष सोमसूर्यभ्यामैलस्य च समागमः ।
अवासिं श्रद्धया चैव पितृणां चैव तर्पणम् ॥ ८२ ।।
पर्वणां चैव यः कालो यातनास्थानमेव च ।
समाप्तात्कीर्तितस्तुभ्यं सर्ग एष सनातनः ॥ ८३ ।।
वैरूप्यं येन तत्सर्वं कथितं त्वेकदेशिकम् ।
अशक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ॥ ८४ ।।
स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सर्गो मयेरितः ।
विस्तरेणानुपूर्वाच्च भूयः किं कथयामि वः ॥ ८५ ।।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तने श्राद्धानुकीर्तनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके मन्वन्तरानुकीर्तनके प्रसङ्गमें श्राद्धानुकीर्तन नामक एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४१ ॥

उन लोकान्तरमें स्थित जीवोंके लिये उनके भाई-बन्धुओंद्वारा यहाँ भूतलपर जब उनका नाम-गोत्र उच्चारण कर अपसव्य होकर कुशोंपर तीन पिण्ड प्रदान किये जाते हैं तब फ्रेस्थानोंमें स्थित होनेपर भी वे पिण्ड उन्हें प्राप्त होकर तृप्त करते हैं ॥ ५८—७२ ॥

जो नरकोंमें न जाकर पाँच प्रकारसे विभक्त होकर भ्रष्ट हो चुके हैं अर्थात् जो मृत्युके उपरान्त अपने कर्मोंके अनुसार स्थावर, भूत-प्रेत, अनेकों प्रकारकी जातियाँ, तिर्यग्योनियों एवं अन्य जन्मोंमें जन्म ले चुके हैं, वहाँ उन-उन योनियोंमें वे जैसे आहारवाले होते हैं, उन्हीं-उन्हीं योनियोंमें उसी आहारके रूपमें परिणत होकर श्राद्धमें दिया गया पिण्ड उन्हें तृप्त करता है । यदि श्राद्धोपयुक्त कालमें न्यायोपार्जित अन्न (मृतकोंके निमित्त) विधिपूर्वक सत्पात्रको दान किया जाता है तो वह अन्न वे मृतक जहाँ-कहीं भी रहते हैं, उन्हें प्राप्त होता है । जैसे बछड़ा गौओंमें विलीन हुई अपनी माँको ढूँढ़ निकालता है उसी प्रकार श्राद्धोंमें प्रयुक्त हुआ मन्त्र (दानकी वस्तुओंको) उस जीवके पास पहुँचा देता है । इस प्रकार विधानपूर्वक श्रद्धासहित दिया गया श्राद्ध-दान उस जीवको प्राप्त होता है—ऐसा मनुने कहा है । साथ ही महर्षि सनत्कुमारने भी, जो प्रेतोंके गमनागमनके ज्ञाता हैं, दिव्य चक्षुसे देखकर श्राद्धकी प्राप्तिके विषयमें ऐसा ही बतलाया है । कृष्णपक्ष उन पितरोंका दिन है तथा शुक्लपक्ष शयन करनेके लिये उनकी रात्रि है । इस प्रकार ये पितृदेव और देवपितर स्वर्गलोकमें परस्पर एक-दूसरेके देवता और पितर हैं । यह तो स्वर्णीय देवों और पितरोंकी बात हुई । मनुष्योंके पितर पिता, पितामह और प्रपितामह हैं । इस प्रकार मैंने सोमपायी पितरोंके विषयमें वर्णन कर दिया । पितरोंका यह महत्त्व पुराणोंमें निश्चित किया गया है । इस प्रकार मैंने इला-नन्दन पुरुवाका चन्द्रमा और सूर्यके साथ समागम, पितरोंको श्रद्धापूर्वक दी गयी वस्तुकी प्राप्ति, पितरोंका तर्पण, पर्व-काल और यातनास्थान (नरक)-का संक्षिप्त वर्णन आपको सुना दिया, यही सनातन सर्ग है । इसका विस्तार बहुत बड़ा है । मैंने संक्षेपमें ही इसका वर्णन किया है; क्योंकि पूर्णरूपसे वर्णन करना तो असम्भव है । इसलिये कल्याणकामीको इसपर श्रद्धा रखनी चाहिये । मैंने स्वायम्भुव मनुके इस सर्गका विस्तारपूर्वक आनुपूर्वी वर्णन कर दिया । अब पुनः आपलोगोंको क्या बतलाऊँ ? ॥ ७३—८५ ॥

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय

युगोंकी काल-गणना तथा त्रेतायुगका वर्णन

ऋष्य ऊचुः

चतुर्युगाणि यानि स्युः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
एषां निसर्ग संख्यां च श्रोतुमिच्छामो विस्तरात् ॥ १

सूत उवाच

पृथिवीद्युप्रसङ्गेन मया तु प्रागुदाहृतम् ।
एतच्चतुर्युगं त्वेवं तद् वक्ष्यामि निबोधत ।
तत्प्रमाणं प्रसंख्याय विस्तराच्चैव कृत्स्नशः ॥ २
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याद्बदं तु मानुषम् ।
तेनापीह प्रसंख्याय वक्ष्यामि तु चतुर्युगम् ॥ ३
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव

त्रिंशच्च काष्ठां गणयेत् कलां तु ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त-
स्तंस्त्रिशता रात्र्यहनी समेते ॥ ४
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके ।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ५
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६
त्रिंशद् ये मानुषा मासाः पैत्रो मासः स उच्यते ।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ठ्या चाभ्यधिकानि तु ।
पैत्रः संवत्सरो होष मानुषेण विभाव्यते ॥ ७
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितृणां तानि वर्षाणि संख्यातानि तु त्रीणि वै ।
दश च द्वयधिका मासाः पितृसंख्येह कीर्तिताः ॥ ८
लौकिकेन प्रमाणेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ।
एतद्विव्यमहोरात्रमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥ ९

दिव्ये रात्र्यहनी वर्ष प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तु यदुदक्चैव रात्रिर्या दक्षिणायनम् ।
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः ॥ १०

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! पूर्वकालमें स्वायम्भुव-
मन्वन्तरमें जिन चारों युगोंका प्रवर्तन हुआ है, उनकी
सृष्टि और संख्याके विषयमें हमलोग विस्तारपूर्वक सुनना
चाहते हैं ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पृथ्वी और आकाशके
प्रसङ्गसे मैंने पहले ही इन चारों युगोंका वर्णन कर दिया
है, फिर भी (यदि आपलोगोंकी उनको सुननेकी अभिलाषा
है तो) संख्यापूर्वक उनके प्रमाणको विस्तारके साथ समूचे
रूपमें बतला रहा हूँ, सुनिये । लौकिक प्रमाणके द्वारा मानवीय
वर्षका आश्रय लेकर उसीके अनुसार गणना करके चारों
युगोंका प्रमाण बतला रहा हूँ । पंद्रह निमेष (आँखेके खोलने
और मूँदनेका समय)-की एक काष्ठा और तीस काष्ठाकी
एक कला मानी जाती है । तीस कलाका एक मुहूर्त होता
है और तीस मुहूर्तके रात-दिन दोनों होते हैं । सूर्य मानवीय
लोकमें दिन-रातका विभाजन करते हैं । उनमें रात्रि जीवोंके
शयन करनेके लिये और दिन कर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये है ।
पितरोंके रात-दिनका एक लौकिक मास होता है । उनमें
रात-दिनका विभाग है । पितरोंके लिये कृष्णपक्ष दिन है और
शुक्लपक्ष शयन करनेके लिये रात्रि है । मनुष्योंके तीस
मासका पितरोंका एक मास कहा जाता है । इस प्रकार तीन
सौ साठ मानव-मासोंका एक पितृवर्ष होता है । यह गणना
मानवीय गणनाके अनुसार की जाती है । मानवीय गणनाके
अनुसार एक सौ वर्ष पितरोंके तीन वर्षके बराबर माने गये
हैं । इस प्रकार पितरोंके बारहों महीनोंकी संख्या बतलायी
जा चुकी है । लौकिक प्रमाणके अनुसार जिसे एक मानव-
वर्ष कहते हैं, वही देवताओंका एक दिन-रात होता है—
ऐसी वैदिकी श्रुति है ॥ २—९ ॥

मानवीय वर्षके अनुसार जो देवताओंके रात-दिन
होते हैं, उनमें भी पुनः विभाग हैं । उनमें उत्तरायणको
देवताओंका दिन और दक्षिणायनको रात्रि कहा जाता है ।
इस प्रकार दिव्य रात-दिनकी गणना बतलायी जा चुकी ।

त्रिंशद् यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
 मानुषाणां शतं यच्च दिव्या मासास्त्रयस्तु वै ।
 तथैव सह संख्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः ॥ ११
 त्रीणि वर्षशतान्येवं षष्ठिर्वर्षास्तथैव च ।
 दिव्यः संवत्सरो होष मानुषेण प्रकीर्तिः ॥ १२
 त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
 त्रिंशदन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः ॥ १३
 नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।
 वर्षाणि नवतिशैव ध्रुवसंवत्सरः स्मृतः ॥ १४
 षट्त्रिंशत् तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।
 षष्ठिशैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।
 दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥ १५
 इत्येतद् ऋषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः ।
 दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रकल्पिता ॥ १६
 चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।
 कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्वैवं चतुर्युगम् ॥ १७
 पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेताभिधीयते ।
 द्वापरं च कलिश्वैव युगानि परिकल्पयेत् ॥ १८
 चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
 तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधिः ॥ १९
 इतरेषु सप्तसंध्येषु सप्तसंध्यांशेषु च त्रिषु ।
 एकपादे निवर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ २०
 त्रेता त्रीणि सहस्राणि युगसंख्याविदो विदुः ।
 तस्यापि त्रिंशती संध्या संध्यांशः संध्यया समः ॥ २१
 द्वे सहस्रे द्वापरं तु संध्यांशौ तु चतुःशतम् ।
 सहस्रमेकं वर्षाणां कलिरेव प्रकीर्तिः ।
 द्वे शते च तथान्ये च संध्यासंध्यांशयोः स्मृते ॥ २२
 एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या तु संज्ञिता ।
 कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्वेति चतुष्टयम् ॥ २३
 तत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषास्तान् निबोधत ।
 नियुतानि दश द्वे च पञ्च चैवात्र संख्यया ।
 अष्टाविंशत्सहस्राणि कृतं युगमथोच्यते ॥ २४
 प्रयुतं तु तथा पूर्णं द्वे चान्ये नियुते पुनः ।
 षण्णवतिसहस्राणि संख्यातानि च संख्यया ।
 त्रेतायुगस्य संख्यैषा मानुषेण तु संज्ञिता ॥ २५

तीस मानवीय वर्षोंका एक दिव्य मास बतलाया जाता है । इसी प्रकार सौ मानवीय वर्षोंका तीन दिव्य मास माना गया है । यह दिव्य गणनाकी विधि कही जाती है । मानुषगणनाके अनुसार तीन सौ साठ वर्षोंका एक दिव्य (देव)-वर्ष कहा गया है । मानुषगणनाके अनुसार तीन हजार तीस वर्षोंका एक सप्तर्षि-वर्ष होता है । नौ हजार नब्बे मानुष-वर्षोंका एक 'ध्रुव-संवत्सर' कहलाता है । छियानबे हजार मानुषवर्षोंका एक हजार दिव्य वर्ष होता है—ऐसा गणितज्ञ लोग कहते हैं । द्विजवरो ! इस प्रकार ऋषियोंद्वारा दिव्य गणनाके अनुसार यह गणना बतलायी गयी है । इसी दिव्य प्रमाणके अनुसार युग-संख्याकी भी कल्पना की गयी है । ऋषियोंने इस भारतवर्षमें चार युग बतलाये हैं । उन चारों युगोंके नाम हैं—कृत, त्रेता, द्वापर और कलि । इनमें सर्वप्रथम कृतयुग, तत्पश्चात् त्रेता, तब द्वापर और 'कलियुग आनेकी परिकल्पना की गयी है । उनमें कृतयुग चार हजार (दिव्य) वर्षोंका बतलाया जाता है । इसी प्रकार चार सौ वर्षोंकी उसकी संध्या और चार सौ वर्षोंका संध्यांश होता है । इसके अतिरिक्त संध्या और संध्यांशसहित अन्य तीनों युगोंमें हजारों और सैकड़ोंकी संख्यामें एक चतुर्थांश कम हो जाता है ॥ १०—२० ॥

इस प्रकार युगसंख्या-ज्ञाता लोग त्रेताका प्रमाण तीन हजार वर्ष, उसकी संध्याका प्रमाण तीन सौ वर्ष और संध्याके बराबर ही संध्यांशका प्रमाण तीन सौ वर्ष बतलाते हैं । द्वापरका प्रमाण दो हजार वर्ष और उसकी संध्या तथा संध्यांशका प्रमाण दो-दो सौ अर्थात् चार सौ वर्षोंका होता है । कलियुग एक हजार वर्षोंका बतलाया गया है तथा उसकी संध्या और संध्यांश मिलकर दो सौ वर्षोंके होते हैं । इस प्रकार कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार युग होते हैं और इनकी काल-संख्या बारह हजार दिव्य वर्षोंकी बतायी गयी है । अब मानुषवर्षके अनुसार इन युगोंमें कितने वर्ष होते हैं, उसे सुनिये । इनमें कृतयुग सत्रह लाख

अष्टौ शतसहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
 चतुःषष्ठिसहस्राणि वर्षाणां द्वापरं युगम् ॥ २६
 चत्वारि नियुतानि स्युर्वर्षाणि तु कलियुगम् ।
 द्वात्रिंशच्च तथान्यानि सहस्राणि तु संख्या ।
 एतत् कलियुगं प्रोक्तं मानुषेण प्रमाणतः ॥ २७
 एषा चतुर्युगावस्था मानुषेण प्रकीर्तिता ।
 चतुर्युगस्य संख्याता संध्या संध्यांशकैः सह ॥ २८
 एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका त्वेकसप्ततिः ।
 कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥ २९
 मन्वन्तरस्य संख्या तु मानुषेण निबोधत ।
 एकत्रिंशत् तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः ॥ ३०
 तथा शतसहस्राणि दश चान्यानि भागशः ।
 सहस्राणि तु द्वात्रिंशच्छतान्यष्टाधिकानि च ॥ ३१
 आशीतिश्चैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तु षट् ।
 मन्वन्तरस्य संख्यैषा मानुषेण प्रकीर्तिता ॥ ३२
 दिव्येन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याप्यन्तरं मनोः ।
 सहस्राणां शतान्याहुः स च वै परिसंख्यया ॥ ३३
 चत्वारिंशत् सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते ।
 मन्वन्तरस्य कालस्तु युगैः सह परिकीर्तितः ॥ ३४
 एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका होकसप्ततिः ।
 क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥ ३५
 एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुस्तु तद्विदः ।
 ततस्तु प्रलयः कृत्वः स तु सम्प्रलयो महान् ॥ ३६
 कल्पप्रमाणे द्विगुणो यथा भवति संख्यया ।
 चतुर्युगाख्या व्याख्याता कृतं त्रेतायुगं च वै ॥ ३७
 त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ।
 युगपत्समवेतौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते ॥ ३८
 क्रमागतं मयाप्येतत् तुभ्यं नोक्तं युगद्वयम् ।
 ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात् तथा क्रमात् ॥ ३९
 नोक्तं त्रेतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत ।

अद्भाईस हजार वर्षोंका कहा जाता है। इसी मानुषगणनाके अनुसार त्रेतायुगकी वर्ष-संख्या बारह लाख छानबे हजार बतलायी गयी है। द्वापरयुग आठ लाख चौंसठ हजार मानुष वर्षोंका होता है। मानुषगणनाके अनुसार कलियुगका मान चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका कहा गया है। चारों युगोंकी यह अवस्था मानवगणनाके अनुसार बतलायी गयी है। इस प्रकार संध्या और संध्यांशसहित चारों युगोंकी संख्या बतलायी जा चुकी ॥ २१—२८ ॥

(अब मन्वन्तरका वर्णन करते हैं।) इन कृतयुग, त्रेता आदि युगोंकी यह चौकड़ी जब एकहत्तर बार बीत जाती है, तब उसे एक मन्वन्तर कहते हैं। अब मन्वन्तरकी वर्षसंख्या मानुषगणनाके अनुसार सुनिये। मानव-वर्षके अनुसार एक मन्वन्तरकी वर्ष-संख्या एकतीस करोड़ दस लाख बत्तीस हजार आठ सौ अस्सी वर्ष छः महीनेकी बतलायी जाती है। अब मैं दिव्य गणनाके अनुसार मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। एक मनुका कार्यकाल एक लाख चालीस हजार दिव्य वर्षोंका बतलाया जाता है। मन्वन्तरका समय युग-वर्णनके साथ ही कहा जा चुका है। चारों युगोंकी यह चौकड़ी जब क्रमशः एकहत्तर बार बीत जाती है, तब उसे एक मन्वन्तर कहते हैं। कालतत्त्वको जाननेवाले विद्वान् मन्वन्तरके चौदह गुने कालको एक कल्प बतलाते हैं। इसके बाद सारी सृष्टिका विनाश हो जाता है, जिसे महाप्रलय कहते हैं। महाप्रलयका समय कल्पके समयसे दुगुना होता है। इस प्रकार कृतयुग, त्रेता आदि चारों युगोंकी वर्ष-संख्या बतलायी जा चुकी। अब मैं त्रेता, द्वापर और कलियुगकी सृष्टिका वर्णन कर रहा हूँ। कृतयुग और त्रेता—ये दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं, अतः इनका पृथक् रूपसे वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी कारण इन दोनों युगोंके वर्णनका अवसर क्रमशः प्राप्त होनेपर भी मैंने आपलोगोंसे नहीं कहा। साथ ही उस समय ऋषि-वंशका प्रसङ्ग छिड़ जानेपर चित्त व्याकुल हो उठा था। उस समय जो नहीं कहा था, वह शेषांश अब त्रेतायुगके वर्णन-प्रसङ्गमें कह रहा हूँ, सुनिये ॥ २९—३९ ॥

अथ त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये।
 श्रौतस्मार्तं ब्रुवन् धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः ॥ ४०
 दाराग्निहोत्रसम्बन्धमृग्यजुःसामसंहिताः ।
 इत्यादिबहुलं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥ ४१
 परम्परागतं धर्मं स्मार्तं त्वाचारलक्षणम्।
 वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ४२
 सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा।
 तेषां सुतस्तपससामार्षेणानुक्रमेण ह ॥ ४३
 सप्तर्षीणां मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः ।
 अबुद्धिपूर्वकं तेन सकृत्पूर्वकमेव च ॥ ४४
 अभिवृत्तास्तु ते मन्त्रा दर्शनैस्तारकादिभिः ।
 आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥ ४५
 प्रमाणेष्वथ सिद्धानामन्येषां च प्रवर्तते।
 मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रशः ।
 ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिमायामुपस्थिताः ॥ ४६
 ऋचो यजूषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणास्तु ये।
 सप्तर्षिभिश्च ये प्रोक्ताः स्मार्तं तु मनुरब्रवीत् ॥ ४७
 त्रेतादौ संहता वेदाः केवलं धर्मसेतवः ।
 संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च ते।
 ऋषयस्तपसा वेदानहोरात्रमधीयत ॥ ४८
 अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।
 स्वधर्मसंवृताः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे।
 विक्रियन्ते स्वधर्मं तु वेदवादाद् यथायुगम् ॥ ४९
 आरम्भयज्ञः क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशः स्मृताः ।
 परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञाश्च ब्राह्मणाः ॥ ५०
 ततः समुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मशालिनः ।
 क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनश्च वै ॥ ५१
 ब्राह्मणाश्चैव विधीयन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियैर्विशः ।
 वैश्याश्छूद्रानुवर्तन्ते परस्परमनुग्रहात् ॥ ५२
 शुभाः प्रकृतयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमाश्रयाः ॥
 संकल्पितेन मनसा वाचा वा हस्तकर्मणा ।
 त्रेतायुगे हविकले कर्मारभ्यः प्रसिद्ध्यति ॥ ५३
 आयू रूपं बलं मेधा आरोग्यं धर्मशीलता ।
 सर्वसाधारणं ह्येतदासीत् त्रेतायुगे तु वै ॥ ५४

त्रेतायुगके आदिमें जो मनु और सप्तर्षिगण थे, उन लोगोंने ब्रह्माकी प्रेरणासे श्रौत और स्मार्त धर्मोंका वर्णन किया था। उस समय सप्तर्षियोंने दार-सम्बन्ध (विवाह), अग्निहोत्र, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी संहिता आदि अनेकविधि श्रौत धर्मोंका विवेचन किया था। उसी प्रकार स्वायम्भुव मनुने वर्णों एवं आश्रमोंके धर्मोंसे युक्त परम्परागत आचार-लक्षणरूप स्मार्त-धर्मका वर्णन किया था। त्रेतायुगके आदिमें उत्कृष्ट तपस्यावाले उन सप्तर्षियों तथा मनुके हृदयमें वे मन्त्र सत्य, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-ज्ञान, तपस्या तथा ऋषि-परम्पराके अनुक्रमसे बिना सोचे-विचारे ही दर्शनों एवं तारकादिद्वारा एक ही बारमें स्वयं प्रकट हो गये थे। वे ही मन्त्र आदि कल्पमें देवताओंके हृदयोंमें स्वयं उद्भूत हुए थे। वह मन्त्रयोग हजारों गत-कल्पोंमें सिद्धों तथा अन्यान्य लोगोंके लिये भी प्रमाणरूपमें प्रयुक्त होता था। वे मन्त्र पुनः उन देवताओंकी प्रतिमाओंमें भी उपस्थित हुए। इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद-सम्बन्धी जो मन्त्र हैं, वे सप्तर्षियोंद्वारा कहे गये हैं। स्मार्तधर्मका वर्णन तो मनुने किया है। त्रेतायुगके आदिमें ये सभी वेद धर्मके सेतु-स्वरूप थे, किंतु द्वापरयुगमें आयुके न्यून हो जानेके कारण उनका विभाग कर दिया गया है। ऋषि अपने धर्मसे परिपूर्ण हैं। वे तपमें निरत हो रात-दिन वेदाध्ययन करते थे। ब्रह्माने सर्वप्रथम प्रत्येक युगमें युगधर्मानुसार इनका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। वे योगानुकूल वेदवादसे स्खलित होकर अपने धर्मसे विकृत हो जाते हैं। त्रेतायुगमें ब्राह्मणोंका धर्म जपयज्ञ, क्षत्रियोंका यज्ञारम्भ, वैश्योंका हविर्यज्ञ और शूद्रोंका सेवायज्ञ कहा जाता था। उस समय सभी वर्णके लोग उत्त्रत, धर्मात्मा, क्रियानिष्ठ, संतानयुक्त, समृद्ध और सुखी थे। परस्पर प्रेमपूर्वक ब्राह्मण क्षत्रियोंके लिये और क्षत्रिय वैश्योंके लिये सब प्रकारका विधान करते थे तथा शूद्र वैश्योंका अनुवर्तन करते थे। उनके स्वभाव सुन्दर थे तथा उनके धर्म वर्ण एवं आश्रमके अनुकूल होते थे ॥ ४०—५२ ३ ॥

समूचे त्रेतायुगके कार्यकालमें मानसिक संकल्प, वचन और हाथसे प्रारम्भ किये गये कर्म सिद्ध होते थे। त्रेतायुगमें आयु, रूप, बल, बुद्धि, नीरोगता और धर्मपरायणता—ये सभी गुण सर्वसाधारण लोगोंमें भी विद्यमान थे।

वर्णाश्रमव्यवस्थानामेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।
संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यं धर्मशीलता ॥ ५५
संहिताश्च तथा मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः ।
यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा होव तु दैवतैः ॥ ५६
यामैः शुक्लैर्जयैश्चैव सर्वसाधनसम्भृतैः ।
विश्वसृद्भिस्तथा सार्थं देवेन्द्रेण महौजसा ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैस्ते यज्ञाः प्राक् प्रवर्तिताः ॥ ५७
सत्यं जपस्तपो दानं पूर्वधर्मो य उच्यते ।
यदा धर्मस्य हुस्ते शाखाधर्मस्य वर्धते ॥ ५८
जायन्ते च तदा शूरा आयुष्मन्तो महाबलाः ।
न्यस्तदण्डा महायोगा यज्ञानो ब्रह्मवादिनः ॥ ५९
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्त्राः सुसंहताः ।
सिंहोरस्का महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥ ६०
महाधनुर्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः ।
सर्वलक्षणपूर्णास्ते न्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥ ६१
न्यग्रोधौ तु स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते ।
व्यामैनैवोच्छ्रयो यस्य सम ऊर्ध्वं तु देहिनः ।
समुच्छ्रयपरिणाहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥ ६२
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गजस्तथा ।
प्रोक्तानि सप्त रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम् ॥ ६३
चक्रं रथो मणिः खड्गं धनू रत्नं च पञ्चमम् ।
केतुर्निधिश्च पञ्चैते प्राणहीनाः प्रकीर्तिताः ॥ ६४
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु हृतीतानागतेषु वै ॥ ६५
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ॥ ६६
भद्राणीमानि तेषां च विभाव्यन्ते महीक्षिताम् ।
अत्यद्भुतानि चत्वारि बलं धर्मं सुखं धनम् ॥ ६७
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम् ।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥ ६८

ब्रह्माने स्वयं इनके लिये वर्णाश्रमकी व्यवस्था की थी तथा ब्रह्माके मानसिक पुत्र ऋषियोंद्वारा संहिताओं, मन्त्रों, नीरोगता और धर्मपरायणताका विधान किया गया था । उसी समय देवताओंने यज्ञकी भी प्रथा प्रचलित की थी । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सम्पूर्ण यज्ञिय साधनोंसहित याम, शुक्ल, जय, विश्वसृज् तथा महान् तेजस्वी देवराज इन्द्रके साथ देवताओंने सर्वप्रथम इन यज्ञोंका प्रचार किया था । उस समय सत्य, जप, तप और दान—ये ही प्रारम्भिक धर्म कहलाते थे । जब इन धर्मोंका हास प्रारम्भ होता था और अधर्मकी शाखाएँ बढ़ने लगती थीं, तब त्रेतायुगमें ऐसे शूरवीर चक्रवर्तीं सप्राद् उत्पन्न होते थे, जो दीर्घायुसम्पन्न, महाबली, दण्ड देनेवाले, महान् योगी, यज्ञपरायण और ब्रह्मनिष्ठ थे, जिनके नेत्र कमलदलके समान विशाल और सुन्दर, मुख भेर-पूरे और शरीर सुसंगठित थे, जिनकी छाती सिंहके समान चौड़ी थी, जो महान् पराक्रमी और मतवाले गजराजकी भाँति चलनेवाले और महान् धनुर्धर थे, वे सभी राजलक्षणोंसे परिपूर्ण तथा न्यग्रोध (बरगद-) सदृश मण्डलवाले थे । यहाँ दोनों बाहुओंको ही न्यग्रोध कहा जाता है तथा व्योममें फैलायी हुई बाहुओंका मध्यभाग भी न्यग्रोध कहलाता है । उस व्योमकी ऊँचाई और विस्तारवाला 'न्यग्रोधपरिमण्डल' कहलाता है, अतः जिस प्राणीका शरीर व्योमके बराबर ऊँचा और विस्तृत हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डल* कहा जाता है । पूर्वकालके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें चक्र (शासन, अज्ञाद भी), रथ, मणि, भार्या, निधि, अश्व और गज—ये सातों (चल-) रत्न कहे गये हैं । दूसरा चक्र (अचल) रथ, मणि, खड्ग, धनुष, रत्न, झंडा और खजाना—ये स्थिर (अचल) सप्तरत्न हैं । (सब मिलकर ये ही राजाओंके चौदह रत्न हैं ।) बीते हुए एवं आनेवाले सभी मन्वन्तरोंमें भूतलपर चक्रवर्तीं सप्राद् विष्णुके अंशसे उत्पन्न होते हैं ॥ ५३—६५ ॥

इस प्रकार भूत, भविष्य और वर्तमानमें जितने त्रेतायुग हुए होंगे और हैं, उन सभीमें चक्रवर्तीं सप्राद् उत्पन्न होते हैं । उन भूपालोंके बल, धर्म, सुख और धन—ये चतुर्भुत्र चारों अत्यन्त अद्भुत और माङ्गलिक होते हैं । उन राजाओंको अर्थ, धर्म, काम, यश और विजय—ये सभी समानरूपसे परस्पर अविरोध भावसे प्राप्त होते हैं ।

* वाल्मीकीय रामायण ३। ३५ तथा भट्टिकाव्य ५ में सीताजीको 'न्यग्रोधपरिमण्डला' कहा गया है ।

ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिबलान्विताः।
 श्रुतेन तपसा चैव ऋषीस्तेऽभिभवन्ति हि॥६९
 बलेनाभिभवन्त्येते देवदानवमानवान्।
 लक्षणैश्चैव जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः॥७०
 केशाः स्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्य प्रमार्जनी।
 ताम्प्रप्रभाश्चतुर्द्धाः सुवंशाश्चोधरितसः॥७१
 आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः।
 परिणाहप्रमाणाभ्यां सिंहस्कन्धाश्च मेधिनः॥७२
 पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मे च हस्तयोः।
 पञ्चाशीतिसहस्राणि जीवन्ति ह्यजरामयाः॥७३
 असङ्गा गतयस्तेषां चतस्रश्चक्रवर्तिनाम्।
 अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च॥७४
 इच्छा दानं तपः सत्यं त्रेताधर्मस्तु वै स्मृताः।
 तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः।
 मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते॥७५
 हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे अरोगाः पूर्णमानसाः।
 एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायां तु विधिः स्मृतः।
 त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवन्ते तत्र ताः प्रजाः॥७६
 पुत्रपौत्रसमीकीर्णा प्रियन्ते च क्रमेण ताः।
 एष त्रेतायुगे भावस्त्रेतासंध्यां निबोधत॥७७
 त्रेतायुगस्वभावेन संध्यापादेन वर्तते।
 संध्यापादः स्वभावाच्च योऽशः पादेन तिष्ठति॥७८

इति श्रीमात्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकल्पो नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४२ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्वन्तरानुकल्प नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४२ ॥

प्रभुशक्ति और बलसे सम्पन्न वे नृपतिगण ऐश्वर्य, अणिमा आदि सिद्धि, शास्त्रज्ञान और तपस्यामें ऋषियोंसे भी बढ़-चढ़कर होते हैं। इसलिये वे सम्पूर्ण देव-दानवों और मानवोंको बलपूर्वक पराजित कर देते हैं। उनके शरीरमें स्थित सभी लक्षण दिये होते हैं। उनके सिरके बाल ललाटतक फैले रहते हैं। उनकी जीभ बड़ी स्वच्छ और स्निग्ध होती है। उनकी अङ्गकान्ति लाल होती है। उनके चार दाढ़े होते हैं। वे उत्तम वंशमें उत्पन्न, ऊर्ध्वरिता, आजानुबाहु, जालहस्त हाथोंमें जालचिह्न तथा बैल आदि श्रेष्ठ चिह्नयुक्त परिणाहमात्र लम्बे होते हैं। उनके कंधे सिंहके समान मांसल और वे यज्ञपरायण होते हैं। उनके पैरोंमें चक्र और मत्स्यके तथा हाथोंमें शङ्ख और पद्मके चिह्न होते हैं। वे बुद्धापा और व्याधिसे रहित होकर पचासी हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वे चक्रवर्ती सप्तरात् अन्तरिक्ष, समुद्र, पाताल और पर्वत—इन चारों स्थानोंमें एकाकी एवं स्वच्छन्दरूपसे विचरण करते हैं। यज्ञ, दान, तप और सत्यभाषण—ये त्रेतायुगके प्रधान धर्म कहे गये हैं। ये धर्म वर्ण एवं आश्रमके विभागपूर्वक प्रवृत्त होते हैं। इनमें मर्यादाकी स्थापनाके निमित्त दण्डनीतिका प्रयोग किया जाता है। त्रेतायुगमें एक वेद चार भागोंमें विभक्त होकर विधान करता है। उस समय सभी लोग हृष्ट-पृष्ठ, नीरोग और सफल-मनोरथ होते हैं। वे प्रजाएँ तीन हजार वर्षोंतक जीवित रहती हैं और पुत्र-पौत्रसे युक्त होकर क्रमशः मृत्युको प्राप्त होती हैं। यही त्रेतायुगका स्वभाव है। अब उसकी संध्याके विषयमें सुनिये। इसकी संध्यामें युग-स्वभावका एक चरण रह जाता है। उसी प्रकार संध्यांशमें संध्याका चतुर्थांश शेष रहता है अर्थात् उत्तरोत्तर परिवर्तन होता जाता है॥ ६६—७८॥

एक सौ तैतालीसवाँ अध्याय

यज्ञकी प्रवृत्ति तथा विधिका वर्णन

ऋषय ऊँ:

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्तनम्।
 पूर्वे स्वायम्भुवे सर्गे यथावत् प्रब्रवीहि नः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! पूर्वकालमें स्वायम्भुवमनुके कार्य-

कालमें त्रेतायुगके प्रारम्भमें किस प्रकार यज्ञकी प्रवृत्ति

अन्तर्हितायां संध्यायां सार्थं कृतयुगेन हि।
कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा॥ २

ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च॥ ३

वर्णाश्रमप्रतिष्ठानं कृत्वन्तश्च वैः पुनः।
संहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत् सूतः श्रूयतां तत्प्रचोदितम्॥ ४

सूत उवाच

मन्त्रान् वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु।
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत् प्रभुः॥ ५

दैवतैः सह संहृत्य सर्वसाधनसंवृतः।
तस्याश्वमेधे वितते समाजगमुर्महर्षयः॥ ६

यज्ञकर्मण्यवर्तन्त कर्मण्यग्रे तथर्त्विजः।
हृथमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः॥ ७

सम्प्रतीतेषु देवेषु सामगेषु च सुस्वरम्।
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च॥ ८

आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषु वै।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा॥ ९

य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते।
तान् यजन्ति तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये॥ १०

अधर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ऋषयस्तथा।

महर्षयश्च तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणांस्तदा।
विश्वभुजं ते त्वपृच्छन् कथं यज्ञविधिस्तव॥ ११

अथर्मो बलवानेष हिंसा धर्मेष्या तव।
नव पशुविधिस्त्वष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम॥ १२

अथर्मो धर्मधाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते।

आगमेन भवान् धर्म प्रकरोतु यदीच्छति॥ १३

विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यसनेन तु।

यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिमोषितैः॥ १४

हुई थी? जब कृतयुगके साथ उसकी संध्या (तथा संध्यांश) दोनों अन्तर्हित हो गये, तब कालक्रमानुसार त्रेतायुगकी संधि प्राप्त हुई। उस समय वृष्टि होनेपर ओषधियाँ उत्पन्न हुईं तथा ग्रामों एवं नगरोंमें वार्ता-वृत्तिकी स्थापना हो गयी। उसके बाद वर्णाश्रमकी स्थापना करके परम्परागत आये हुए मन्त्रोद्घारा पुनः संहिताओंको एकत्रकर यज्ञकी प्रथा किस प्रकार प्रचलित हुई? हमलोगोंके प्रति इसका यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये। यह सुनकर सूतजीने कहा— ‘आपलोगोंके प्रश्नानुसार कह रहा हूँ सुनिये’॥ १—४॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! विश्वभोक्ता सामर्थ्यशाली इन्द्रने ऐहलौकिक तथा पारलौकिक कर्मोंमें मन्त्रोंको प्रयुक्तकर देवताओंके साथ सम्पूर्ण साधनोंसे सम्पन्न हो यज्ञ प्रारम्भ किया। उनके उस अश्वमेध-यज्ञके आरम्भ होनेपर उसमें महर्षिगण उपस्थित हुए। उस यज्ञकर्ममें ऋषिगण यज्ञक्रियाको आगे बढ़ा रहे थे। उस समय सर्वप्रथम अग्निमें अनेकों प्रकारके हवनीय पदार्थ डाले जा रहे थे, सामग्रान करनेवाले देवगण विश्वासपूर्वक ऊँचे स्वरसे सामग्रान कर रहे थे, अध्वर्युगण धीमे स्वरसे मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। पशुओंका समूह मण्डपके मध्यभागमें लाया जा रहा था, यज्ञभोक्ता देवोंका आवाहन हो चुका था। जो इन्द्रियात्मक देवता तथा जो यज्ञभागके भोक्ता थे और जो प्रत्येक कल्पके आदिमें उत्पन्न होनेवाले अजानदेव थे, देवगण उनका यज्ञ कर रहे थे। इसी बीच जब यजुर्वेदके अध्येता एवं हवनकर्ता ऋषिगण पशु-बलिका उपक्रम करने लगे, तब यूथ-के-यूथ ऋषि तथा महर्षि उन दीन पशुओंको देखकर उठ खड़े हुए और वे विश्वभुग् नामके विश्वभोक्ता इन्द्रसे पूछने लगे—‘देवराज! आपके यज्ञकी यह कैसी विधि है? आप धर्म-प्राप्तिकी अभिलाषासे जो जीव-हिंसा करनेके लिये उद्यत हैं, यह महान् अधर्म है। सुरश्रेष्ठ! आपके यज्ञमें पशु-हिंसाकी यह नवीन विधि दीख रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि आप पशु-हिंसाके व्याजसे धर्मका विनाश करनेके लिये अधर्म करनेपर तुले हुए हैं। यह धर्म नहीं है। यह सरासर अधर्म है। जीव-हिंसा धर्म नहीं कही जाती। इसलिये यदि आप धर्म करना चाहते हैं तो वेदविहित धर्मका अनुष्ठान कीजिये। सुरश्रेष्ठ! वेदविहित विधिके अनुसार किये हुए यज्ञ और दुर्व्यसनरहित धर्मके पालनसे यज्ञके बीजभूत त्रिवर्ग (नित्य धर्म, अर्थ, काम)-की प्राप्ति होती है।

एष यज्ञो महानिन्द्र स्वयम्भुविहितः पुरा ।
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
उक्तो न प्रतिजग्राह मानमोहसमन्वितः ॥ १५

तेषां विवादः सुमहान् जज्ञे इन्द्रमहर्षिणाम् ।
जङ्गमैः स्थावरैः केन यष्टव्यमिति चोच्यते ॥ १६

ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः ।
संधाय सममिन्द्रेण पप्रच्छुः खचरं वसुम् ॥ १७

ऋषय ऊचुः

महाप्राज्ञ त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप ।
औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्थि नः प्रभो ॥ १८

सूत उवाच

श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम् ।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥ १९

यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः ।
यष्टव्यं पशुभिर्मैध्यैरथ मूलफलैरपि ॥ २०

हिंसा स्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः ।
तथैते भाविता मन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः ॥ २१

दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शनैः ।
तत्प्रमाणं मया चोक्तं तस्माच्छमितुर्महर्थ ॥ २२

यदि प्रमाणं स्तान्येव मन्त्रवाक्यानि वो द्विजाः ।
तदा प्रवर्ततां यज्ञो ह्यन्यथा मानृतं वचः ॥ २३

एवं कृतोत्तरास्ते तु युज्यात्मानं ततो धिया ।
अवश्यम्भाविनं दृष्ट्वा तमधो ह्यशपंस्तदा ॥ २४

इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ।
ऊर्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥ २५

वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ।
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः ॥ २६

तस्मान् वाच्यो होकेन बहुज्ञेनापि संशयः ।
बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः ॥ २७

इन्द्र ! पूर्वकालमें ब्रह्माने इसीको महान् यज्ञ बतलाया है ।' तत्त्वदर्शी ऋषियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी विश्वभोक्ता इन्द्रने उनकी बातोंको अङ्गीकार नहीं किया; क्योंकि उस समय वे मान और मोहसे भेरे हुए थे । फिर तो इन्द्र और उन महर्षियोंके बीच 'स्थावरों या जङ्गमोंमेंसे किससे यज्ञानुष्ठान करना चाहिये—' इस बातको लेकर वह अत्यन्त महान् विवाद उठ खड़ा हुआ । यद्यपि वे महर्षि शक्तिसम्पन्न थे, तथापि उन्होंने उस विवादसे खिन्न होकर इन्द्रके साथ संधि करके (उसके निर्णयार्थ) उपरिचर (आकाशचारी राजर्षि) वसुसे प्रश्न किया ॥ ५—१७ ॥

ऋषियोंने पूछा—उत्तानपाद-नन्दन नरेश ! आप तो सामर्थ्यशाली एवं महान् बुद्धिमान् हैं । आपने किस प्रकारकी यज्ञ-विधि देखी है, उसे बतलाइये और हम लोगोंका संशय दूर कीजिये ॥ १८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! उन ऋषियोंका प्रश्न सुनकर महाराज वसु उचित-अनुचितका कुछ भी विचार न कर वेद-शास्त्रोंका अनुस्मरण कर यज्ञतत्त्वका वर्णन करने लगे । उन्होंने कहा—'शक्ति एवं समयानुसार प्राप्त हुए पदार्थोंसे यज्ञ करना चाहिये । पवित्र पशुओं और मूल-फलोंसे भी यज्ञ किया जा सकता है । मेरे देखनेमें तो ऐसा लगता है कि हिंसा यज्ञका स्वभाव ही है । इसी प्रकार तारक आदि मन्त्रोंके ज्ञाता उग्रतपस्वी महर्षियोंने हिंसासूचक मन्त्रोंको उत्पन्न किया है । उसीको प्रमाण मानकर मैंने ऐसी बात कही है, अतः आपलोग मुझे क्षमा कीजियेगा । द्विजवरो ! यदि आप लोगोंको वेदोंके मन्त्रवाक्य प्रमाणभूत प्रतीत होते हों तो यही कीजिये, अन्यथा यदि आप वेद-वचनको झूठा मानते हों तो मत कीजिये ।' वसुद्वारा ऐसा उत्तर पाकर महर्षियोंने अपनी बुद्धिसे विचार किया और अवश्यम्भावी विषयको जानकर राजा वसुको विमानसे नीचे गिर जानेका तथा पातालमें प्रविष्ट होनेका शाप दे दिया । ऋषियोंके ऐसा कहते ही राजा वसु रसातलमें चले गये । इस प्रकार जो राजा वसु एक दिन आकाशचारी थे, वे रसातलगामी हो गये । ऋषियोंके शापसे उन्हें पातालचारी होना पड़ा । धर्मविषयक संशयोंका निवारण करनेवाले राजा वसु इस प्रकार अधोगतिको प्राप्त हुए ॥ १९—२६ ॥

इसलिये बहुज्ञ (अत्यन्त विद्वान्) होते हुए भी अकेले किसी धार्मिक संशयका निर्णय नहीं करना चाहिये; क्योंकि अनेक द्वार (मार्ग-) वाले धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म

तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यो हि केनचित्।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम्॥ २८

तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद् यदुक्तमृषिभिः पुरा।
ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः॥ २९

तस्मान्न हिंसायज्ञं च प्रशंसन्ति महर्षयः।
उच्छो मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः॥ ३०

एतद् दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः।
अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया शमः॥ ३१

ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्वासदम्॥ ३२

द्रव्यमन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्च समतात्मकम्।
यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पुनः॥ ३३

ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात् प्रकृतेलंयम्।
ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चतां गतयः स्मृताः॥ ३४

एवं विवादः सुमहान् यज्ञस्यासीत् प्रवर्तने।
ऋषीणां देवतानां च पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ३५

ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हतं धर्मं बलेन तु।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागतम्॥ ३६

गतेषु ऋषिसङ्घेषु देवा यज्ञमवान्युयुः।
श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपाः॥ ३७

प्रियन्नतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः।
सुधामा विरजाश्वैव शंखपाद्राजसस्तथा॥ ३८

प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः।
एते चान्ये च बहवस्ते तपोभिर्दिवं गताः॥ ३९

राजर्षयो महात्मानो येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वैस्तु कारणैः॥ ४०

ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा।
तस्मान्नाज्ञोति तद् यज्ञात्तपोमूलमिदं स्मृतम्॥ ४१

और दुर्गम है। अतः देवताओं और ऋषियोंके साथ-साथ स्वायम्भुव मनुके अतिरिक्त अन्य कोई भी अकेला व्यक्ति धर्मके विषयमें निश्चयपूर्वक निर्णय नहीं दे सकता। इसलिये पूर्वकालमें जैसा ऋषियोंने कहा है, उसके अनुसार यज्ञमें जीव-हिंसा नहीं होनी चाहिये। हजारों करोड़ ऋषि अपने तपोबलसे स्वर्गलोकको गये हैं। इसी कारण महर्षिगण हिंसात्मक यज्ञकी प्रशंसा नहीं करते। वे तपस्वी अपनी सम्पत्तिके अनुसार उच्छवृत्तिसे प्राप्त हुए अन्न, मूल, फल, शाक और कमण्डलु आदिका दान कर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हुए हैं। ईर्ष्याहीनता, निर्लोभता, इन्द्रियनिग्रह, जीवोंपर दयाभाव, मानसिक स्थिरता, ब्रह्मचर्य, तप, पवित्रता, करुणा, क्षमा और धैर्य—ये सनातन धर्मके मूल ही हैं, जो बड़ी कठिनतासे प्राप्त किये जा सकते हैं। यज्ञ द्रव्य और मन्त्रद्वारा सम्पन्न किये जा सकते हैं और तपस्याकी सहायिका समता है। यज्ञोंसे देवताओंकी तथा तपस्यासे विराट् ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। कर्म (फल)-का त्याग कर देनेसे ब्रह्म-पदकी प्राप्ति होती है, वैराग्यसे प्रकृतिमें लय होता है और ज्ञानसे कैवल्य (मोक्ष) सुलभ हो जाता है। इस प्रकार ये पाँच गतियाँ बतलायी गयी हैं॥ २७—३४॥

पूर्वकालमें स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें यज्ञकी प्रथा प्रचलित होनेके अवसरपर देवताओं और ऋषियोंके बीच इस प्रकारका महान् विवाद हुआ था। तदनन्तर जब ऋषियोंने यह देखा कि यहाँ तो बलपूर्वक धर्मका विनाश किया जा रहा है, तब वसुके कथनकी उपेक्षा कर वे जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। उन ऋषियोंके चले जानेपर देवताओंने यज्ञकी सारी क्रियाएँ सम्पन्न कीं। इसके अतिरिक्त इस विषयमें ऐसा भी सुना जाता है कि बहुतेरे ब्राह्मण तथा क्षत्रियनरेश तपस्याके प्रभावसे ही सिद्ध प्राप्त की थी। प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शङ्खपाद, राजस, प्राचीनबर्हिं, पर्जन्य और हविर्धान आदि नृपतिगण तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से नरेश तपोबलसे स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं, जिन महात्मा राजर्षियोंकी कीर्ति अबतक विद्यमान है। अतः तपस्या सभी कारणोंसे सभी प्रकार यज्ञसे बढ़कर है। पूर्वकालमें ब्रह्माने तपस्याके प्रभावसे ही इस सारे जगत्की सृष्टि की थी, अतः यज्ञद्वारा वह बल नहीं प्राप्त हो सकता। उसकी प्राप्तिका मूल कारण तप

यज्ञप्रवर्तनं होवमासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

तदाप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्तत ॥ ४२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकल्पे देवर्षिसंवादो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके मन्वन्तरानुकल्पमें देवर्षिसंवाद नामक एक सौ तैतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४३ ॥

ही कहा गया है। इस प्रकार स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें यज्ञकी प्रथा प्रारम्भ हुई थी। तबसे यह यज्ञ सभी युगोंके साथ प्रवर्तित हुआ ॥ ३५—४२ ॥

एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय

द्वापर और कलियुगकी प्रवृत्ति तथा उनके स्वभावका वर्णन, राजा प्रमतिका वृत्तान्त तथा पुनः कृतयुगके प्रारम्भका वर्णन

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥ १
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ।
परिवृत्ते युगे तस्मिस्ततः सा सम्प्रणश्यति ॥ २
ततः प्रवर्तिते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ।
लोभोऽधृतिर्विर्णिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥ ३
प्रध्वंसश्वैव वर्णानां कर्मणां तु विपर्ययः ।
याच्चा वधः पणो दण्डो मानो दम्पोऽक्षमा बलम् ॥ ४
तथा रजस्तमो भूयः प्रवृत्तिद्वापरे स्मृता ।
आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रपद्यते ॥ ५
द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलौ पुनः ।
वर्णानां द्वापरे धर्माः संकीर्यन्ते तथाऽश्रमाः ॥ ६
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिंश्च्रुतौ स्मृतौ ।
द्वैधाच्छ्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ॥ ७
अनिश्चयावगमनाद् धर्मतत्त्वं न विद्यते ।
धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते ॥ ८
परस्परं विभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण तु ।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते ॥ ९
एको वेदश्चतुष्पादः त्रेताष्विह विधीयते ।
संक्षेपादायुषश्वैव व्यस्यते द्वापरेष्विह ॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इसके बाद अब मैं द्वापरयुगकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ । त्रेतायुगके क्षीण हो जानेपर द्वापरयुगकी प्रवृत्ति होती है । द्वापरयुगके प्रारम्भ-कालमें प्रजाओंको त्रेतायुगकी भाँति ही सिद्धि प्राप्त होती है, किंतु जब द्वापरयुगका प्रभाव पूर्णरूपसे व्याप्त हो जाता है, तब वह सिद्धि नष्ट हो जाती है । उस समय प्रजाओंमें लोभ, धैर्यहीनता, वाणिज्य, युद्ध, सिद्धान्तोंकी अनिश्चितता, वर्णोंका विनाश, कर्मोंका उलट-फेर, याच्चा (भिक्षावृत्ति), संहार, परायापन, दण्ड, अभिमान, दम्भ, असहिष्णुता, बल तथा रजोगुण एवं तमोगुण बढ़ जाते हैं । सर्वप्रथम कृतयुगमें तो अधर्मका लेशमात्र भी नहीं रहता, किंतु त्रेतायुगमें उसकी कुछ-कुछ प्रवृत्ति होती है । पुनः द्वापरयुगमें वह विशेषरूपसे व्याप्त होकर कलियुगमें युग-समाप्तिके समय विनष्ट हो जाता है । द्वापरयुगमें चारों वर्णों तथा आश्रमोंके धर्म परस्पर घुल-मिल जाते हैं । इस युगमें श्रुतियों और स्मृतियोंमें भेद उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार श्रुति और स्मृतिकी मान्यतामें भेद पड़नेके कारण किसी विषयका ठीक निश्चय नहीं हो पाता । अनिश्चितताके कारण धर्मका तत्त्व लुप्त हो जाता है । धर्मतत्त्वका ज्ञान न होनेपर बुद्धिमें भेद उत्पन्न हो जाता है । बुद्धिमें भेद पड़नेके कारण उनके विचार भी भ्रान्त हो जाते हैं और फिर धर्म क्या है और अधर्म क्या है, यह निश्चय नहीं हो पाता ॥ १—९ ॥

पहले त्रेताके प्रारम्भमें आयुके संक्षिप्त हो जानेके कारण एक ही वेद ऋक्, यजुः, अथर्वा, साम—चार नामोंसे विभक्त कर दिया जाता है । फिर द्वापरमें विभिन्न

वेदश्चैकश्तुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।
 ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ॥ ११
 मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्मविपर्ययैः ।
 संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ॥ १२
 सामान्याद् वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित् क्वचित् ।
 ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ॥ १३
 अन्ये तु प्रस्थितास्तान् वै केचित् तान् प्रत्यवस्थिताः ।
 द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नार्थेस्तैः स्वदर्शनैः ॥ १४
 एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद् द्वैधं तु तत्पुनः ।
 सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्राकुलं त्विदम् ॥ १५
 आध्वर्यवं च प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतम् ।
 तथैवाथर्वणां साम्नां विकल्पैः स्वस्य संक्षयैः ॥ १६
 व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः क्रियते भिन्नदर्शनैः ।
 द्वापरे संनिवृत्ते तु वेदा नश्यन्ति वै कलौ ॥ १७
 तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः ।
 अदृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥ १८
 बाङ्मनःकर्मभिर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः ।
 निर्वेदाज्ञायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥ १९
 विचारणायां वैराग्यं वैराग्याद् दोषदर्शनम् ।
 दोषाणां दर्शनाच्चैव ज्ञानोत्पत्तिस्तु जायते ॥ २०
 तेषां मेधाविनां पूर्वं मत्त्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
 उत्पत्स्यन्तीह शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ॥ २१
 आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्यौतिषस्य च ।
 अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २२
 प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम् ।
 स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक्-पृथक् ॥ २३
 द्वापरेष्वभिर्वर्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ।
 मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद् वार्ता प्रसिद्ध्यति ॥ २४

विचारवाले ऋषिपुत्रोद्वारा उन वेदोंका पुनः (शाखा-प्रशाखा आदिमें) विभाजन कर दिया जाता है। वे महर्षिगण मन्त्र-ब्राह्मणों, स्वर और क्रमके विपर्ययसे ऋक्, यजुः और सामवेदकी संहिताओंका अलग-अलग संघटन करते हैं। भित्र विचारवाले श्रुतर्षियोंने ब्राह्मणभाग, कल्पसूत्र तथा भाष्यविद्या आदिको भी कहीं-कहीं सामान्य रूपसे और कहीं-कहीं विपरीतक्रमसे परिवर्तित कर दिया है। कुछ लोगोंने तो उनका समर्थन और कुछ लोगोंने अवरोध किया है। इसके बाद प्रत्येक द्वापरयुगमें भिन्नार्थदर्शी ऋषिवृन्द अपने-अपने विचारानुसार वैदिक प्रथामें अर्थभेद उत्पन्न कर देते हैं। पूर्वकालमें यजुर्वेद एक ही था, परंतु ऋषियोंने उसे बादमें सामान्य और विशेष अर्थसे कृष्ण और यजुः-रूपमें दो भागोंमें विभक्त कर दिया, जिससे शास्त्रमें भेद हो गया। इस प्रकार इन लोगोंने यजुर्वेदको अनेकों उपाख्यानों तथा प्रस्थानों, खिलांशों-द्वारा विस्तृत कर दिया है। इसी प्रकार अथर्ववेद और सामवेदके मन्त्रोंका भी ह्लास एवं विकल्पोद्वारा अर्थ-परिवर्तन कर दिया है। इस तरह प्रत्येक द्वापरयुगमें (पूर्वपरम्परासे चले आते हुए) वेदार्थको भिन्नदर्शी ऋषिवृन्द परिवर्तित करते हैं। फिर द्वापरके बीत जानेपर कलियुगमें वे वेदार्थ शनैः-शनैः नष्ट हो जाते हैं। वेदार्थका विपर्यय हो जानेके कारण द्वापरके अन्तमें ही यथार्थ दृष्टिका लोप, असामयिक मृत्यु और व्याधियोंके उपद्रव प्रकट हो जाते हैं। तब मन-वचन-कर्मसे उत्पन्न हुए दुःखोंके कारण लोगोंके मनमें खेद उत्पन्न होता है। खेदाधिक्यके कारण दुःखसे मुक्ति पानेके लिये उनके मनमें विचार जाग्रत् होता है। फिर विचार उत्पन्न होनेपर वैराग्य, वैराग्यसे दोष-दर्शन और दोषोंके प्रत्यक्ष होनेपर ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १०—२० ॥

इस प्रकार पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके द्वापरयुगमें उन मेधावी ऋषियोंके वंशमें इस भूतलपर शास्त्रोंके विरोधी लोग उत्पन्न होते हैं और उस युगमें आयुर्वेदमें विकल्प, ज्योतिषशास्त्रके अङ्गोंमें विकल्प, अर्थशास्त्रमें विकल्प, हेतुशास्त्रमें विकल्प, कल्पसूत्रोंकी प्रक्रियामें विकल्प, भाष्यविद्यामें विकल्प, स्मृतिशास्त्रोंमें नाना प्रकारके भेद, पृथक्-पृथक् मार्ग तथा मनुष्योंकी बुद्धियोंमें भेद प्रचलित हो जाते हैं। तब मन-वचन-कर्मसे लगे रहनेपर भी बड़ी कठिनाईसे लोगोंकी जीविका सिद्ध हो पाती है।

द्वापरे सर्वभूतानां कायकलेशः परः स्मृतः ।
 लोभोऽधृतिर्वणिगयुद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥ २५
 वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा ।
 वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥ २६
 पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तदा नृणाम् ।
 निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य संध्या तु पादतः ॥ २७
 प्रतिष्ठिते गुणैर्हीना धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ।
 तथैव संध्यापादेन अंशस्तस्यां प्रतिष्ठितः ॥ २८
 द्वापरस्य तु पर्याये पुष्ट्यस्य च निबोधत ।
 द्वापरस्यांशशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेरथ ॥ २९
 हिंसा स्तेयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
 एते स्वभावाः पुष्ट्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः ॥ ३०
 एष धर्मः स्मृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ।
 मनसा कर्मणा वाचा वार्ता सिद्ध्यति वा न वा ॥ ३१
 कलौ प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भयम् ।
 अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः ॥ ३२
 न प्रमाणं स्मृतश्चास्ति पुष्ट्ये घोरे युगे कलौ ।
 गर्भस्थो प्रियते कश्चिद्द्वौवनस्थस्तथापरः ॥ ३३
 स्थविरे मध्यकौमारे प्रियन्ते च कलौ प्रजाः ।
 अल्पतेजोबलाः पापा महाकोपा ह्याधार्मिकाः ॥ ३४
 अनृतव्रतलुब्धाश्च पुष्ट्ये चैव प्रजाः स्थिताः ।
 दुरिष्टेदुर्धीतैश्च दुराचारदुरागमैः ॥ ३५
 विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम् ।
 हिंसमानस्तथेष्व्या च क्रोधोऽसूयाक्षमः कृतम् ॥ ३६
 पुष्ट्ये भवन्ति जन्मनां लोभो मोहश्च सर्वशः ।
 संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ॥ ३७
 नाधीयन्ते तथा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ।
 उत्सीदन्ति तथा चैव वैश्यैः सार्थं तु क्षत्रियाः ॥ ३८
 शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह ।
 भवतीह कलौ तस्मिन्शशयनासनभोजनैः ॥ ३९

इस प्रकार द्वापरयुगमें सभी प्राणियोंका जीवन भी कष्टसे ही चल पाता है। उस समय जनतामें लोभ, धैर्यहीनता, वाणिज्य-व्यवसाय, युद्ध, तत्त्वोंकी अनिश्चितता, वैदें एवं शास्त्रोंकी मनःकल्पित रचना, धर्मसंकरता, वर्णाश्रम-धर्मका विनाश तथा काम और द्वेषकी भावना आदि दुर्गुणोंका प्राबल्य हो जाता है। उस समय लोगोंकी दो हजार वर्षोंकी पूर्णायु होती है। द्वापरकी समाजिके समय उसके चतुर्थांशमें उसकी संध्याका काल आता है। उस समय लोग धर्मके गुणोंसे हीन हो जाते हैं। उसी प्रकार संध्याके चतुर्थ चरणमें संध्यांशका समय उपस्थित होता है ॥ २१—२८ ॥

अब द्वापरयुगके बाद आनेवाले कलियुगका वृत्तान्त सुनिये। द्वापरकी समाजिके समय जब अंशमात्र शेष रह जाता है, तब कलियुगकी प्रवृत्ति होती है। जीव-हिंसा, चोरी, असत्यभाषण, माया (छल-कपट-दम्भ) और तपस्वियोंकी हत्या—ये कलियुगके स्वभाव (स्वाभाविक गुण) हैं। वह प्रजाओंको भलीभाँति चरितार्थ कर देता है। यही उसका अविकल धर्म है। यथार्थ धर्मका तो विनाश हो जाता है। उस समय मन-वचन-कर्मसे प्रयत्न करनेपर भी यह संदेह बना रहता है कि जीविकाकी सिद्धि होगी या नहीं। कलियुगमें विसूचिका, प्लेग आदि महामारक रोग होते हैं। इस घोर कलियुगमें भुखमरी और अकालका सदा भय बना रहता है। देशोंका उलट-फेर तो होता ही रहता है। किसी प्रमाणमें स्थिरता नहीं रहती। कोई गर्भमें ही मर जाता है तो कोई नौजवान होकर, कोई मध्य जवानीमें तो कोई बुढ़ापामें। इस प्रकार लोग कलियुगमें अकालमें ही कालके शिकार बन जाते हैं। उस समय लोगोंका तेज और बल घट जाता है। उनमें पाप, क्रोध और धर्महीनता बढ़ जाती है। वे असत्यभाषी और लोभी हो जाते हैं। ब्राह्मणोंके अनिष्ट-चिन्तन, अल्पाध्ययन, दुराचार और शास्त्र-ज्ञान-हीनता-रूप कर्मदोषोंसे प्रजाओंको सदा भय बना रहता है। कलियुगमें जीवोंमें हिंसा, अभिमान, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, असहिष्णुता, अधीरता, लोभ, मोह और संक्षोभ आदि दुर्गुण सर्वथा अधिक मात्रामें बढ़ जाते हैं। कलियुगके आनेपर ब्राह्मण न तो वैदेंका अध्ययन करते हैं और न यज्ञानुष्ठान ही करते हैं। क्षत्रिय भी वैश्योंके साथ (कर्मभ्रष्ट होकर) विनष्ट हो जाते हैं। कलियुगमें शूद्र मन्त्रोंके ज्ञाता हो जाते हैं और उनका शयन, आसन एवं भोजनके समय ब्राह्मणोंके साथ सम्पर्क होता है।

राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाखण्डानां प्रवर्तकाः ।
काषायिणश्च निष्कच्छास्तथा कापालिनश्च ह ॥ ४०
ये चान्ये देवव्रतिनस्तथा ये धर्मदूषकाः ।
दिव्यवृत्ताश्च ये केचिद् वृत्त्यर्थं श्रुतिलिङ्गिनः ॥ ४१
एवंविधाश्च ये केचिद्द्वन्तीह कलौ युगे ।
अधीयन्ते तदा वेदाभ्शूद्रान् धर्मार्थकोविदाः ॥ ४२
यजन्ति ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः ।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ॥ ४३
उपहृत्य तथान्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः ।
दुःखप्रचुरताल्पायुदेशोत्सादः सरोगता ॥ ४४
अधर्माभिनिवेशित्वं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम् ।
भूणहत्या प्रजानां च तदा होवं प्रवर्तते ॥ ४५
तस्मादायुर्बलं रूपं प्रहीयन्ते कलौ युगे ।
दुःखेनाभिप्लुतानां परमायुः शतं नृणाम् ॥ ४६
भूत्वा च न भवन्तीह वेदाः कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलं धर्महेतवः ॥ ४७
एषा कलियुगावस्था संध्यांशौ तु निबोधत ।
युगे युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन्यादांश्च सिद्धयः ॥ ४८
युगस्वभावाः संध्यासु अवतिष्ठन्ति पादतः ।
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादेनैवावतस्थिरे ॥ ४९
एवं संध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ।
तेषामधर्मिणां शास्ता भृगूणां च कुले स्थितः ॥ ५०
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नामा प्रमतिरुच्यते ।
कलिसंध्यांशभागेषु मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ५१
समास्त्रिंशत्तु सम्पूर्णाः पर्यटन् वै वसुन्धराम् ।
अस्त्रकर्मा स वै सेनां हस्त्यश्वरथसंकुलाम् ॥ ५२

शूद्र ही अधिकतर राजा होते हैं। पाखण्डका प्रचार बढ़ जाता है। शूद्रलोग गेरुआ वस्त्र धारण कर हाथमें नारियलका कपाल लेकर काछ खोले हुए (संन्यासीके वेषमें) घूमते रहते हैं ॥ २९—४० ॥

कुछ लोग देवताओंकी पूजा करते हैं तो कुछ लोग धर्मको दूषित करते हैं। कुछ लोगोंके आचार-विचार दिव्य होते हैं तो कुछ लोग जीविकोपार्जनके लिये साधुका वेष बनाये रहते हैं। कलियुगमें अधिकतर इसी प्रकारके लोग होते हैं। उस समय शूद्रलोग धर्म और अर्थके ज्ञाता बनकर वेदोंका अध्ययन करते हैं। शूद्रयोनिमें उत्पन्न नृपतिगण अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं। उस समय लोग स्त्री, बालक और गौओंकी हत्या कर, परस्पर एक-दूसरेको मारकर तथा अपहरण कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। कलियुगमें कष्टका बाहुल्य हो जाता है। प्राणियोंकी आयु थोड़ी हो जाती है। देशोंमें उथल-पुथल होता रहता है। व्याधिका प्रकोप बढ़ जाता है। अधर्मकी ओर लोगोंकी विशेष रुचि हो जाती है। सभीके आचार-विचार तामसिक हो जाते हैं। प्रजाओंमें भूणहत्याकी प्रवृत्ति हो जाती है। इसी कारण कलियुगमें आयु, बल और रूपकी क्षीणता हो जाती है। दुःखोंसे संतप्त हुए लोगोंकी परमायु सौ वर्षकी होती है। कलियुगमें सम्पूर्ण वेद विद्यमान रहते हुए भी नहींके बराबर हो जाते हैं तथा धर्मके एकमात्र कारण यज्ञोंका विनाश हो जाता है। यह तो कलियुगकी दशा बतलायी गयी, अब उसकी संध्या और संध्यांशका वर्णन सुनिये। प्रत्येक युगमें तीन-तीन चरण व्यतीत हो जानेके बाद सिद्धियाँ घट जाती हैं, अर्थात् धर्मका हास हो जाता है। उनकी संध्याओंमें युगका स्वभाव चतुर्थांश मात्र रह जाता है। उसी प्रकार संध्यांशोंमें संध्याका स्वभाव भी चतुर्थांश ही शेष रहता है ॥ ४१—४९ ॥

इस प्रकार स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें कलियुगके अन्तिम समयमें प्राप्त हुए संध्यांशकालमें उन अधर्मियोंका शासन करनेके लिये भृगुवंशमें चन्द्रगोत्रीय प्रमति* नामक राजा उत्पन्न होता है। वह अखंधारी नरेश हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई सेनाको साथ लेकर तीस वर्षोंतक पृथ्वीपर

* श्रीविष्णुधर्मोत्तर महापुराणमें भी इस राजाकी विस्तृत महिमा निरूपित है। वासुदेवशरण अग्रवाल आदि इतिहासके अनेक विद्वान् इसे राजा विक्रमादित्यका अपर नाम मानते हैं।

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
 स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् सर्वान्निजचिन्वान् ॥ ५३
 स हत्वा सर्वशश्वैव राजानः शूद्रयोनयः ।
 पाखण्डान् स तदा सर्वान्निःशेषानकरोत् प्रभुः ॥ ५४
 अधार्मिकाश्च ये केचित्तान् सर्वान् हन्ति सर्वशः ।
 औदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ॥ ५५
 प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।
 तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह ॥ ५६
 गान्धारान्यारदांश्वैव पह्लवान् यवनाज्ञकान् ।
 तुषारान्बर्वराभ्युवेतान्हलिकान्दरदान्खसान् ॥ ५७
 लम्पकानान्धकांश्चापि चोरजातींस्तथैव च ।
 प्रवृत्तवक्रो वलवाङ्शूद्राणामन्तकृद् बभौ ॥ ५८
 विद्राव्य सर्वथैतानि चचार वसुधामिमाम् ।
 मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येह जङ्गिवान् ॥ ५९
 पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान् ।
 स्वतः स वै चन्द्रमसः पूर्व कलियुगे प्रभुः ॥ ६०
 द्वात्रिंशोऽभ्युदिते वर्षे प्रकान्ते विंशतिं समाः ।
 निजघ्ने सर्वभूतानि मानुषाण्येव सर्वशः ॥ ६१
 कृत्वा बीजावशिष्टां तां पृथ्वीं क्रूरेण कर्मणा ।
 परस्परनिमित्तेन कालेनाकस्मिकेन च ॥ ६२
 संस्थिता सहसा या तु सेना प्रमतिना सह ।
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये सिद्धिं प्राप्ता समाधिना ॥ ६३
 ततस्तेषु प्रनष्टेषु संध्यांशे क्रूरकर्मसु ।
 उत्साद्य पार्थिवान् सर्वास्तेष्वतीतेषु वै तदा ॥ ६४
 ततः संध्यांशके काले सम्प्राप्ते च युगान्तके ।
 स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित् ॥ ६५
 स्वाप्रदानास्तदा ते वै लोभाविष्टास्तु वृन्दशः ।
 उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रलुप्यन्ति परस्परम् ॥ ६६
 अराजके युगांशे तु संक्षये समुपस्थिते ।
 प्रजास्ता वै तदा सर्वाः परस्परभयार्दिताः ॥ ६७

भ्रमण करता है। उस समय उसके साथ आयुधधारी सैकड़ों-हजारों ब्राह्मण भी रहते हैं। वह सामर्थ्यशाली वीर सभी म्लेच्छोंका विनाश कर देता है तथा शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुए राजाओंका सर्वथा संहार करके सम्पूर्ण पाखण्डोंको भी निर्मूल कर देता है। वह सर्वत्र घूम-घूमकर सभी धर्महीनोंका वध कर देता है। शूद्रोंका विनाश करनेवाला वह महाबली राजा उत्तर दिशाके निवासी, मध्यदेशीय, पर्वतीय, पौरस्त्य, पाश्चात्य, विन्ध्याचलके ऊपर तथा तलहटियोंमें स्थित, दाक्षिणात्य, सिंहलोंसहित द्रविड, गान्धार, पारद, पह्लव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, श्वेत, हलीक, दरद, खस, लम्पक, आन्ध्रक तथा चोर जातियोंका संहारकर अपना शासनचक्र प्रवृत्त करता है। वह समस्त अधार्मिक प्राणियोंको खदेड़कर इस पृथ्वीपर विचरण करता हुआ सुशोभित होता है ॥ ५०—५८ ॥

पराक्रमी प्रमति पूर्व जन्ममें विष्णु था और इस जन्ममें महाराज मनुके वंशमें भूतलपर उत्पन्न हुआ था। पहले कलियुगमें वह वीर चन्द्रमाका पुत्र था। बत्तीस वर्षकी अवस्था होनेपर उसने बीस वर्षोंतक भूतलपर सर्वत्र घूम-घूमकर सभी धर्महीन मानवों एवं अन्य प्राणियोंका संहार कर डाला। उसने आकस्मिक कालके वशीभूत हो बिना किसी निमित्तके क्रूर कर्मद्वारा उस पृथ्वीको बीजमात्र अवशेष कर दिया। तत्पश्चात् प्रमतिके साथ जो विशाल सेना थी, वह सहसा गङ्गा और यमुनाके मध्यभागमें स्थित हो गयी और समाधिद्वारा सिद्धिको प्राप्त हो गयी। इस प्रकार युगके अन्तमें संध्यांशकालके प्राप्त होनेपर सभी अधार्मिक राजाओंका विनाश होता है। उन क्रूरकर्मियोंके नष्ट हो जानेपर भूतलपर कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत प्रजाएँ अवशिष्ट रह जाती हैं। वे लोग अपनी वस्तु दूसरेको देना नहीं चाहते। उनमें लोभकी मात्रा अधिक होती है। वे लोग यूथ-के-यूथ एकत्र होकर परस्पर एक-दूसरेकी वस्तु लूट-खसोट लेते हैं तथा उन्हें मार भी डालते हैं। उस विनाशकारी संध्यांशके उपस्थित होनेपर अराजकता फैल जाती है। उस समय सारी प्रजामें परस्पर भय बना रहता है।

व्याकुलास्तः परावृत्तास्त्यक्त्वा देवगृहाणि तु ।
 स्वान् स्वान् प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात्सुदुःखिताः ॥ ६८
 नष्टे श्रौतस्मृते धर्मे कामक्रोधवशानुगाः ।
 निर्मर्यादा निरानन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥ ६९
 नष्टे धर्मे प्रतिहता हस्वकाः पञ्चविंशकाः ।
 हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलप्रजाः ॥ ७०
 अनावृष्टिहतास्ते वै वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
 आश्रयन्ति स्म प्रत्यन्तान् हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ७१
 सरितः सागरानूपान् सेवन्ते पर्वतानपि ।
 चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ॥ ७२
 वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः ।
 एवं कष्टमनुप्राप्ता हृल्पशेषाः प्रजास्ततः ॥ ७३
 जन्तवश्च क्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन् ।
 संश्रयन्ति च देशांस्तांश्चक्रवत् परिवर्तनाः ॥ ७४
 ततः प्रजास्तु ताः सर्वा मांसाहारा भवन्ति हि ।
 मृगान् वराहान् वृषभान् ये चान्ये वनचारिणः ॥ ७५
 भक्ष्यांश्चैवाप्यभक्ष्यांश्च सर्वास्तान् भक्षयन्ति ताः ।
 समुद्रसंश्रिता यास्तु नदीश्चैव प्रजास्तु ताः ॥ ७६
 तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वशः ।
 अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगताः प्रजाः ॥ ७७
 यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत् किल ।
 तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूताः प्रजास्तथा * ॥ ७८
 एवं वर्षशतं पूर्णं दिव्यं तेषां न्यवर्तत ।
 षट्त्रिंशच्च सहस्राणि मानुषाणि तु तानि वै ॥ ७९
 अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।
 मत्स्याश्चैव हताः सर्वैः क्षुधाविष्टैश्च सर्वशः ॥ ८०

लोग व्याकुल होकर देवताओं और गृहोंको छोड़कर उनसे मुख मोड़ लेते हैं। सभीको अपने-अपने प्राणोंकी रक्षाकी चिन्ता लगी रहती है। क्रूरताका बोलबाला होनेके कारण लोग अत्यन्त दुःखी रहते हैं। श्रौत एवं स्मार्त धर्म नष्ट हो जाता है। सभी लोग काम और क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं। वे मर्यादा, आनन्द, स्नेह और लज्जासे रहित हो जाते हैं। धर्मके नष्ट हो जानेपर वे भी विनष्ट हो जाते हैं। उनका कद छोटा हो जाता है और उनकी आयु पचीस वर्षकी हो जाती है। विषादसे व्याकुल हुए लोग अपनी पत्नी और पुत्रोंको भी छोड़ देते हैं। वे अकालसे पीड़ित होनेके कारण जीविकाके साधनोंका परित्याग कर कष्ट झेलते हैं तथा अपने जनपदोंको छोड़कर निकटवर्ती देशोंकी शरण लेते हैं ॥ ५९—७१ ॥

कुछ लोग भागकर नदियों, समुद्र-तटवर्ती भागों तथा पर्वतोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। वल्कल और काला मृगचर्म ही उनका परिधान होता है। वे क्रियाहीन और परिग्रहरहित हो जाते हैं तथा वर्णाश्रमधर्मसे भ्रष्ट होकर घोर संकर-धर्ममें आस्था करने लगते हैं। उस समय स्वल्प मात्रामें बची हुई प्रजा इस प्रकार कष्ट झेलती है। क्षुधासे पीड़ित जीव-जन्म दुःखके कारण अपने जीवनसे ऊब जाते हैं, किंतु चक्रकी तरह घूमते हुए पुनः उन्हीं देशोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। तदनन्तर वे सारी प्रजाएँ मांसाहारी हो जाती हैं। उनमें भक्ष्याभक्ष्यका विचार लुप्त हो जाता है। वे मृगों, सूकरों, वृषभों तथा अन्यान्य सभी वनचारी जीवोंको खाने लगती हैं। जो प्रजाएँ नदियों और समुद्रोंके तटपर निवास करती हैं, वे भी भोजनके लिये सर्वत्र मछलियोंको पकड़ती हैं। इस प्रकार अभक्ष्य भोजनके दोषके कारण सारी प्रजा एक वर्णकी हो जाती हैं, अर्थात् वर्णधर्म नष्ट हो जाता है। जैसे पहले कृतयुगमें एक ही (हंसनामका) वर्ण था, उसी तरह कलियुगके अन्तमें सारी प्रजाएँ शूद्रवर्णकी हो जाती हैं। इस प्रकार उन प्रजाओंके पूरे एक सौ दिव्य वर्ष तथा मानुष गणनाके अनुसार छत्तीस हजार वर्ष व्यतीत होते हैं। इतने लम्बे समयमें क्षुधासे पीड़ित वे सभी लोग सर्वत्र पशुओं, पक्षियों और मछलियोंको मारकर

* कलियुगका वर्णन अन्य पुराणों, सुभाषितों, गोस्वामीजीके मानसादि काव्यों तथा समर्थरामदासजीके दासबोध आदिमें भी बड़े आकर्षक ढंगसे हुआ है, जिनके अध्ययनसे लोग दोषोंसे बचते हैं। पर मत्स्यपुराण-जितना विस्तृत वर्णन वायु, ब्रह्माण्डादि पुराणों एवं महाभारत-वनपर्वमें भी नहीं हुआ है। तथापि वहाँ भी यह प्रसङ्ग प्रायः कुछ कम इन्हीं श्लोकोंमें मिलता है।

निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ ।
 संध्यांशे प्रतिपत्ते तु निःशेषास्तु तदा कृताः ॥ ८१
 ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् ।
 फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ॥ ८२
 वल्कलान्यथ वासांसि अथःशव्याश्च सर्वशः ।
 परिग्रहो न तेष्वस्ति धनं शुद्धिरथापि वा ॥ ८३
 एवं क्षयं गमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाः प्रजास्तदा ।
 तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ॥ ८४
 एवं वर्षशतं दिव्यं संध्यांशस्तस्य वर्तते ।
 ततो वर्षशतस्यान्ते अल्पशिष्टाः स्त्रियः सुताः ॥ ८५
 मिथुनानि तु ताः सर्वा ह्यन्योन्यं सम्प्रजन्मिरे ।
 ततस्तास्तु मियन्ते वै पूर्वोत्पन्नाः प्रजास्तु याः ॥ ८६
 जातमात्रेष्वपत्येषु ततः कृतमर्वतं ।
 यथा स्वर्गे शरीराणि नरके चैव देहिनाम् ॥ ८७
 उपभोगसमर्थानि एवं कृतयुगादिषु ।
 एवं कृतस्य संतानः कलेश्वैव क्षयस्तथा ॥ ८८
 विचारणात् निर्वेदः साम्यावस्थात्मना तथा ।
 ततश्वैवात्मसम्बोधः सम्बोधाद्वर्मशीलता ॥ ८९
 कलिशिष्टेषु तेष्वेवं जायन्ते पूर्ववत् प्रजाः ।
 भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमर्वतं ॥ ९०
 अतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह ।
 एते युगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासतः ॥ ९१
 विस्तरेणानुपूर्व्याच्य नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ।
 प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै ॥ ९२
 उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्तयुगास्तथा ।
 तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्ति च ॥ ९३
 सह सप्तर्षिभियै तु तत्र ये च व्यवस्थिताः ।
 ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः ॥ ९४
 तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च ॥
 वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्तविधानतः ।
 एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्तन्तीह वै कृते ॥ ९५

खा डालते हैं। इस प्रकार जब संध्यांशके प्रवृत्त होनेपर सारे मछली, पक्षी और पशु मारकर निःशेष कर दिये जाते हैं, तब पुनः लोग कन्द-मूल खोदकर खाने लगते हैं। उस समय वे सभी गृहरहित होकर फल-मूलपर ही जीवन-निर्वाह करते हैं। वल्कल ही उनका वस्त्र होता है। वे सर्वत्र भूमिपर ही शयन करते हैं। उनके परिग्रह (स्त्री-परिवार आदि), अर्थशुद्धि और शौचाचार आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ७२—८३ ॥

इस प्रकार उस समय थोड़ी बची हुई प्रजाएँ नष्ट हो जाती हैं। उनमें भी जो थोड़ी शेष रह जाती हैं, उनकी आहार-शुद्धिके कारण वृद्धि होती है। इस प्रकार कलियुगका संध्यांश एक सौ दिव्य वर्षोंका होता है। उन सौ वर्षोंके बीत जानेपर जो अल्पजीवी संतानोत्पत्ति होती है और इसके पूर्व जो प्रजाएँ उत्पन्न हुई थीं, वे सभी मर जाती हैं। उन संतानोंके उत्पन्न होनेपर कृतयुगका प्रारम्भ होता है। जैसे (मृत्युके पश्चात् प्राप्त हुए) प्राणियोंके शरीर स्वर्ग और नरकमें उपभोगके योग्य होते हैं, उसी तरह कृतयुग आदि युगोंमें भी होता है। उसी प्रकार वह नूतन संतान कृतयुगकी वृद्धि और कलियुगके विनाशका कारण होता है। आत्माकी साम्यावस्थाके विचारसे विरक्ति उत्पन्न होती है, उससे आत्मज्ञान होता है और ज्ञानसे धर्म-बुद्धि होती है। इसी कारण कलियुगके अन्तमें बचे हुए लोगोंमें भावी प्रयोजनके प्रभावसे पुनः पूर्ववत् प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। तदनन्तर कृतयुगका आरम्भ होता है। उस समय मन्वन्तरोंमें जो भूत एवं भावी कर्म होते रहे हैं, वे सभी आवृत्त होने लगते हैं। इस प्रकार मैंने संक्षेपसे युगोंके स्वभावका वर्णन कर दिया ॥ ८४—९१ ॥

अब मैं पुनः कृतयुगके प्रवृत्त होनेपर ब्रह्माको नमस्कार करके उसका विस्तारपूर्वक आनुपूर्वी वर्णन कर रहा हूँ। कलियुगके अन्तमें बचे हुए लोगोंमें कृतयुगकी तरह ही संतानोत्पत्ति होती है। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियोंके बीजकी रक्षाके लिये जो सिद्धांग अदृष्टरूपसे विचरण करते हुए वर्तमान रहते हैं, वे सभी तथा सप्तर्षियोंके साथ जो अन्य लोग स्थित रहते हैं, वे सभी मिलकर कृतयुगमें क्रियाशील संततियोंके प्रति व्यवस्थाका विधान करते हैं और सप्तर्षिगण उन्हें श्रौत एवं स्मार्त विधिके अनुसार वर्ण एवं आश्रमके आचारसे सम्पन्न

श्रौतस्मार्तस्थितानां तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते ।
ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे ॥ १६
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते ।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेश्वेवापरं तृणम् ॥ १७
वनानां प्रथमं वृष्णा तेषां मूलेषु सम्भवः ।
एवं युगाद्युगानां वै संतानस्तु परस्परम् ॥ १८
प्रवर्तते ह्यविच्छेदाद् यावन्मन्वन्तरक्षयः ।
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थां काम एव च ॥ १९
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रयः पादाः क्रमेण तु ।
इत्येष प्रतिसंधिर्वः कीर्तितस्तु मया द्विजाः ॥ २००
चतुर्युगाणां सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम् ।
एषां चतुर्युगाणां तु गणिता ह्येकसमतिः ॥ २०१
क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते ।
युगाख्यासु तु सर्वासु भवतीह यदा च यत् ॥ २०२
तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ।
सर्गे सर्गे यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च ॥ २०३
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह ।
आसुरी यातुधानी च पैशाची यक्षराक्षसी ॥ २०४
युगे युगे तदा काले प्रजा जायन्ति ताः शृणु ।
यथाकल्पं युगैः सार्थं भवन्ते तुल्यलक्षणाः ॥ २०५
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै यथाक्रमम् ।
मन्वन्तराणां परिवर्तनानि
चिप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥ २०६
एते युगस्वभावा वः परिक्रान्ता यथाक्रमम् ।
मन्वन्तराणि यान्यस्मिन् कल्पे वक्ष्यामि तानि च ॥ २०७

धर्मका उपदेश देते हैं। इस प्रकार सप्तर्षियोंद्वारा प्रदर्शित धर्ममार्गपर चलती हुई सारी प्रजा श्रौत एवं स्मार्त विधिका पालन करती है। वे सप्तर्षि धर्मकी व्यवस्था करनेके लिये कृतयुगमें स्थित रहते हैं। वे ही ऋषिगण मन्वन्तरोंके कार्यकालतक स्थित रहते हैं। जैसे वनोंमें दावाग्निसे जली हुई घासोंकी जड़में प्रथम वृष्टि होनेपर पुनः अङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मन्वन्तरकी समाप्तिपर्यन्त एकसे दूसरे युगमें अविच्छिन्नरूपसे प्रजाओंमें परस्पर संतानकी परम्परा चलती रहती है। सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ, काम—ये सब क्रमशः आनेवाले युगोंमें तीन चरणसे हीन हो जाते हैं। द्विजवरो! इस प्रकार मैंने आप-लोगोंसे युगकी प्रतिसंधिका वर्णन किया ॥ १२—२०० ॥

यही नियम सभी—चारों युगोंके लिये हैं। ये चारों युग जब क्रमशः इकहत्तर बार बीत जाते हैं, तब उसे एक मन्वन्तरका समय कहा जाता है। एक मन्वन्तरके युगोंमें जैसा कार्यक्रम होता है, वैसा ही अन्य मन्वन्तरके युगोंमें भी क्रमशः होता रहता है। प्रत्येक सर्गमें जैसे भेद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही चौदहों मन्वन्तरोंमें समझना चाहिये। प्रत्येक युगमें समयानुसार असुर, यातुधान, पिशाच, यक्ष और राक्षस स्वभाववाली प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। अब उनके विषयमें सुनिये। कल्पानुसार युगोंके साथ-साथ उन्हींके अनुरूप लक्षणोंवाली प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार क्रमशः युगोंका यह लक्षण बतलाया गया। मन्वन्तरोंका यह परिवर्तन युगोंके स्वभावानुसार चिरकालसे चला आ रहा है। इसलिये यह जीवलोक उत्पत्ति और विनाशके चक्करमें फँसा हुआ क्षणमात्र भी स्थिर नहीं रहता। इस प्रकार आपलोगोंको ये युगस्वभाव क्रमशः बतलाये जा चुके। अब इस कल्पमें जितने मन्वन्तर हैं, उनका वर्णन करूँगा ॥ १०१—१०७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तनयुगवर्तनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्वन्तरानुकीर्तनयुगवर्तन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४४ ॥

एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

युगानुसार प्राणियोंकी शरीर-स्थिति एवं वर्ण-व्यवस्थाका वर्णन, श्रौत-स्मार्त, धर्म, तप, यज्ञ, क्षमा, शम, दया आदि गुणोंका लक्षण, चातुहोंत्रिकी विधि तथा पाँच प्रकारके ऋषियोंका वर्णन

सूत उवाच

मन्वन्तराणि यानि स्युः कल्पे कल्पे चतुर्दश।
व्यतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह॥ १
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च स्थितिं वक्ष्ये युगे युगे।
तस्मिन् युगे च सम्भूतिर्यासां यावच्च जीवितम्॥ २
युगमात्रं तु जीवन्ति न्यूनं तत् स्याद् द्वयेन च।
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह॥ ३
मनुष्याणां पशूनां च पक्षिणां स्थावरैः सह।
तेषामायुरुपक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः॥ ४
तथैवायुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः।
अस्थितिं च कलौ दृष्ट्वा भूतानामायुषश्च वै॥ ५
परमायुः शतं त्वेतन्मानुषाणां कलौ स्मृतम्।
देवासुरमनुष्याश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः॥ ६
परिणाहोच्छ्रये तुल्या जायन्तेह कृते युगे।
षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधो ह्यष्टानां देवयोनिनाम्॥ ७
नवाङ्गुलप्रमाणेन निष्पत्रेन तथाष्टकम्।
एतत्स्वाभाविकं तेषां प्रमाणमधिकुर्वताम्॥ ८
मनुष्या वर्तमानास्तु युगसंध्यांशकेष्विह।
देवासुरप्रमाणं तु सप्तसप्ताङ्गुलं क्रमात्॥ ९
चतुराशीतिकैश्चैव कलिजैरङ्गुलैः स्मृतम्।
आपादतो मस्तकं तु नवताला भवेत्तु यः॥ १०
संहृत्याजानुबाहुश्च दैवतैरभिपूज्यते।
गवां च हस्तिनां चैव महिषस्थावरात्मनाम्॥ ११
क्रमेणैतेन विज्ञेये हासवृद्धी युगे युगे।
षट्सप्तत्यङ्गुलोत्सेधः पशुराकुदो भवेत्॥ १२
अङ्गुलानामष्टशतमुत्सेधो हस्तिनां स्मृतः।
अङ्गुलानां सहस्रं तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम्॥ १३
शतार्धमङ्गुलानां तु हृत्सेधः शाखिनां परः।
मानुषस्य शरीरस्य संनिवेशस्तु यादृशः॥ १४

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्रत्येक कल्पमें जो चौदह मन्वन्तर होते हैं, उनमें जो वीत चुके हैं तथा जो आनेवाले हैं, उन मन्वन्तरोंके प्रत्येक युगमें प्रजाओंकी जैसी उत्पत्ति और स्थिति होती है तथा जितना उनका आयु-प्रमाण होता है, इन सबका विस्तारपूर्वक आनुपूर्वीक्रमसे वर्णन कर रहा हूँ। उनमें कुछ प्राणी तो युगपर्यन्त जीवित रहते हैं और कुछ उनसे कम समयतक ही जीते हैं। दोनों प्रकारकी बातें देखी जाती हैं। ऐसी ही विधि चौदहों मन्वन्तरोंमें जाननी चाहिये। सर्वत्र युगधर्मानुसार मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों और स्थावरोंकी आयु घटती जाती है। कलियुगमें युगधर्मानुसार सर्वत्र प्राणियोंकी आयुकी अस्थिरता देखकर मनुष्योंकी परमायु सौ वर्षकी बतलायी गयी है। कृतयुगमें देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस—ये सभी एक ही विस्तार और ऊँचाईके शरीरवाले उत्पन्न होते हैं। उनमें आठ प्रकारकी देवयोनियोंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंके शरीर छानबे अंगुल ऊँचे और नौ अंगुल विस्तृत निष्पत्र होते हैं, यह उनकी आयुका स्वाभाविक प्रमाण है। अन्य देवताओं तथा असुरोंके शरीरका विस्तार क्रमशः सात-सात अंगुलका होता है। कलियुगके संध्यांशमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके शरीर कलियुगोत्पन्न मानवोंके अंगुलप्रमाणसे चौरासी अंगुलके होते हैं॥ १—१४॥

जिसका शरीर पैरसे लेकर मस्तकपर्यन्त नौ बित्ता—(एक सौ आठ अंगुल)—का होता है तथा भुजाएँ जानुतक लम्बी होती हैं, उसका देवतालोग भी आदर करते हैं। प्रत्येक युगमें गौओं, हाथियों, भैंसों और स्थावर प्राणियोंके शरीरोंका हास स एवं वृद्धि इसी क्रमसे जाननी चाहिये। पशु अपने कुकुद (मौर)-तक छिह्नर अंगुल ऊँचा होता है। हाथियोंके शरीरकी ऊँचाई एक सौ आठ अंगुलकी बतलायी जाती है। वृक्षोंकी अधिक-से-अधिक ऊँचाई एक हजार बानबे अंगुलकी होती है। मनुष्यके शरीरका जैसा आकार-प्रकार होता है,

तल्लक्षणं तु देवानां दृश्यते ऽन्वयदर्शनात् ।
 बुद्ध्यातिशयसंयुक्तो देवानां काय उच्यते ॥ १५
 तथा नातिशयश्चैव मानुषः काय उच्यते ।
 इत्येव हि परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः ॥ १६
 पशूनां पक्षिणां चैव स्थावराणां च सर्वशः ।
 गावोऽजाश्वाश्व विज्ञेया हस्तिनः पक्षिणो मृगाः ॥ १७
 उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्त्वह सर्वशः ।
 यथाक्रमोपभोगाश्व देवानां पशुमूर्तयः ॥ १८
 तेषां रूपानुरूपैश्च प्रमाणैः स्थिरजङ्घमाः ।
 मनोऽन्नैस्तत्र तैर्भोगैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १९
 अथ सन्तः प्रवक्ष्यामि साधूनथ ततश्च वै ।
 ब्राह्मणाः श्रुतिशब्दाश्व देवानां व्यक्तमूर्तयः ।
 सम्पूज्या ब्रह्मणा ह्येतास्तेन सन्तः प्रचक्षते ॥ २०
 सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च ।
 ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ताः श्रौतस्मार्तेन कर्मणा ॥ २१
 वर्णाश्रमेषु युक्तस्य सुखोदक्षस्य स्वर्गतौ ।
 श्रौतस्मार्तो हि यो धर्मो ज्ञानधर्मः स उच्यते ॥ २२
 दिव्यानां साधनात् साधुब्रह्मचारी गुरोर्हितः ।
 कारणात् साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ॥ २३
 तपसश्च तथारण्ये साधुर्वेखानसः स्मृतः ।
 यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ॥ २४
 धर्मो धर्मगतिः प्रोक्तः शब्दो हेष क्रियात्मकः ।
 कुशलाकुशलौ चैव धर्माधर्मौ ब्रवीत् प्रभुः ॥ २५
 अथ देवाश्व पितरः ऋषयश्चैव मानुषाः ।
 अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवते मौनमूर्तिना ॥ २६
 धर्मेति धारणे धातुर्महत्त्वे चैव उच्यते ।
 अधारणेऽमहत्त्वे वाधर्मः स तु निरुच्यते ॥ २७
 तत्रैषप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते ।
 अधर्मशानिष्टफलं आचार्यैर्नोपदिश्यते ॥ २८

वही लक्षण वंशपरम्परावश देवताओंमें भी देखा जाता है । देवताओंका शरीर केवल बुद्धिकी अतिशयतासे युक्त बतलाया जाता है । मानव-शरीरमें बुद्धिकी उतनी अधिकता नहीं रहती । इस प्रकार देवताओं और मानवोंके शरीरोंमें उत्पन्न हुए जो भाव हैं, वे पशुओं, पक्षियों और स्थावर प्राणियोंके शरीरोंमें भी पाये जाते हैं । गौ, बकरा, घोड़ा, हाथी, पक्षी और मृग—इनका सर्वत्र यज्ञीय कर्मोंमें उपयोग होता है तथा ये पशुमूर्तियाँ क्रमशः देवताओंके उपभोगमें प्रयुक्त होती हैं । उन उपभोक्ता देवताओंके रूप और प्रमाणके अनुरूप ही उन चर-अचर प्राणियोंकी मूर्तियाँ होती हैं । वे उन मनोऽन्न भोगोंका उपभोग करके सुखका अनुभव करते हैं ॥ १०—१९ ॥

अब मैं संतों तथा साधुओंका वर्णन कर रहा हूँ । ब्राह्मण ग्रन्थ और श्रुतियोंके शब्द—ये भी देवताओंकी निर्देशिका-मूर्तियाँ हैं । अन्तःकरणमें इनके तथा ब्रह्मका संयोग बना रहता है, इसलिये ये संत कहलाते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सामान्य एवं विशेष धर्मोंमें सर्वत्र श्रौत एवं स्मार्त विधिके अनुसार कर्मका आचरण करते हैं । वर्णाश्रम-धर्मोंके पालनमें तत्पर तथा स्वर्ग-प्राप्तिमें सुख माननेवाले लोगोंद्वारा आचरित जो श्रुति एवं स्मृतिसम्बन्धी धर्म है, उसे ज्ञानधर्म कहा जाता है । दिव्य सिद्धियोंकी साधनामें संलग्न तथा गुरुका हितैषी होनेके कारण ब्रह्मचारीको साधु कहते हैं । (अन्य आश्रमोंकी जीविकाका) निमित्त तथा स्वयं साधनामें निरत होनेके कारण गृहस्थ भी साधु कहलाता है । वनमें तपस्या करनेवाला साधु वैखानस नामसे अभिहित होता है । योगकी साधनामें प्रयत्नशील संन्यासीको भी साधु कहते हैं । 'धर्म' शब्द क्रियात्मक है और यह धर्माचारणमें ही प्रयुक्त होनेवाला कहा गया है । सामर्थ्यशाली भगवान्ने धर्मको कल्याणकारक और अधर्मको अनिष्टकारक बतलाया है तथा देवता, पितर, ऋषि और मानव 'यह धर्म है और यह धर्म नहीं है' ऐसा कहकर मौन धारण कर लेते हैं । 'धृ' धातु धारण करने तथा महत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त होती है । अधारण एवं अधर्म शब्दका अर्थ इसके विपरीत है । आचार्यलोग इष्टकी प्राप्ति करानेवाले धर्मका ही उपदेश करते हैं । अधर्म अनिष्ट-फलदायक होता है, इसलिये आचार्यगण उसका उपदेश नहीं करते ।

वृद्धाश्लोलुपाश्वैव आत्मवन्तो ह्यदाम्भिकाः ।
सम्यग्विनीता मृदवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते ॥ २९

धर्मज्ञैर्विहितो धर्मः श्रौतस्मार्तो द्विजातिभिः ।
दाराग्निहोत्रसम्बन्धमिन्या श्रौतस्य लक्षणम् ॥ ३०
स्मार्तो वर्णश्रमाचारो यमैश्च नियमैर्युतः ।
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥ ३१
ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि वै श्रुतिः ।
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वा तन्मनुरब्रवीत् ॥ ३२
तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णश्रमविभागशः ।
एवं वै द्विविधो धर्मः शिष्टाचारः स उच्यते ॥ ३३
शिष्ठेर्थातोश्च निष्ठान्ताच्छिष्टशब्दं प्रचक्षते ।
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः ॥ ३४
मनुः सप्तर्षयश्वैव लोकसन्तानकारिणः ।
तिष्ठन्तीह च धर्मार्थं ताज्जिष्ठान् सम्प्रचक्षते ॥ ३५
तैः शिष्टैश्चलितो धर्मः स्थाप्यते वै युगे युगे ।
त्रयी वार्ता दण्डनीतिः प्रजावर्णश्रमेष्या ॥ ३६
शिष्टैराचर्यते यस्मात्पुनश्वैव मनुक्षये ।
पूर्वैः पूर्वैर्मतत्वाच्य शिष्टाचारः स शाश्वतः ॥ ३७
दानं सत्यं तपोऽलोभो विद्येन्या पूजनं दमः ।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥ ३८
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च ह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः ॥ ३९
विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात् स्मार्तं उच्यते ।
इन्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णश्रमात्मकः ॥ ४०
प्रत्यङ्गानि प्रवक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥ ४१
दृष्टानुभूतमर्थं च यः पृष्ठो न विगृहते ।
यथाभूतप्रवादस्तु इत्येतत् सत्यलक्षणम् ॥ ४२

जो वृद्ध, निर्लोभ, आत्मज्ञानी, निष्कपट, अत्यन्त विनम्र तथा मृदुल स्वभाववाले होते हैं, उन्हें आचार्य कहा जाता है। धर्मके ज्ञाता द्विजातियोंद्वारा श्रौत एवं स्मार्त-धर्मका विधान किया गया है। इनमें दारसम्बन्ध (विवाह), अग्निहोत्र और यज्ञ—ये श्रौत-धर्मके लक्षण हैं तथा यम और नियमोंसे युक्त वर्णश्रमका आचरण स्मार्त-धर्म कहलाता है ॥ २०—३० १/२ ॥

सप्तर्षियोंने पूर्ववर्ती ऋषियोंसे श्रौत-धर्मका ज्ञान प्राप्त करके पुनः उसका उपदेश किया था। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—ये ब्रह्माके अङ्ग हैं। व्यतीत हुए मन्वन्तरके धर्मोंका स्मरण करके मनुने उनका उपदेश किया है। इसलिये वर्णश्रमके विभागानुसार प्रयुक्त हुआ धर्म स्मार्त कहलाता है। इस प्रकार श्रौत एवं स्मार्तरूप द्विविध धर्मको शिष्टाचार कहते हैं। ‘शिष्ट’ धातुसे निष्ठासंज्ञक ‘क्त’ प्रत्ययका संयोग होनेसे ‘शिष्ट’ शब्द निष्पत्र होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें इस भूतलपर जो धार्मिकलोग वर्तमान रहते हैं, उन्हें शिष्ट कहा जाता है। इस प्रकार लोककी वृद्धि करनेवाले सप्तर्षि और मनु इस भूतलपर धर्मका प्रचार करनेके लिये स्थित रहते हैं, अतः वे शिष्ट शब्दसे अभिहित होते हैं। वे शिष्टगण प्रत्येक युगमें मार्ग-भ्रष्ट हुए धर्मकी पुनः स्थापना करते हैं। इसीलिये शिष्टगण दूसरे मन्वन्तरमें प्रजाओंके वर्णश्रम-धर्मकी सिद्धिके लिये पुनः वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद), वार्ता (कृषिव्यापार) और दण्डनीतिका आचरण करते हैं। इस प्रकार पूर्वके युगोंमें उपस्थित पूर्वजोंद्वारा अभिमत होनेके कारण यह शिष्टाचार सनातन होता है। दान, सत्य, तपस्या, निर्लोभता, विद्या, यज्ञानुष्ठान, पूजन और इन्द्रियनिग्रह—ये आठ आचरण शिष्टाचारके लक्षण हैं। चौंकि मनु और सप्तर्षि आदि शिष्टगण सभी मन्वन्तरोंमें इस लक्षणके अनुसार आचरण करते हैं, इसलिये इसे शिष्टाचार कहा जाता है। इस प्रकार पूर्वानुक्रमसे श्रवण किये जानेके कारण श्रुतिसम्बन्धी धर्मको श्रौत जानना चाहिये और स्मरण होनेके कारण स्मृति-प्रतिपादित धर्मको स्मार्त कहा जाता है। श्रौतधर्म यज्ञ और वेदस्वरूप है तथा स्मार्तधर्म वर्णश्रमधर्म-नियामक है ॥ ३१—४० ॥

अब मैं धर्मके प्रत्येक अङ्गका लक्षण बतला रहा हूँ। देखे तथा अनुभव किये हुए विषयके पूछे जानेपर उसे न छिपाना, अपितु घटित हुएके अनुसार यथार्थ कह देना—यह सत्यका लक्षण है।

ब्रह्मचर्यं तपो मौनं निराहारत्वमेव च।
 इत्येतत् तपसो रूपं सुधोरं तु दुरासदम्॥ ४३
 पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा।
 ऋत्विजां दक्षिणायाश्च संयोगो यज्ञ उच्यते॥ ४४
 आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय शुभाय च।
 वर्तते सततं हृष्टः क्रिया श्रेष्ठा दया स्मृता॥ ४५
 आकृष्टेऽभिहतो यस्तु नाक्रोशेत्प्रहरेदपि।
 अदुष्टो वाइमनःकायैस्तितिक्षा सा क्षमा स्मृता॥ ४६
 स्वामिना रक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानां च सम्भ्रमे।
 परस्वानामनादानमलोभ इति संज्ञितः॥ ४७
 मैथुनस्यासमाचारो जल्पनाच्चिन्तनात्तथा।
 निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं च तदेतच्छमलक्षणम्॥ ४८
 आत्मार्थे वा परार्थे वा इन्द्रियाणीह यस्य वै।
 विषये न प्रवर्तन्ते दमस्यैतत्तु लक्षणम्॥ ४९
 पञ्चात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे।
 न कुर्येत प्रतिहतः स जितात्मा भविष्यति॥ ५०
 यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं च यत्।
 तत्तद् गुणवते देयमित्येतद् दानलक्षणम्॥ ५१
 श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः।
 शिष्टाचारप्रवृद्धश्च धर्मोऽयं साधुसम्मतः॥ ५२
 अप्रद्वेष्यो ह्यनिष्टेषु इष्टं वै नाभिनन्दति।
 प्रीतितापविषादानां विनिवृत्तिर्विरक्तता॥ ५३
 संन्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह।
 कुशलाकुशलाभ्यां तु प्रहाणं न्यास उच्यते॥ ५४
 अव्यक्तादिविशेषान्तद् विकारोऽस्मिन्निवर्तते।
 चेतनाचेतनं ज्ञात्वा ज्ञाने ज्ञानी स उच्यते॥ ५५
 प्रत्यङ्गानि तु धर्मस्य चेत्येतल्लक्षणं स्मृतम्।
 ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ५६
 अत्र वो वर्णयिष्यामि विधिं मन्वन्तरस्य तु।
 तथैव चातुहोत्रस्य चातुर्वर्णस्य चैव हि॥ ५७

ब्रह्मचर्यं, तपस्या, मौनावलम्बन और निराहार रहना—ये तपस्याके लक्षण हैं, जो अत्यन्त भीषण एवं दुष्कर हैं। जिसमें पशु, द्रव्य, हवि, ऋत्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, ऋत्विज् तथा दक्षिणाका संयोग होता है, उसे यज्ञ कहते हैं। जो अपनी ही भाँति समस्त प्राणियोंके प्रति उनके हित तथा मङ्गलके लिये निरन्तर हर्षपूर्वक व्यवहार करता है, उसकी वह श्रेष्ठ क्रिया दया कहलाती है। जो निन्दित होनेपर बदलेमें निन्दककी निन्दा नहीं करता तथा आघात किये जानेपर भी बदलेमें उसपर प्रहार नहीं करता, अपितु मन, वचन और शरीरसे प्रतीकारकी भावनासे रहित हो उसे सहन कर लेता है, उसकी उस क्रियाको क्षमा कहते हैं। स्वामीद्वारा रक्षाके लिये दिये गये तथा घबराहटमें छूटे हुए परकीय धनको न ग्रहण करना निर्लोभ नामसे कहा जाता है। मैथुनके विषयमें सुनने, कहने तथा चिन्तन करनेसे निवृत्त रहना ब्रह्मचर्य है और यही शमका लक्षण है॥ ४१—४८॥

जिसकी इन्द्रियाँ अपने अथवा परायेके हितके लिये विषयोंमें नहीं प्रवृत्त होतीं, यह दमका लक्षण है। जो पाँच कर्मेन्द्रियोंके विषयों तथा आठ प्रकारके कारणोंमें बाधित होनेपर भी क्रोध नहीं करता, वह जितात्मा कहलाता है। जो-जो पदार्थ अपनेको अभीष्ट हों तथा न्यायद्वारा उपार्जित किये गये हों, उन्हें गुणी व्यक्तिको दे देना—यह दानका लक्षण है। जो धर्म श्रुतियों एवं स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रमके आचारसे युक्त तथा शिष्टाचारद्वारा परिवर्धित होता है, वही साधु-सम्मत धर्म कहलाता है। अनिष्टके प्राप्त होनेपर उससे द्वेष न करना, इष्टकी प्राप्तिपर उसका अभिनन्दन न करना तथा प्रेम, संताप और विषादसे विशेषतया निवृत्त हो जाना—यह विरक्ति (वैराग्य)-का लक्षण है। किये हुए कर्मोंका न किये गये कर्मोंके साथ त्याग कर देना अर्थात् कृत-अकृत दोनों प्रकारके कर्मोंका त्याग संन्यास कहलाता है तथा कुशल (शुभ) और अकुशल (अशुभ)—दोनोंके परित्यागको न्यास कहते हैं। जिस ज्ञानके प्राप्त होनेपर अव्यक्तसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी प्रकारके विकार निवृत्त हो जाते हैं तथा चेतन और अचेतनका ज्ञान हो जाता है, उस ज्ञानसे युक्त प्राणीको ज्ञानी कहते हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें धर्मतत्त्वके ज्ञाता पूर्वकालीन ऋषियोंने धर्मके प्रत्येक अङ्गका यही लक्षण बतलाया है॥ ४९—५६॥

अब मैं आपलोगोंसे मन्वन्तरमें होनेवाले चारों वर्णोंके चातुहोत्रकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ।

प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते ।
 ऋचो यजूंषि सामानि यथावत्प्रतिदैवतम् ॥ ५८
 विधिहोत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत् सम्प्रवर्तते ।
 द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च ॥ ५९
 तथैवाभिजनस्तोत्रं स्तोत्रमेवं चतुर्विधम् ।
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथाभेदा भवन्ति हि ॥ ६०
 प्रवर्तयन्ति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं पुनः पुनः ।
 एवं मन्त्रगुणानां तु समुत्पत्तिश्चतुर्विधम् ॥ ६१
 अथर्वऋग्यजुःसाम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक् ।
 ऋषीणां तप्यतां तेषां तपः परमदुश्चरम् ॥ ६२
 मन्त्राः प्रादुर्भवन्यादौ पूर्वमन्वन्तरस्य ह ।
 असंतोषाद् भयाद् दुःखान्मोहाच्छोकाच्च पञ्चधा ॥ ६३
 ऋषीणां तारका येन लक्षणेन यदृच्छया ।
 ऋषीणां यादृशत्वं हि तद् वक्ष्यामीह लक्षणम् ॥ ६४
 अतीतानागतानां च पञ्चधा ह्यार्थकं स्मृतम् ।
 तथा ऋषीणां वक्ष्यामि आर्षस्येह समुद्भवम् ॥ ६५
 गुणसाम्येन वर्तन्ते सर्वसम्प्रलये तदा ।
 अविभागेन देवानामनिर्देश्यतमोमये ॥ ६६
 अबुद्धिपूर्वकं तद् वै चेतनार्थं प्रवर्तते ।
 तेनार्थं बुद्धिपूर्वं तु चेतनेनाप्यधिष्ठितम् ॥ ६७
 प्रवर्तते तथा ते तु यथा मत्स्योदकावुभौ ।
 चेतनाधिकृतं सर्वं प्रावर्तत गुणात्मकम् ॥
 कार्यकारणभावेन तथा तस्य प्रवर्तते ॥ ६८
 विषयो विषयित्वं च तथा ह्यार्थपदात्मकौ ।
 कालेन प्रापणीयेन भेदाश्च कारणात्मकाः ॥ ६९
 सांसिद्धिकास्तदा वृत्ताः क्रमेण महदादयः ।
 महतोऽसावहङ्कारस्तस्माद् भूतेन्द्रियाणि च ॥ ७०
 भूतभेदाश्च भूतेभ्यो जज्ञिरे तु परस्परम् ।
 संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्तते ॥ ७१
 यथोल्मुकात् तु विटपा एककालाद् भवन्ति हि ।
 तथा प्रवृत्ताः क्षेत्रज्ञाः कालेनैकेन कारणात् ॥ ७२

प्रत्येक मन्वन्तरमें विभिन्न प्रकारकी श्रुतिका विधान होता है, किंतु ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—ये तीनों वेद देवताओंसे संयुक्त रहते हैं। अग्निहोत्रकी विधि तथा स्तोत्र पूर्ववत् चलते रहते हैं। द्रव्यस्तोत्र, गुणस्तोत्र, कर्मस्तोत्र और अभिजनस्तोत्र—ये चार प्रकारके स्तोत्र होते हैं तथा सभी मन्वन्तरोंमें कुछ भेदसहित प्रकट होते हैं। उन्हींसे ब्रह्मस्तोत्रकी बारंबार प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार मन्त्रोंके गुणोंकी समुत्पत्ति चार प्रकारकी होती है, जो अथर्व, ऋक्, यजुः और साम—इन चारों वेदोंमें पृथक्-पृथक् प्राप्त होती है। पूर्व मन्वन्तरके आदिमें परम दुष्कर तपस्यामें लगे हुए उन ऋषियोंके अन्तःकरणमें ये मन्त्र प्रादुर्भूत होते हैं। ये असंतोष, भय, कष्ट, मोह और शोकरूप पाँच प्रकारके कष्टोंसे ऋषियोंकी रक्षा करते हैं। अब ऋषियोंका जैसा लक्षण, जैसी इच्छा तथा जैसा व्यक्तित्व होता है, उसका लक्षण बतला रहा हूँ। भूतकालीन तथा भविष्यकालीन ऋषियोंमें आर्ष शब्दका प्रयोग पाँच प्रकारसे होता है। अब मैं आर्ष शब्दकी उत्पत्ति बतला रहा हूँ। समस्त महाप्रलयोंके समय जब सारा जगत् घोर अन्धकारसे आच्छादित हो जाता है, उस समय देवताओंका कोई विभाग नहीं रह जाता। तीनों गुण अपनी साम्यावस्थामें स्थित हो जाते हैं, तब जो बिना ज्ञानका सहारा लिये चेतनात्मक प्रकट करनेके लिये प्रवृत्त होता है, उस चेतनाधिष्ठित ज्ञानयुक्त कर्मको आर्ष कहते हैं। वे मत्स्य और उदककी भाँति आधाराधेयरूपसे प्रवृत्त होते हैं। तब सारा त्रिगुणात्मक जगत् चेतनासे युक्त हो जाता है ॥ ५७—६७ ॥

उस जगत्की प्रवृत्ति कार्य-कारण-भावसे उसी प्रकार होती है, जैसे विषय और विषयित्व तथा अर्थ और पद परस्पर घुले-मिले रहते हैं। प्राप्त हुए कालके अनुसार कारणात्मक भेद उत्पन्न हो जाते हैं। तब क्रमशः महतत्त्व आदि प्राकृतिक तत्त्व प्रकट होते हैं। उस महतत्त्वसे अहंकार और अहंकारसे भूतेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् उन भूतोंसे परस्पर अनेकों प्रकारके भूत उत्पन्न होते हैं। तब प्राकृतिका कारण तुरंत ही कार्य-रूपमें परिणत हो जाता है। जैसे एक ही उल्मुक—मशालसे एक ही साथ अनेकों वृक्ष प्रकाशित हो जाते हैं, उसी प्रकार एक ही कारणसे एक ही समय अनेकों क्षेत्रज्ञ—जीव प्रकट हो जाते हैं।

यथान्धकारे खद्योतः सहसा सम्प्रदूश्यते ।
 तथा निवृत्तो हृव्यक्तः खद्योत इव सञ्ज्वलन् ॥ ७३
 स महात्मा शरीरस्थस्तत्रैव परिवर्तते ।
 महतस्तमसः पारे वैलक्षण्याद् विभाव्यते ॥ ७४
 तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तपसोऽन्त इति श्रुतम् ।
 बुद्धिर्विवर्धतस्तस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा ॥ ७५
 ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्य धर्मश्वेति चतुष्टयम् ।
 सांसिद्धिकान्यथैतानि अप्रतीतानि तस्य वै ॥ ७६
 महात्मनः शरीरस्य चैतन्यात् सिद्धिरुच्यते ।
 पुरि शेते यतः पूर्वं क्षेत्रज्ञानं तथापि च ॥ ७७
 पुरे शयानात् पुरुषः ज्ञानात् क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
 यस्माद् धर्मात् प्रसूते हि तस्माद् वै धार्मिकः स्मृतः ॥ ७८
 सांसिद्धिके शरीरे च बुद्ध्याव्यक्तस्तु चेतनः ।
 एवं विवृत्तः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रं हृनभिसंधितः ॥ ७९
 निवृत्तिसमकाले तु पुराणं तदचेतनम् ।
 क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातं भोग्योऽयं विषयो मम ॥ ८०
 ऋषिहिंसागतौ धातुर्विद्या सत्यं तपः श्रुतम् ।
 एष संनिचयो यस्मात् ब्रह्मणस्तु ततस्त्वृष्टिः ॥ ८१
 निवृत्तिसमकालाच्च बुद्ध्याव्यक्त ऋषिस्त्वयम् ।
 ऋषते परमं यस्मात् परमर्षिस्ततः स्मृतः ॥ ८२
 गत्यर्थाद् ऋषतेर्धातोर्नामनिर्वृत्तिकारणम् ।
 यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्च ऋषिता मता ॥ ८३
 सेश्वराः स्वयमुद्भूता ब्रह्मणो मानसाः सुताः ।
 निर्वर्तमानैस्तैर्बुद्ध्या महान् परिगतः परः ॥ ८४
 यस्मादूषिर्महत्त्वेन ज्ञेयास्तस्मान्महर्षयः ।
 ईश्वराणां सुतास्तेषां मानसाश्शौरसाश्श वै ॥ ८५
 ऋषिस्तस्मात् परत्वेन भूतादिर्ऋषयस्ततः ।
 ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद् गर्भसम्भवाः ॥ ८६
 परत्वेन ऋषन्ते वै भूतादीन् ऋषिकास्ततः ।
 ऋषीकाणां सुता ये तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः ॥ ८७

जैसे घने अन्धकारमें सहसा जुगनू चमक उठता है, वैसे ही जुगनूकी तरह चमकता हुआ अव्यक्त प्रकट हो जाता है। वह महात्मा अव्यक्त शरीरमें ही स्थित रहता है और महान् अन्धकारको पार करके बड़ी विलक्षणतासे जाना जाता है। वह विद्वान् अव्यक्त अपनी तपस्याके अन्त समयतक वहीं स्थित रहता है, ऐसा सुना जाता है। बृद्धिको प्राप्त होते हुए उस अव्यक्तके हृदयमें चार प्रकारकी बुद्धि प्रादुर्भूत होती है। उन चारोंके नाम हैं—ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म। उस अव्यक्तके ये प्राकृतिक कर्म अगम्य हैं। महात्मा अव्यक्तके शरीरके चैतन्यसे सिद्धिका प्रादुर्भाव बतलाया जाता है। चौंकि वह पहले-पहल शरीरमें शयन करता है तथा उसे क्षेत्रका ज्ञान प्राप्त रहता है, इसलिये वह शरीरमें शयन करनेसे पुरुष और क्षेत्रका ज्ञान होनेसे क्षेत्रज्ञ कहलाता है। चौंकि वह धर्मसे उत्पन्न होता है, इसलिये उसे धार्मिक भी कहते हैं। प्राकृतिक शरीरमें बुद्धिका संयोग होनेसे वह अव्यक्त चेतन कहलाता है तथा क्षेत्रसे कोई प्रयोजन न होनेपर भी उसे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। निवृत्तिके समय क्षेत्रज्ञ उस अचेतन पुराणपुरुषको जानता है कि यह मेरा भोग्य विषय है ॥ ६८—८० ॥

'ऋषि' धातुका हिंसा और गति-अर्थमें प्रयोग होता है। इसीसे 'ऋषि' शब्द निष्पन्न हुआ है। चौंकि उसे ब्रह्मासे विद्या, सत्य, तप, शास्त्र-ज्ञान आदि समूहोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये उसे ऋषि कहते हैं। यह अव्यक्त ऋषि निवृत्तिके समय जब बुद्धि-बलसे परमपदको प्राप्त कर लेता है, तब वह परमर्षि कहलाता है। गत्यर्थक* 'ऋषी' धातुसे ऋषिनामकी निष्पत्ति होती है तथा वह स्वयं उत्पन्न होता है, इसलिये उसकी ऋषिता मानी गयी है। ब्रह्माके मानस पुत्र ऐश्वर्यशाली वे ऋषि स्वयं उत्पन्न हुए हैं। निवृत्तिमार्गमें लगे हुए वे ऋषि बुद्धिबलसे परम महान् पुरुषको प्राप्त कर लेते हैं। चौंकि वे ऋषि महान् पुरुषत्वसे युक्त रहते हैं, इसलिये महर्षि कहे जाते हैं। उन ऐश्वर्यशाली महर्षियोंको जो मानस एवं औरस पुत्र हुए, वे ऋषिपरक होनेके कारण प्राणियोंमें सर्वप्रथम ऋषि कहलाये। मैथुनद्वारा गर्भसे उत्पन्न हुए ऋषि-पुत्रोंको ऋषीक कहा जाता है। चौंकि ये जीवोंको ब्रह्मपरक बनाते हैं, इसलिये इन्हें ऋषिक कहा जाता है। ऋषिकके पुत्रोंको ऋषि-पुत्र जानना

* गतिके ज्ञान, मोक्ष और गमन यहाँ तीनों अर्थ विवक्षित हैं।

श्रुत्वा ऋषं परत्वेन श्रुतास्तस्माच्छुतर्षयः ।
अव्यक्तात्मा महात्मा वाहङ्कारात्मा तथैव च ॥ ८८
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्जानमुच्यते ।

इत्येवमृषिजातिस्तु पञ्चधा नाम विश्रुता ॥ ८९
भृगुर्मीरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चापि ते दश ॥ ९०
ब्रह्मणो मानसा होते उत्पन्नाः स्वयमीश्वराः ।
परत्वेनर्षयो यस्मान्मतास्तस्मान्मर्हयः ॥ ९१
ईश्वराणां सुतास्त्वेषामृषयस्तान् निबोधत ।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा ॥ ९२
उत्थयो वामदेवश्च अगस्त्यः कौशिकस्तथा ।
कर्दमो बालखिल्याश्च विश्रवाः शक्तिवर्धनः ॥ ९३
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा ऋषितां गताः ।
तेषां पुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान् निबोधत ॥ ९४
वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजश्च वीर्यवान् ।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहद्वक्षाः शरद्वतः ॥ ९५
वाजिश्रवाः सुचिन्तश्च शावश्च सपराशरः ।
शृङ्गी च शङ्खपाच्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ॥ ९६
इत्येते ऋषिकाः सर्वे सत्येन ऋषितां गताः ।
ईश्वरा ऋषयश्चैव ऋषीका ये च विश्रुताः ॥ ९७
एवं मन्त्रकृतः सर्वे कृतवाच्च निबोधत ।
भृगुः काश्यः प्रचेता च दधीचो ह्यात्मवानपि ॥ ९८
ऊर्वोऽथ जमदग्निश्च वेदः सारस्वतस्तथा ।
आर्षिषेणश्च्यवनश्च वीतहव्यः सवेधसः ॥ ९९
वैण्यः पृथुर्दिवोदासो ब्रह्मवान् गृत्सशौनकौ ।
एकोनविंशतिहौर्णेते भृगवो मन्त्रकृत्तमाः ॥ १००
अङ्गिराश्चैव त्रितश्च भरद्वाजोऽथ लक्ष्मणः ।
कृतवाचस्तथा गर्गः स्मृतिसङ्कृतिरेव च ॥ १०१
गुरुवीतश्च मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च ।
युवनाश्चः पुरुकुत्सः स्वश्रवस्तु सदस्यवान् ॥ १०२
अजमीढोऽस्वहार्यश्च हृत्कलः कविरेव च ।
पृष्ठदश्वो विस्तृपश्च काव्यश्चैवाथ मुद्गलः ॥ १०३
उत्थयश्च शरद्वांश्च तथा वाजिश्रवा अपि ।
अपस्यौषः सुचित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ॥ १०४

चाहिये । वे दूसरेसे ऋषिधर्मको सुनकर ज्ञानसम्पन्न होते हैं, इसलिये श्रुतिषि कहलाते हैं । उनका वह ज्ञान अव्यक्तात्मा, महात्मा, अहंकारात्मा, भूतात्मा और इन्द्रियात्मा कहलाता है ॥ ८१—८८ ॥

इस प्रकार ऋषिजाति पाँच प्रकारसे विख्यात है । भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ और पुलस्त्य—ये दस ऐश्वर्यशाली ऋषि ब्रह्माके मानस पुत्र हैं और स्वयं उत्पन्न हुए हैं । ये ऋषिगण ब्रह्म-परत्वसे युक्त हैं, इसलिये महर्षि माने गये हैं । अब इन ऐश्वर्यशाली महर्षियोंके पुत्ररूप जो ऋषि हैं, उन्हें सुनिये । काव्य (शुक्राचार्य), बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उत्थ, वामदेव, अगस्त्य, कौशिक, कर्दम, बालखिल्य, विश्रवा और शक्तिवर्धन—ये सभी ऋषि कहलाते हैं, जो अपने तपोबलसे ऋषिताको प्राप्त हुए हैं । अब इन ऋषियोंद्वारा गर्भसे उत्पन्न हुए ऋषीक नामक पुत्रोंको सुनिये । वत्सर, नग्नहू, पराक्रमी भरद्वाज, दीर्घतमा, बृहद्वक्षा, शरद्वान्, वाजिश्रवा, सुचिन्त, शाव, पराशर, शृङ्गी, शङ्खपाद् और राजा वैश्रवण—ये सभी ऋषीक हैं और सत्यके प्रभावसे ऋषिताको प्राप्त हुए हैं । इस प्रकार जो ईश्वर (परमर्षि एवं महर्षि), ऋषि और ऋषीक नामसे विख्यात हैं, उनका वर्णन किया गया ॥ ८९—९७ ॥

इसी प्रकार अब सभी मन्त्रकर्ता ऋषियोंका नाम पूर्णतया सुनिये । भृगु, काश्यप, प्रचेता, दधीचि, आत्मवान्, ऊर्व, जमदग्नि, वेद, सारस्वत, आर्षिषेण, च्यवन, वीतहव्य, वेधा, वैण्य, पृथु, दिवोदास, ब्रह्मवान्, गृत्स और शौनक—ये उत्तीर्ण भृगुवंशी ऋषि मन्त्रकर्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । अङ्गिरा, त्रित, भरद्वाज, लक्ष्मण, कृतवाच, गर्ग, स्मृति, संकृति, गुरुवीत, मान्धाता, अम्बरीष, युवनाश्च, पुरुकुत्स, स्वश्रव, सदस्यवान्, अजमीढ, अस्वहार्य, उत्कल, कवि, पृष्ठदश्व, विस्तृप, काव्य, मुद्गल, उत्थ, शरद्वान्, वाजिश्रवा, अपस्यौष, सुचित्ति, वामदेव,

ऋषिजो बृहच्छुक्लश्च ऋषिर्दीर्घतमा अपि।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिशत् स्मृता ह्यङ्गिरसां पराः ॥ १०५
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत्।
कश्यपः सहवत्सारो नैधुवो नित्य एव च ॥ १०६
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः।
अत्रिर्धस्वनश्चैव शावास्योऽथ गविष्ठिरः ॥ १०७
कर्णकश्च ऋषिः सिद्धस्तथा पूर्वातिथिश्च यः ॥ १०८
इत्येते त्वत्रयः प्रोक्ता मन्त्रकृत् षण्महर्षयः।
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तृतीयश्च पराशरः ॥ १०९
ततस्तु इन्द्रप्रमितः पञ्चमस्तु भरद्वसुः।
षष्ठ्यस्तु मित्रवरुणः सप्तमः कुण्डिनस्तथा ॥ ११०
इत्येते सप्त विज्ञेया वासिष्ठा ब्रह्मवादिनः।
विश्वामित्रश्च गाधेयो देवरातस्तथा बलः ॥ १११
तथा विद्वान् मधुच्छन्दा ऋषिश्वान्योऽधर्मर्षणः।
अष्टको लोहितश्चैव भृतकीलस्तथाम्बुधिः ॥ ११२
देवश्रवा देवरातः पुराणश्च धनञ्जयः।
शिशिरश्च महातेजाः शालङ्कायन एव च ॥ ११३
त्रयोदशैते विज्ञेया ब्रह्मिष्ठाः कौशिका वराः।
अगस्त्योऽथ दृढद्युम्नो इन्द्रबाहुस्तथैव च ॥ ११४
ब्रह्मिष्ठागस्तयो होते त्रयः परमकीर्तयः।
मनुर्वेस्वतश्चैव ऐलो राजा पुस्त्रवाः ॥ ११५
क्षत्रियाणां वरौ होतौ विज्ञेयौ मन्त्रवादिनौ।
भलन्दकश्च वासाश्चः संकीलश्चैव ते त्रयः ॥ ११६
एते मन्त्रकृतो ज्ञेया वैश्यानां प्रवरां सदा।
इति द्विनवतिः प्रोक्ता मन्त्रा यैश्च बहिष्कृताः ॥ ११७
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषिपुत्रान् निबोधत्।
ऋषीकाणां सुता होते ऋषिपुत्राः श्रुतर्षयः ॥ ११८

ऋषिज, बृहच्छुक्ल, दीर्घतमा और कक्षीवान्—ये तीनों श्रेष्ठ ऋषि अङ्गिरागोत्रीय कहे जाते हैं। ये सभी मन्त्रकर्ता हैं। अब कश्यपवंशमें उत्पन्न होनेवाले ऋषियोंके नाम सुनिये। कश्यप, सहवत्सार, नैधुव, नित्य, असित और देवल—ये छः ब्रह्मवादी ऋषि हैं। अत्रि, अर्धस्वन, शावास्य, गविष्ठिर, सिद्धर्षि कर्णक और पूर्वातिथि—ये छः मन्त्रकर्ता महर्षि अत्रिवंशोत्पन्न कहे गये हैं। वसिष्ठ, शक्ति, तीसरे पराशर, इन्द्रप्रमित, पाँचवें भरद्वसु, छठे मित्रवरुण तथा सातवें कुण्डिन—इन सात ब्रह्मवादी ऋषियोंको वसिष्ठवंशोत्पन्न जानना चाहिये ॥१८—११०३॥

गाधि-नन्दन विश्वामित्र, देवरात, बल, विद्वान् मधुच्छन्दा, अघर्मर्षण, अष्टक, लोहित, भृतकील, अम्बुधि, देवपरायण देवरात, प्राचीन ऋषि धनञ्जय, शिशिर तथा महान् तेजस्वी शालंकायन—इन तेरहोंको कौशिकवंशोत्पन्न ब्रह्मवादी ऋषि समझना चाहिये। अगस्त्य, दृढद्युम्न तथा इन्द्रबाहु—ये तीनों परम यशस्वी ब्रह्मवादी ऋषि अगस्त्य-कुलमें उत्पन्न हुए हैं। विवस्वान्-पुत्र मनु तथा इला-नन्दन राजा पुस्त्रवा—क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न हुए इन दोनों राजर्षियोंको मन्त्रवादी जानना चाहिये। भलन्दक, वासाश्व और संकील—वैश्योंमें श्रेष्ठ इन तीनोंको मन्त्रकर्ता समझना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-कुलमें उत्पन्न हुए बानवे ऋषियोंका वर्णन किया गया, जिन्होंने मन्त्रोंको प्रकट किया है। अब ऋषि-पुत्रोंके विषयमें सुनिये। ये ऋषिपुत्र जो श्रुतर्षि कहलाते हैं, ऋषियोंके पुत्र हैं ॥ १११—११८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरकल्पवर्णनो नाम पञ्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्वन्तरकल्पवर्णन नामक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४५ ॥

एक सौ छियालीसवाँ अध्याय

वज्राङ्गकी उत्पत्ति, उसके द्वारा इन्द्रका बन्धन, ब्रह्मा और कश्यपद्वारा समझाये जानेपर इन्द्रको बन्धनमुक्त करना, वज्राङ्गका विवाह, तप तथा ब्रह्माद्वारा वरदान

ऋषय ऊचुः

कथं मत्स्येन कथितस्तारकस्य वधो महान्।
कस्मिन् काले विनिर्वृत्ता कथेयं सूतनन्दन॥ १

त्वन्मुखक्षीरसिन्धूत्था कथेयमृतात्मिका।
कर्णाभ्यां पिबतां तृसिरस्माकं न प्रजायते।
इदं मुने समाख्याहि महाबुद्धे मनोगतम्॥ २

सूत उवाच

पृष्ठस्तु मनुना देवो मत्स्यरूपी जनार्दनः।
कथं शरवणे जातो देवः षड्वदनो विभो॥ ३
एतत्तु वचनं श्रुत्वा पार्थिवस्यामितौजसः।
उवाच भगवान् प्रीतो ब्रह्मसूर्महामतिम्॥ ४

मत्स्य उवाच

वज्राङ्गो नाम दैत्योऽभूत् तस्य पुत्रस्तु तारकः।
सुरानुद्वासयामास पुरेभ्यः स महाबलः॥ ५
ततस्ते ब्रह्मणोऽभ्याशं जगमुर्भयनिपीडिताः।
भीतांश्च त्रिदशान् दृष्ट्वा ब्रह्मा तेषामुवाच ह॥ ६
संत्यजध्वं भयं देवाः शंकरस्यात्मजः शिशुः।
तुहिनाचलदौहित्रस्तं हनिष्वति दानवम्॥ ७
ततः काले तु कस्मिंश्चिद् दृष्ट्वा वै शैलजां शिवः।
स्वरेतो वह्निवदने व्यसुजत् कारणान्तरे॥ ८
तत् प्रामं वह्निवदने रेतो देवानतर्पयत्।
विदार्य जठराण्येषामजीर्ण निर्गतं मुने॥ ९

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! मत्स्यभगवान् ने तारकासुरके वधरूप महान् कार्यका वर्णन किस प्रकार किया था? यह कथा किस समय कही गयी थी? मुने! आपके मुखरूपी क्षीरसागरसे उद्भूत हुई इस अमृतरूपिणी कथाका दोनों कानोंद्वारा पान करते हुए भी हमलोगोंको तृप्ति नहीं हो रही है। अतः महाबुद्धिमान् सूतजी! आप हमलोगोंके इस मनोऽभिलिष्ट विषयका वर्णन कीजिये॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (प्राचीन कालकी बात है) राजर्षि मनुने मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुसे प्रश्न किया—‘विभो! षडानन स्वामिकार्तिकका जन्म सरपतके वनमें कैसे हुआ था?’ उन अमिततेजस्वी राजर्षि मनुका प्रश्न सुनकर महातेजस्वी ब्रह्मपुत्र भगवान् मत्स्य प्रसन्नतापूर्वक बोले॥ ३-४॥

मत्स्यभगवान् कहा—राजन्! (बहुत पहले) वज्राङ्ग नामका एक दैत्य उत्पन्न हुआ है, उसके पुत्रका नाम तारक था। उस महाबली तारकने देवताओंको उनके नगरोंसे निकालकर खदेड़ दिया। तब भयभीत हुए वे सभी देवगण ब्रह्माके निकट गये। उन देवताओंको डरा देखकर ब्रह्माने उनसे कहा—‘देववृन्द! भय छोड़ दो। (शीघ्र ही) भगवान् शंकरके एक औरस पुत्र हिमाचलका दौहित्र (नाती) उत्पन्न होगा, जो उस दानवका वध करेगा।’ तदनन्तर किसी समय पार्वतीको देखकर शिवजीका वीर्य स्खलित हो गया, तब उन्होंने उसे किसी भावी कारणवश अग्निके मुखमें गिरा दिया। अग्निके मुखमें पड़े हुए उस वीर्यने देवताओंको तृप्ति कर दिया, किंतु पच न सकनेके कारण वह उनके उदरको फाड़कर बाहर निकल पड़ा।

पतितं तत् सरिद्वरां ततस्तु शरकानने ।
तस्मात् स समुद्भूतो गुहो दिनकरप्रभः ॥ १०

स सप्तदिवसो बालो निजघ्ने तारकासुरम् ।
एवं श्रुत्वा ततो वाक्यं तमूचुर्त्रघणिसत्तमाः ॥ ११

ऋषय ऊचुः

अत्याश्र्वर्यवती रम्या कथेयं पापनाशिनी ।
विस्तरेण हि नो ब्रूहि याथातथ्येन शृणवताम् ॥ १२

वज्राङ्गो नाम दैत्येन्द्रः कस्य वंशोद्घद्वः पुरा ।
यस्याभूत् तारकः पुत्रः सुरप्रमथनो बली ॥ १३

निर्मितः को वधे चाभूत् तस्य दैत्येश्वरस्य तु ।
गुहजन्म तु कात्स्न्येन अस्माकं ब्रूहि मानद ॥ १४

सूत उवाच

मानसो ब्रह्मणः पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ।
षष्ठिं सोऽजनयत् कन्या वीरिण्यामेव नः श्रुतम् ॥ १५
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥ १६
द्वे वै बाहुकपुत्राय द्वे वै चाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे प्रजापतिसुतः प्रभुः ॥ १७
अदितिर्दितिर्दनुर्विश्वा ह्यरिष्टा सुरसा तथा ।
सुरभिर्विनता चैव ताप्ना क्रोधवशा इरा ॥ १८
कद्रूमुनिश्च लोकस्य मातरो गोषु मातरः ।
तासां सकाशाल्लोकानां जङ्गमस्थावरात्मनाम् ॥ १९
जन्म नानाप्रकाराणां ताभ्योऽन्ये देहिनः स्मृताः ।
देवेन्द्रोपेन्द्रपूषाद्याः सर्वे तेऽदितिजा मताः ॥ २०
दितेः सकाशाल्लोकास्तु हिरण्यकशिपादयः ।
दानवाश्च दनोः पुत्रा गावश्च सुरभीसुताः ॥ २१

और नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गामें जा गिरा। फिर वहाँ वह बहते हुए सरपतके बनमें जा लगा। उसीसे सूर्यके समान तेजस्वी गुह उत्पन्न हुए। उसी सात दिवसीय बालकने तारकासुरका वध किया। ऐसी अद्भुत बात सुनकर उन श्रेष्ठ ऋषियोंने पुनः सूतजीसे प्रश्न किया ॥ ५—११ ॥

ऋषियोंने पूछा—सबको मान देनेवाले सूतजी ! यह कथा तो अत्यन्त आश्र्वर्यसे परिपूर्ण, रमणीय और पापनाशिनी है। हमलोग इसे सुनना चाहते हैं, अतः आप हमलोगोंको इसे यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बतलाइये। पूर्वकालमें देवताओंका मान मर्दन करनेवाला महाबली तारक जिसका पुत्र था, वह दैत्यराज वज्राङ्ग किसके वंशमें उत्पन्न हुआ था ? उस दैत्यराजके वधके लिये कौन-सा कारण निर्मित हुआ था ? यह सब तथा गुहके जन्मकी कथा हमलोगोंको पूर्णरूपसे बतलाइये ॥ १२—१४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! ब्रह्माके मानस पुत्र प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न की थीं, ऐसा हमने सुना है। उन ब्रह्मपुत्र सामर्थ्यशाली दक्षने उन कन्याओंमेंसे दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बाहुक-पुत्रको, दो अङ्गिराको तथा दो विद्वान् कृशाश्वको समर्पित कर दी थीं। अदिति, दिति, दनु, विश्वा, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताप्ना, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि—ये तेरह लोकमाताएँ कश्यपकी पत्नियाँ थीं। इन्होंसे पशुओंकी भी उत्पत्ति हुई है। इन्होंसे स्थावर-जङ्गमरूप नाना प्रकारके प्राणियोंका जन्म हुआ है। देवेन्द्र, उपेन्द्र और सूर्य आदि सभी देवता अदितिसे उत्पन्न माने जाते हैं। दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण उत्पन्न हुए। दनुके दानव

पक्षिणो विनतापुत्रा गरुडप्रमुखाः स्मृताः ।
नागाः कद्रूसुता ज्ञेयाः शेषाश्चान्येऽपि जन्तवः ॥ २२

त्रैलोक्यनाथं शक्रं तु सर्वामरगणप्रभुम् ।
हिरण्यकशिपुश्वके जित्वा राज्यं महाबलः ॥ २३

ततः केनापि कालेन हिरण्यकशिपादयः ।
निहता विष्णुना संख्ये शेषाश्चेन्द्रेण दानवाः ॥ २४

ततो निहतपुत्राभूत् दितिर्वरमयाच्चत ।
भर्तारं कश्यपं देवं पुत्रमन्यं महाबलम् ॥ २५

समरे शक्रहन्तारं स तस्या अददात् प्रभुः ॥ २६
नियमे वर्तं हे देवि सहस्रं शुचिमानसा ।
वर्षणां लप्स्यसे पुत्रमित्युक्ता सा तथाकरोत् ॥ २७

वर्तन्त्या नियमे तस्याः सहस्राक्षः समाहितः ।
उपासामाचरत् तस्याः सा चैनमन्वमन्यत ॥ २८

दशवत्सरशेषस्य सहस्रस्य तदा दितिः ।
उवाच शक्रं सुप्रीता वरदा तपसि स्थिता ॥ २९

दितिरुचाच

पुत्रोत्तीर्णव्रतां प्रायो विद्धि मां पाकशासन ।
भविष्यति च ते भ्राता तेन सार्थमिमां श्रियम् ॥ ३०

भुद्धक्षव वत्स यथाकामं त्रैलोक्यं हतकण्टकम् ।
इत्युक्त्वा निद्रयाऽविष्टा चरणाक्रान्तमूर्धजा ॥ ३१

स्वयं सुष्वाप नियता भाविनोऽर्थस्य गौरवात् ।
ततु रन्धं समासाद्य जठरं पाकशासनः ॥ ३२

चकार सप्तधा गर्भं कुलिशेन तु देवराद् ।
एकैकं तु पुनः खण्डं चकार मधवा ततः ॥ ३३

और गौ आदि पशु सुरभीके संतान हुए। गरुड आदि पक्षी विनताके पुत्र कहे जाते हैं। नागों तथा अन्य रेंगनेवाले जन्तुओंको कद्रूकी संतति समझना चाहिये। कुछ समय बाद हिरण्यकशिपु समस्त देवगणोंके स्वामी त्रिलोकीनाथ इन्द्रको जीतकर राज्य करने लगा। तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण भगवान् विष्णुके हाथों मारे गये तथा शेष दानवोंका इन्द्रने युद्धस्थलमें सफाया कर दिया। इस प्रकार जब दितिके सभी पुत्र मार डाले गये, तब उसने अपने पतिदेव महर्षि कश्यपसे युद्धमें इन्द्रका वध करनेवाले अन्य महाबली पुत्रकी याचना की। तब सामर्थ्यशाली कश्यपजीने उसे वर प्रदान करते हुए कहा—‘देवि! तुम एक हजार वर्षतक पवित्र मनसे नियमका पालन करो तो तुम्हें वैसा पुत्र प्राप्त होगा।’ पतिद्वारा ऐसा कही जानेपर वह नियममें तत्पर हो गयी। जिस समय वह नियममें संलग्न थी, उस समय सहस्रनेत्रधारी इन्द्र उसके निकट आकर सावधानीपूर्वक उसकी सेवा करने लगे। यह देखकर उसने इन्द्रपर विश्वास कर लिया। जब एक सहस्र वर्षकी अवधिमें दस वर्ष शेष रह गये, तब तपस्यामें निरत वरदायिनी दिति परम प्रसन्न होकर इन्द्रसे बोली ॥१५—२९॥

दितिने कहा—पुत्र! अब तुम ऐसा समझो कि मैंने प्रायः अपने व्रतको पूर्ण कर लिया है। पाकशासन! (व्रतकी समाप्तिपर) तुम्हरे एक भाई उत्पन्न होगा। वत्स! उसके साथ तुम इस राजलक्ष्मी तथा निष्कण्टक त्रिलोकीके राज्यका इच्छानुसार उपभोग करना। ऐसा कहकर स्वयं दिति निद्राके वशीभूत हो सो गयी। उस समय भावी कार्यके गौरवके कारण वह अपने नियमसे च्युत हो गयी थी; क्योंकि (सोते समय) उसके खुले हुए बाल चरणोंसे दबे हुए थे। ऐसी त्रुटिपर अवसर पाकर देवराज इन्द्र दितिके उदरमें प्रविष्ट हो गये और अपने बज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् इन्द्रने क्रुद्ध होकर पुनः प्रत्येक टुकड़ेको काटकर



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

समधा समधा कोपात्प्राबुध्यत ततो दितिः ।
विबुध्योवाच मा शक्र घातयेथा: प्रजां मम ॥ ३४

तच्छुत्वा निर्गतः शक्रः स्थित्वा प्राञ्जलिरग्रतः ।
उवाच वाक्यं संत्रस्तो मातुर्वै वदनेरितम् ॥ ३५

शक्र उवाच

दिवास्वप्नपरा मातः पादाक्रान्तशिरोरुहा ।
समसमभिरेवातस्तव गर्भः कृतो मया ॥ ३६
एकोनपञ्चाशत्कृता भागा वज्रेण ते सुताः ।
दास्यामि तेषां स्थानानि दिवि दैवतपूजिते ॥ ३७
इत्युक्ता सा तदा देवी सैवमस्त्वत्यभाषत ।
पुनश्च देवी भर्तारमुवाचासितलोचना ॥ ३८
पुत्रं प्रजापते देहि शक्रजेतारमूर्जितम् ।
यो नास्त्रशस्त्रैर्वद्यत्वं गच्छेत् त्रिदिववासिनाम् ॥ ३९
इत्युक्तः स तथोवाच तां पत्नीमतिदुःखिताम् ।
दशवर्षसहस्राणि तपः कृत्वा तु लप्यसे ॥ ४०
वज्रसारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसैर्दृढैः ।
वज्राङ्गो नाम पुत्रस्ते भविता पुत्रवत्सले ॥ ४१
सा तु लब्धवरा देवी जगाम तपसे वनम् ।
दशवर्षसहस्राणि सा तपो घोरमाचरत् ॥ ४२
तपसोऽन्ते भगवती जनयामास दुर्जयम् ।
पुत्रमप्रतिकर्मणमजेयं वज्रदुश्छिदम् ॥ ४३
स जातमात्र एवाभूत् सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ।
उवाच मातरं भक्त्या मातः किं करवाण्यहम् ॥ ४४
तमुवाच ततो हृष्टा दितिदैत्याधिपं च सा ।
बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक ॥ ४५
तेषां त्वं प्रतिकर्तुं वै गच्छ शक्रवधाय च ।
बाढमित्येव तामुक्त्वा जगाम त्रिदिवं बली ॥ ४६

सात-सात भागोंमें विभक्त कर दिया । इतनेमें ही दितिकी निद्रा भंग हो गयी । तब वह सचेत होकर बोली—‘अरे इन्द्र! मेरी संतानिका विनाश मत कर ।’ यह सुनकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये और अपनी उस विमाताके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये । फिर डरते-डरते मन्द स्वरमें यह वचन बोले— ॥ ३०—३५ ॥

इन्द्रने कहा—माँ! आप दिनमें सो रही थीं और आपके बाल पैरोंके नीचे दबे हुए थे, इस नियम-च्युतिके कारण मैंने आपके गर्भको सात भागोंमें, पुनः प्रत्येकको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है । इस प्रकार मैंने आपके पुत्रोंको उनचास भागोंमें बाँट दिया है । अब मैं उन्हें देवताओंद्वारा पूजित स्वर्गलोकमें स्थान प्रदान करूँगा । तब ऐसा उत्तर पानेपर देवी दितिने कहा—‘अच्छा, ऐसा ही हो ।’ तदनन्तर कजरारे नेत्रोंवाली दिति देवीने पुनः अपने पति महर्षि कश्यपसे याचना की—‘प्रजापते! मुझे एक ऐसा ऊर्जस्वी पुत्र प्रदान कीजिये, जो इन्द्रको पराजित करनेमें समर्थ हो तथा स्वर्गवासी देवगण अपने शस्त्रास्त्रोंसे जिसका वध न कर सके ।’ इस प्रकार कहे जानेपर महर्षि कश्यप अपनी उस अत्यन्त दुखिया पत्नीसे बोले—‘पुत्रवत्सले! दस हजार वर्षतक तपस्या करनेके उपरान्त तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी । तुम्हारे गर्भसे वज्राङ्ग नामका पुत्र उत्पन्न होगा । उसके अङ्ग वज्रके सार-तत्त्वके समान सुदृढ़ और लौहनिर्मित शस्त्रास्त्रोंद्वारा अच्छेद्य होंगे ।’ इस प्रकार वरदान पाकर दिति देवी तपस्या करनेके लिये वनमें चली गयी । वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षोंतक घोर तप किया । तपस्या समाप्त होनेपर ऐश्वर्यवती दितिने एक ऐसे पुत्रको उत्पन्न किया, जो दुर्जय, अद्भुतकर्मा और अजेय था तथा जिसके अङ्ग वज्रद्वारा अच्छेद्य थे । वह जन्म लेते ही समस्त शस्त्रास्त्रोंका पारगामी विद्वान् हो गया । उसने भक्तिपूर्वक अपनी माता दितिसे कहा—‘माँ! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?’ तब हर्षित हुई दितिने उस दैत्यराजसे कहा—‘बेटा! इन्द्रने मेरे बहुत-से पुत्रोंको मार डाला है, अतः उनका बदला लेनेके लिये तुम जाओ और इन्द्रका वध करो ।’ तब ‘बहुत अच्छा’ ऐसा मातासे कहकर महाबली वज्राङ्ग स्वर्गलोकमें जा पहुँचा ।